विद्यापति · एक अध्ययन

हिन्दी-ज्ञानविकास-ग्रथमाला

तुलसी एक अध्ययन	रामप्रसाद मिश्र
घनानद एक अध्ययन	राजेन्द्रमोहन भटनागर
विद्यापति एक अध्ययन	रणधीर श्रीवास्तव
नये कवि एक अध्ययन (भाग 1, 2, 3)	सतोषकुमार तिवारी
रामचरितमानस एक अध्ययन	रामप्रसाद मिश्र

हिन्दी-ज्ञानविकास ग्रंथमाला

विद्यापति : एक अध्ययन

डॉ० रणधीर श्रीवास्तव



भारतीय ग्रंथ निकेतन
2713, कूचा चेलान, दरिया गंज
नयी दिल्ली 110002

प्रकाशक भारतीय ग्रंथ निकेतन
2713, कूचा चेलान दरिया गंज
नई दिल्ली-110002

प्रकाशन वर्ष 1991

मूल्य 60 00

मुद्रक जितेन्द्र प्रिंटस,
बाबरपुर रोड, शिवाजी पार्क,
शाहदरा दिल्ली 110032

VIDYAPATHI EK ADHYAYANA

Randhir Shrivastava

विषय-सूची

विद्यापति की जन्मभूमि—मिथिला

मिथिला भारतभूमि का एक अति प्राचीन जनपद है। प्रागैतिहासिक काल से ही यह साहित्य, सगीत और कला का मा य के द्र रहा है। इसकी पावन गोद मे विदेहराज जनक, याज्ञवल्क्य, गौतम, कपिल और जैमिनि आदि ऐसे अनेक मनीषियो ने ज म लिया है, जि होने ज्ञान की अखण्ड ज्योति जलाकर भारतीय दर्शन, साहित्य, सस्कृति और सभ्यता को केवल सुरक्षित ही नहीं रखा है बल्कि उसका सम्यक प्रसार और प्रचार भी किया है। इसके विभि न विश्वविद्यालय, सभा भवन, गोष्ठी-सदन, मानव मनीषा और सस्कृति विषयक विशिष्ठ एव महान दार्शनिक विचार विनिमय के के द्र रहे हैं।[1] यही मिथिला विद्यापति की भी ज मभूमि है जिसकी बहुमुखी प्रतिभा का प्रभाव प्राचीनकाल से आज तक भारत के विभि न भूभागों पर रहा है।

वृहत् पुराण मे मिथिला के बारह नामो का उल्लेख है—

मिथिला तैरभुक्तिश्च वैदेही नैमिकाननम्।
ज्ञानशील कृपापीठ स्वर्णलागल पद्धति ॥
जानकी ज मभूमिश्च निरपेक्षा विकल्मषा।
रामान दकरी, विश्वभावनी, नित्य मगला ॥

मिथिला नाम वेद तथा वेदोत्तर साहित्य रामायण, महाभारत, भागवत पुराण, दशकुमारचरित, रघुवश प्रस न राघव आदि मे कही भी उल्लिखित नही है। सम्भवत यह नाम मिथिला के ज मदाता महाराज

1 हिस्ट्री आफ मिथिला, डॉ० उपे द्र ठाकुर, पृ० 1

मिथि के नाम पर आधारित है किन्तु शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सबसे प्राचीन नाम विधा' विदेह मध्व के नाम पर अनुमानित है। कहा जाता है कि पृथ्वी पर अग्नि को लाने का श्रेय इन्ही को है और इन्होंने ही विदेह वश की स्थापना की थी।[1]

पुराण प्रसग के अनुसार मनु के पुत्र इक्ष्वाकु सूर्य वश के प्रथम राजा थे। उनके सहस्र पुत्रो मे विकुक्षि, निमि और दण्ड श्रेष्ठ थे। विकुक्षि से सूर्यवशी राजाओ का वश चला और निमि मिथिलाधिपति विदेहराज जनक के आदिपुरुष हैं। निमि के पुत्र मिथि के नाम पर ही मिथिला राज्य की स्थापना हुई जो वतमान तिरहुत का कोई न कोई भाग रहा होगा। पाणीनि ने मिथिला शब्द की व्याख्या इस प्रकार से की है—'मथ्यन्ते शत्रवो यस्या' कुछ विद्वान 'म' 'थ' 'ल' को क्रमश जन्म, स्थिति और लय का प्रतीक मानते हैं। चीनी यात्री ह्वेन च्याग के समय मे यह प्रदेश छोटे छोटे तीन भागो मे विभक्त था—विशाला, तीरभुक्ति, वृज्जि या मियारि। डा० सुभद्र झा ने 'मिथ' का साथ के अथ मे ग्रहण कर मिथिला को वशाली, विदेह और अग का सामूहिक रूप माना है। कनिघम महोदय की रिपोर्ट के अनुसार 'तिरहुत' का विकास क्रम है—भारहुत भारभुक्ति, तीरभुक्ति—तिरहुत।[2]

भुक्ति शब्द अत्यन्त प्राचीन है इस शब्द का प्रयोग प्रात या प्रदेश के अथ म होता रहा है। भोगपति गवनर' के अथ मे प्रयुक्त हुआ है। तीर भुक्ति या तिरहुत प्रदेश की सत्ता आठवी शती म ज्ञात थी क्योकि वामन ने 'वरेन्द्रा तीरभुक्तिर्नाम देश'[3] का उल्लेख किया है। आधुनिक पुरातत्व विशारदो के अनुसार तो इस शब्द का प्रयोग चौथी शती मे भी प्रयुक्त हुआ है। सन् 1903 1904 के वैशाली जिला मुजफ्फरपुर की खुदाई में अनेक ऐसी मुद्रायें उपलब्ध हुई हैं जिन पर तीरभुक्ति अकित है और उन पर

1 शतपथ ब्राह्मण—प्र० 14। तथा ट्राइब्स आफ एन्सियेंट इडिया, बी० सी० ला०, पृ० 23।

2 दरभग डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, पृ० 146

3 वामन कृत लिगानुशासन, पृ० 18

गुप्तकाल की तिथियाँ हैं। अत इस शब्द की प्राचीनता तीसरी चौथी शताब्दि तक सिद्ध होती है।

मिथिला की भौगोलिक स्थिति की चर्चा वृहत पुराण के 'मिथिला महात्म्य' खण्ड मे पाराशर और मैत्रेयी के वार्तालाप मे आती है जिसके अनुसार मिथिला वह देश है जिसके पूव दिशा मे कौशिकी, पश्चिम म गण्डकी, दक्षिण म गगा और उत्तर मे हिमालय का विस्तार है।[1] चण्ड झा ने इसी कथन को छन्दोबद्ध किया है जो मिथिला मे अति प्रचलित है—

गगा बहथि जनिक दक्षिण दिशि, पूव कौशिकी धारा।
पश्चिम बहथि गण्डकी, उत्तर हिमवत बल विस्तारा॥
कमला, त्रियुगा, अमता, धेमुणा, वागमती कृत सारा।
मध्य बहथि लक्ष्मणा प्रभिति से मिथिला विद्यागारा॥

वतमान समय मे इस क्षेत्र के अन्तगत मुजफ्फरपुर—दरभगा का सम्पूर्ण जिला, चपारन और मुगेर जिला का उत्तरी भाग तथा भागलपुर और पुरनियाँ के कुछ अश आते हैं जो भारत की सीमा मे हैं। इसके अतिरिक्त नेपाल राज्य की सीमा मे स्थित रउताहट, सरलाही, मप्तारी, मोहनारी तथा मोरग के भूभाग आते हैं। प्राचीन जनकपुर भी अब नपाल की सीमा मे ही पडता है जो दिये हुए नक्शे से स्पष्ट है।[2] प्राचीन सदर्भों से भी, मिथिला का सीमा विस्तार हिमालय की ओर अधिक था, की पुष्टि होती है। बौद्ध ग्रथों म इसकी सीमा का मध्य देश तक होने का सकेत मिलता है, कि तु ऐसा प्रतीत होता है कि ये सकेत गया और बनारस जो बौद्धो के पवित्र तीथ स्थल रहे हैं, के प्रति श्रद्धाभाव के कारण है।[3] भारत का जो प्राचीन विभाजन ब्रह्मावत्त ब्रह्मर्षि देश, मध्य देश तथा आर्यावत के रूप मे किया गया है उससे मिथिला को अलग ही रखा गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति मे स्पष्ट रूप से कहा गया है कि कतव्य पथ का दिग्दशन मिथिला के सत याज्ञवल्क्य ने किया है जिस देश मे काले हिरन विचरण किया करते हैं।

1 वृहत पुराण—मिथिला महात्म्य खड-VIX
2 हिस्ट्री आफ तिरहुत, श्याम ना० सिंह प० 3
3 बी० सी० ला० कृत—ज्योग्राफी आफ अर्ली बुद्धिज्म, पृ० 1

शक्ति सगम (1581) म स्पष्ट उल्लेख है कि तीरभुक्ति की दक्षिणी सीमा गगा नदी थी और सोलहवी शताब्दी म अ त तक इसके प्रमाण मिलते हैं। मुगल शासन काल म तिरहुत बिहार प्रांत का परगना बना जिसके अ तर्गत हाजीपुर मुगेर और पुरनिया के भाग सम्मिलित थे। सन् 1875 म इसका पुनर्विभाजन हुआ जिसके फलस्वरूप इसका विशाल पूर्वी भाग दरभगा और पश्चिमी भाग मुजफ्फरपुर म आ गया। सुदूर उत्तरी भाग मुगल तथा ब्रिटिश शासको के पहुँच से परे था अत वह नेपाल के शासको के अधिकार म चला गया। इस प्रकार भौगोलिक दृष्टि से मिथिला को चार अवस्थाओ से गुजरना पड़ा—(1) विदेह राज्य जिसके मुख्य अग थे विशाली और मिथिला (2) तीरभुक्ति, (3) बिहार प्रा त के मगध क रूप मे और (4) मिथिला का वतमान रूप जिसके अ तगत —मुजफ्फरपुर, दरभगा, चपारन और सारन के जिले आते हैं। पुराणो के अनुसार मिथिला का क्षेत्र पूरव से पश्चिम 96 कोस लम्बा और उत्तर से दक्षिण 64 कोस चौडा है। डा० जयकात मिश्र के अनुसार—मिथिला के क्षेत्र भारत म लगभग—19,275 वर्ग मील और नेपाल मे 10,000 वग मील हैं।

दरभगा जिले के गजेटियर के अनुसार—'सन 1934 के भूकप के पूव मिथिला की भूमि अत्य त उपजाऊ थी और आबादी भी घनी थी, नदियो क किनारे की भूमि पर दूर दूर तक विस्तत धान के हरे-भरे खेत लहराते हैं और अनेक स्थानो पर बाँसो और आम के घने बगीचे हैं। मिथिला को भीला नदियो और तालाबो का दलदली प्रदेश कहा गया है जो वष मे केवल तीन चार महीने ही परिवहन की सुविधा योग्य रहता है। वस्तुत मिथिला नदियो और भीलो का देश है। इन नदियो ने यहाँ की सस्कृति और विद्या को सुरक्षित रखा है। इसकी प्रमुख नदियाँ हैं गगा, बूढी गडक, कमला, बागमती, त्रियुगा और कराई जिसके किनारो पर मिथिला के प्राचीन खण्डहर हैं भूटानी, कमला, कौशिकी (सप्त कौशिकी)।'

शतपथ ब्राह्मण मे कहा गया है कि सदानीरा के उस पार की भूमि विदेह मध्व के आगमन के पूर्व लोगो के पहुँच के बाहर थी, जलमग्न थी। विदेह मध्व के यनो के द्वारा भूमि को कृषि के योग्य बनाया गया। जनक

के हल जोतन वाली बात का स्रोत भी शायद यही हो। उन्होंने ही पंच-देवो की उपासना कर उन्हें प्रसन्न किया और इसे रहने योग्य बनाया। महाभारत मे भी इस देश को जलोद्भव की सज्ञा दी गई है जो विदेह-मंडल के भगीरथ प्रयत्न की ओर सकेत करता है और आज के परिश्रमी हालैंड वासियो की याद दिलाता है।

मिथिला के मानस पुत्रो ने अपनी गौरव गाथा अरि के रक्त मे डुबाकर तलवार की धार से नही, बल्कि चिन्तन और मनन के माध्यम से मानव हृदय तथा प्रकृति के गुह्य प्रदेशों में प्रवेश कर लेखनी की नोक से लिखी है। तलवार की धार की गाथा काल के प्रवाह म विलीन हो गई किंतु मिथिला की गाथा आज भी अपने आलोक से मानव हृदय के अधकार को दूर करती हुई अपने ज्ञान की यशोपताका गगन मण्डल म फहरा रही है। निस्सदेह मिथिला के राजप्रासादो, पावन आश्रमो, सुरम्य तपोवनो, गह्वर गिरि गुफाओ, एकान्त शवालिनी तीरो और बाँसो की झुरमुटो और सघन आम्र कुंजो से ज्ञान का अन त स्रोत प्रवाहित हुआ है। मिथिला वासियो ने सगर्व इस ज्ञान परम्परा की रक्षा अपनी साधना सयम और बलिदान से किया है। आश्चर्य है कि मिथिला के सभी राजवश सब समय मे एक ही सिद्धान्त और विचार के रहे हैं। जिस प्रकार विदेहराज जनक अपने समय मे विद्या, ज्ञान तथा धम के रक्षक थे उसी प्रकार सभी परवर्ती राजवशों ने विद्वानो और पडितो को सरक्षण दिया है और स्वय भी व प्रकाण्ड पडित रहे हैं। निमि, कर्नाट कामेश्वर ठाकुर के राजवशो मे सर्वाद्धित और सरक्षित ज्ञान उत्स आज भी दरभगा राज्य के सरक्षण मे अक्षुण है। इस परम्परा का गव मिथिलावासियो को है जिसक प्रतीक स्वरूप अज्ञात कवि का यह छद उनकी जिह्वा पर निरत नतन करता रहता है—

जाता सा यत्र सीता सरिदमल जला वाग्वती यत्र पुण्या,
यत्रास्ते म निधाने सुरनगर नदी, सरवो यत्र लिगम।
मीमासा याय वेदाध्ययन पटुतर पडितैर्निराडता या,
भूदेवो यत्र भूपो यजन वासुमती, सास्ति मे तीर भुक्ति।

मिथिलावासियों में सस्कृत भाषा के प्रति प्रगाढ़ प्रेम रहा है। सस्कृत

के अति प्रेम के कारण ही इनकी अपनी मातृ भाषा मैथिली को चिरकाल तक वन्दिनी और उपेक्षिता का जीवन व्यतीत करना पडा जिसका सव प्रथम उद्धार कविवर विद्यापति ने अपनी लेखनी के स्पश से किया। तभी से यह कोकिला भाषा कोटि-कोटि कण्ठो का हार बन गई और इसके हृदयस्पर्शी स्वर से मिथिला की अमराइयाँ गूज उठी।

प्राचीनतम अभिलेखो से स्पष्ट है कि मिथिला बहुत काल तक वेद तथा औपनिषदिक विद्या का केन्द्र रहा है और उत्तर वैदिककाल मे सास्कृतिक विकास के जिस आन्दोलन का सूत्रपात हुआ उसका सूत्रधार मिथिला ही रहा। धर्म, विद्या और सस्कृति मे उन्नतशील होने के नाते मिथिला और यहाँ के निवासी उज्ज्वल यश के भागी रहे हैं जिसकी घोषणा स्मृति सूक्तियो मे—'धर्मस्य तत्व विज्ञेय मिथिला व्यवहारत' मे की गई है। यह ज्ञान कोष केवल दरबारो और पडितो की गोष्ठियो तक ही सीमित नही था वल्कि समाज के निम्न वग मे भी उसका सम्यक प्रकाश था। 'धम व्याध कथा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। प्राचीनकाल की आम धारणा थी कि धम और तत्व ज्ञान मिथिला से ही सीखा जा सकता है। मिथिला के अनेक राजे महाराजे, उनकी विदुषी रानियाँ स्वय श्रेष्ठ विद्वान, विदुषी और विद्वानो के आश्रयदाता रहे हैं। दाशनिक महाराज मुक्त विदेहराज और नव्य न्याय के महापडित महाराज महेश ठाकुर पर कौन ऐसा मिथिलावासी है जिसे गव न होगा। कविवर विद्यापति की यह उक्ति इस सदभ मे अत्यन्त सार्थक है—'अहो तीरमुक्तिया स्वभावाद गुणगर्विण भवन्ति।'

भारतीय षड्दशनो म कम से कम चार की नीव ई० पू० 1000 से 600 तक के बीच मिथिला मे ही पडी। गौतम कपिल कणाद और जैमिनि ने क्रमश न्याय, सांख्य, वैशेषिक और मीमासा की व्याख्या सर्वप्रथम यही की। ऋग्वेद के कतिपय ऋचाओं के द्रष्टा ऋषि गौतम राहुगण जनक मिथिला के पुरोहित थे इन्हीके वशधर गौतम अक्षपाद न्याय दशन के प्रणेता थे। शुक्ल यजुर्वेद सहिता के सकलनकर्ता, शतपथ ब्राह्मण के रचयिता सुप्रसिद्ध और महान तत्ववेत्ता विदग्ध शाकल्य को शास्त्राथ म पराजित कर स्वण जटित सींगवाली सहस्र गौवें प्राप्त कर अध्यात्म जगत

मे अपना नाम अमर करने वाले याज्ञवल्क्य का निवास भी मिथिला के निकट जगवन था। सांख्य दर्शन के प्रणेता कपिल मुनि का आश्रम मधुबनी के समीप कपरौढ ग्राम मे था और वैशेषिक दर्शन के प्रणेता कणाद भी मिथिला के निवासी थे। कामसूत्र और वात्स्यायन भाष्य के रचयिता वात्स्यायन और श्लोकवार्तिक के प्रणेता मीमांसक शिरोमणि कुमारिल भट्ट जिन्होने वैशाली से बौद्ध विचारधारा को समूल नष्ट कर पुन वैदिक धर्म की स्थापना की थी, की भी जन्मभूमि मिथिला ही थी। मिथिला की ही राज्य सभा मे उद्दालक, आरुणि, अक्षपाद, वात्स्यायन, उदोनकर तथा विदुषी शिरोमणि गायत्री और मैत्रेयी रही हैं। इसी दरबार मे व्यास पुत्र शुकदेव और कौशिक मुनि की ज्ञान पिपासा शान्त हुई है। इसी मिथिला म जगतगुरु शंकराचार्य से सफल शास्त्रार्थ करने वाले महापंडित मण्डन मिश्र और उन्हें पराजित करने वाली उनकी पत्नी भारती देवी हुई थी।

इसके अतिरिक्त दरभगा स्थित अधराठढी ग्राम निवासी षड्दर्शनाचार्य महामहोपाध्याय वाचस्पति मिश्र का विभिन्न दर्शन ग्रन्थो पर भाष्य साहित्य की अमूल्य निधि हैं। दरभगा के ही सरसिव ग्रामवासी एक और वाचस्पति मिश्र भी अनेक ग्रन्थो के प्रणेता हुए हैं जिनकी ख्याति मिथिला के कोने कोने मे व्याप्त है। बौद्धमत के खण्डन करने वाले महामहोपाध्याय गंगेशोपाध्याय मधुबनी के निकट मगरौनी ग्राम के निवासी थे और उनकी इतिहास प्रसिद्ध पाठशाला के खडहर करियन के निकट गगराही ग्राम मे अब भी विद्यमान हैं। इनके यहाँ बगाल तथा अन्य क्षेत्रो से छात्र ज्ञानार्जन के लिए आया करते थे। इन्ही के प्रमुख शिष्य 'आर्यासप्तसती' के रचयिता करियन ग्राम निवासी गोवर्धनाचार्य हैं। बौद्ध धर्म के मूलोच्छेदक महान-दार्शनिक उदयनाचार्य भी इसी ग्राम के निवासी और गोवर्धनाचार्य के शिष्य थे। जिनकी गर्वोक्ति से किसी भी भारतीय का मस्तक ऊँचा हो सकता है—

वयमिह पदविद्या तर्कमान्वीक्षिकी वा,
यदि पथि विपथे वा वर्तयाम स पथा,

उदयति दिशि यस्या भानुमान सव पूर्वा,
नहि तरणिरुदीते ि्क पराधीन वति ।

मथिल ब्राह्मणो के सोदरपुर वश के आदिपुरुष सुरेश्वर मिश्र का घराना भी विद्वता की दष्टि से मिथिला के इतिहास मे अमर है। विक्रमादित्य के नवरत्नो म एक 'लिंग वत्ति' व्याकरण ग्रथ के रचयिता वररुचि इसी परिवार के पूव पुरुष थे। इसी वश मे पातजलि वेत्ता व्यासदत्त मीमासक जयादित्य, साख्य शास्त्री श्रीपति, काव्यकोविद गणेश्वर, प्रसिद्ध कवि रसमजरी के रचयिता भानुमिश्र, विख्यात विद्वान हलायुध, धमशास्त्री श्रीदत्त वेदा ती भवदत्त काव्यालकारकार दामोदर और व्याकरण दशनकार पदमनाभ और नाटककार मुरारि मिश्र अपने समय के विद्वान शिरोमणि हुए हैं।

राजवशावली के इतिहास पर दृष्टिपात करने से जो तथ्य सामने आते हैं उनके अनुसार अत्य त प्राचीन एव भारतीय सभ्यता, सस्कृति एव ज्ञान के के द्र इस विशाल भू भाग से निमि के 56 पीढियो के बाद महाराज कृति के समय मे ग्यारहवी शताब्दि के पूर्वाद्ध के प्रारम्भ म महाराज जनक के वश की इतिश्री हो गई। इस गौरवमडित वश के अवसान के बाद सन् 1089 मे ना य देव नामक एक क्षत्री राज्य करता हुआ प्राप्त होता है जिसके वश के राजाओ ने 1334 ई० तक मिथिला पर शासन किया। इस शासनकाल मे सरक्षित विद्वानो मे 'व्याख्यानामृत' के रचयिता महामहोपाध्याय श्रीकर आचाय, सरस्वती कठाभरण के कर्ता रत्नेश्वर मिश्र तथा 'मृच्छकटिक' नाटक के सुप्रसिद्ध भाष्यकार पृथ्वीधर आचार्य अविस्मरणीय हैं। राजा शक्ति सिंह देव के प्रधानमत्री एव कवि कठहार विद्यापति के पूवज चडेश्वर ने सप्त रत्नाकर, कृत्य रत्नाकर, दान रत्नाकर, व्यवहार रत्नाकर, शुद्धि रत्नाकर, पूजा रत्नाकर, विवाद गृहस्थ रत्नाकर आदि ग्रंथों की रचना की। उन्हीं के समकालीन विद्वान रत्नाकर और श्रीदत्त उपाध्याय, हरिनाथ उपाध्याय भव शर्मा, इन्द्रपति और लक्ष्मीपति आदि थे। इसी वश के शासन काल मे सब प्रतिष्ठ विद्वान ज्योतिरीश्वर ने पचशायक रज नेखर तथा मथिली भाषा के आदि महान ग्रथ वण रत्नाकर की रचना की। इसके सम्बन्ध मे डा० अमर नाथ

झा लिखते हैं कि Varna Ratnakar of which an excellent edition has been brought out by Asiatic Society of Bengal, under the able editorship of Suniti Kumar Chater Jee and Pt Babua Jee Misra The Prose style of this writer challanges comparison with that of 'Bana' in his 'Kadambari and 'Subandha' 'Vasawa Datta' [1]

ब्राह्मण एव पडितो के सरक्षक एव आश्रयदाता इस वश के अन्तिम राजा हरिसिह देव न मैथिल ब्राह्मणो एव मैथिल कर्ण कायस्थों का पजी प्रबन्ध पडित रघुदेव झा द्वारा सग्रहीत करवाया जो मिथिला सम्बन्धी ऐतिहासिक शोधो के लिए बडे महत्त्व का है। राजा हरिसिह देव की विरक्ति के पश्चात् सन् 1324 ई० म गयासुद्दीन तुगलक ने मिथिला को जीतकर राज्य के मन्त्री कामेश्वर ठाकुर को वहाँ का शासक नियुक्त किया। कामेश्वर ठाकुर ओइनवार वश क मथिल ब्राह्मण थे। इनके भी वशधरो ने साहित्य सस्कृति और पाडित्य को सरक्षण प्रदान किया। मैथिल ब्राह्मणो के सुप्रसिद्ध अलई वश की उसरौली तथा बैगनी शाखाओ के आदिपुरुष महामहोपाध्याय गदाधर झा की विद्वता पर रीझकर गयासुद्दीन न उसरौली (पटना) और फरूखाबाद (दरभगा) की जागीर उन्हें दी थी। महाकवि विद्यापति भी इसी ओइनवार वशी महाराजा शिव सिह के मन्त्री तथा राजपडित थे जिनकी कोमलकान्त पदावली का प्रचार मिथिला के घर घर मे है।

सुविख्यात दार्शनिक एव कवि पक्षधर मिश्र विद्यापति के सहपाठी थे। बगाल के सुप्रसिद्ध नैयायिक वासुदेव सर्वभौम इनके प्रधान शिष्य थे जिनके द्वारा 'नव्यन्याय' बगाल म पहुँचा। अयाची भावनाथ मिश्र के पुत्र महामहोपाध्याय शकर मिश्र का जन्म भी इसी समय हुआ था जिनकी प्रसिद्ध रचनायें हैं—वशेषिक सूत्रोपस्कार, अनुदानचिन्ता मणि पियूष, गौरी दिगम्बर प्रहसन, भेद रत्न कटको द्धार रसार्णव, वाद विनोद तथा छान्दोगाह्निक। इनके सम्बन्ध मे यह उक्ति मिथिला मे प्रचलित है—

1 डॉ० जयकान्त मिश्र कृत—हिस्ट्री आफ मथिली लिटरेचर की भूमिका—द्वारा डॉ० अमरनाथ झा,

दानर याचरत्नो मत रत्याचरत्नो मदृनो।
पदाधर प्रतिपदी सदोभूतो त च क्वापि ।।

मिथिलेन शिवसिंह कवियो और विद्वानों के पोषक तो थे और स्वयं भी बहुत बडे कला प्रेमी और कलाकार थे। शिवसिंह रचित ग्रथों मे— सगीत रत्नाकर व्याख्या सगीत, रसायन वसुधाकर आज भी उपलब्ध है और वे आज भी महान कला प्रेमी के रूप मे मिथिला म पूजे जाते हैं। लोक वाणी मे प्रचलित है —

पोखरि रजोखरि और सब पोखरा'
राजा शिव सिंह और सब छोकरा।

विद्यापति इन्ही के राजपडित और सखा थे। विद्यापति की वधू चन्द्रकला भी एक प्रख्यात विदुषी और कवयित्री थी। इसी वश के महाराज भैरव सिंह के द्वार पडित मुरारि मिश्र ने 'अनघराघव' की टीका की थी। 'सप्तपदार्थिक' के रचयिता श्री दत्तोपाध्याय, धर्मपितृभक्ति के रचयिता श्रीदत्त मिश्र क्रमश चौदहवी पन्द्रहवी शताब्दि के श्रेष्ठ विद्वान थे। इसी काल के दरभगा स्थित दवकुली ग्राम मे वद्धमानिदवर शिव के स्थापक वद्धमानोपाध्याय श्रेष्ठ और प्रामाणिक निबन्धकार थे।

अभिनव जयदेव विद्यापति के पूवज महामतक गणेश्वर ने, दान रत्नाकर', विवाह रत्नाकर', 'श्राद्ध रत्नाकर' व्यवहार रत्नाकर आदि ग्रथो की रचना की। महमीसरि निवासी महामहोपाध्याय गोविन्द ठा ने काव्य प्रकाशकार मम्मट की माता के आग्रह से 'काव्य प्रकाश पर सुप्रसिद्ध भाष्य ग्रथ 'प्रदीप की रचना की। कवि विद्यापति को लुब्ध नागर याचक नाम से सम्बोधित करने वाले ओइनवार वश के दौहित्र महामहोपाध्याय केशव मिश्र ने द्वैतपरिशिष्ठ, 'सद्यापरिमाप' और वार भाष्य आदि ग्रथो की रचना की जो धमशास्त्र के प्रामाणिक ग्रथ माने जाते हैं। इस वश के अतिम प्रसिद्ध राजा लक्ष्मीनारायण जिनका उपनाम रिपुञ्जय नारायण था पडितो और विद्वानो के आश्रयदाता थे। मथिली के सुविख्यात कवि गोविन्द झा इन्ही के दरबार के रत्न थे। विदुषी रानी लखिमा दई का नाम मिथिला मे कौन नही जानता है। भैरव सिह के अनुज राजा चन्द्रसिंह की पटरानी रचित 'पदाथ चन्द्र और 'विचार च द्र'

न्यायविषयक सुन्दर ग्रंथ हैं। सुप्रसिद्ध छन्दो ग्रंथ 'वाणी भूषण' के रचयिता महामहोपाध्याय दामोदर मिश्र राजा कीर्ति सिंह के और 'काव्य प्रकाश' पर सुप्रसिद्ध भाष्य 'काव्य दर्पण' के कृतिकार रत्नपाणि ठाकुर राजा शिवसिंह के दरबारी थे। उनके पुत्र रवि ठाकुर ने भी उसी ग्रंथ पर 'मधुमती' नामक भाष्य की रचना की। इस प्रकार मिथिला मे ज्ञान साधना और काव्य परम्परा की अनवरत धारा प्रवाहित होती आ रही है। गणेश दत्त कालेज, बेगूसराय के इतिहास विभागाध्यक्ष प्रो० राधा कृष्ण चौधरी लिखते हैं—Mithila had been the land of great scholars seince time immorial Vidya Pati was Native of Mithila Pre Vidya Pati Sanskrit scholars were Bhanudatta, Chandeshwar thakur, Umapati, Goverdhana cherya Graheswar Mishra, Hari Nath Upadhyay, Jyotireshwar, Ram Datta Thakur Ganesh, Vardhman or Singh Bhupat

मिथिला के राजाओ, पडितो और निवासियो का पारम्परिक ज्ञान के प्रति असाधारण मोह अत्यन्त फलदायी सिद्ध हुआ है। मिथिला ने ही ज्ञान का मशाल सभी युगों मे प्रदीप्त रखा है। सच तो यह है कि प्राचीन रूढियो और परम्पराओ के प्रति घोर आस्था और आसक्ति जो मिथिला मे पायी जाती है उसने ज्ञान की रक्षा इस प्रकार से की है जसे सर्प कुण्डली मार कर किसी कोष की रक्षा करता है और उपयुक्त अधिकारी को उसके प्रयोग और सवर्द्धन का अवसर प्रदान करता है। मिथिला के ज्ञानी पडित, साधक, कलाकोविद और उनके सरक्षक और आश्रयदाता जिनका उल्लेख किया गया है—वे ही उस धरती-कोष के उपयुक्त अधिकारी थे और उन्होने अपने जीवन स्नेह से उसे सींचकर उस धारा की अनन्तता को अक्षुण्ण रखा और उसका प्रचार प्रसार कर लोक जीवन को विविध आयामी आमोद प्रदान किया।

मिथिला का धार्मिक जीवन तीन शक्तियो का एक सगम विशेष है जहां धर्म की तीन सरिताएँ सगमित होकर उसे पवित्र तीर्थ स्थान बनाती हैं। मैथिल ब्राह्मणो के ललाट पर शोभित त्रिपुड इन तीनो शक्तियो की उपासना का प्रतीक है। भस्म की तीन पडी रखायें भगवान शकर की

उपासना की अभिव्यक्ति हैं, चन्दन की खड़ी रेखा भगवान विष्णु मे उनका विश्वास व्यक्त करती है और ललाट के मध्य मे स्थित सिंदुर अथवा रोली का टीका भक्ति की उपासना का प्रतीक है। यह प्रतीक सिद्ध करता है कि शिव उनके जीवन मे आधारभूत रूप से व्याप्त हैं। विष्णु हृदयस्थ है और शक्ति केन्द्रस्थ। मिथिला के लोग वर्णाश्रम धर्म मे सहज और अटूट विश्वास रखते हुए शिव, शक्ति और विष्णु के उपासक हैं। धर्म इनके जीवन की प्रेरक आस्था है प्रचार और सहार का उत्प्रेरक नही।

मिथिला मे शिवोपासना का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक है। कृष्ण पक्ष चतुर्दशी का व्यापक व्रत पार्थिव शिवलिंग की उपासना, शिव को एक मात्र मुक्ति प्रदाता की मान्यता और उनके क्षेत्र मे प्रचलित अनेक लौकिक प्रथायें तथा 'महेशवानी' और 'नचारी' का प्रचलन मिथिला मे व्यापक शिवोपासना के प्रमाण हैं। शिवालय और शिवरात्रि का महत्त्व तो मिथिला की ही देन है। मिथिला के अनेक सतो और उपासको ने शक्ति की साधना म अपना जीवन होम कर दिया है—देवादित्य, वर्द्धमान, मदन उपाध्याय, धीरेन्द्र उपाध्याय, गोकुल नाथ तथा राजर्षि मिथिलेश रामेश्वर सिंह आदि इसके प्रमाण हैं। मिथिला मे प्रत्येक घर मे 'गोसौनी' उसी प्रकार पाई और पूजी जाती है जस उत्तर भारत म रामचरितमानस या गीता। मिथिला के अनेक सिद्धिपीठ—उचथ, जनकपुर, भुमुदेश, धाम, उग्रतस्थान आदि शक्ति उपासना मे केन्द्र हैं। शिव यदि मुक्ति दाता हैं तो शक्ति सिद्धि प्रदायिनी हैं। शक्ति के बिना तो शिव को शव कहा गया है। शक्ति की उपासना का मथिल जीवन म गहराई का अनुमान तो इसी से लगाया जा सकता है कि—बालक का विद्यारम्भ यहाँ शक्ति के मत्र से किया जाता है—

मातं भवतु सुप्रीता देवी शिखर वासिनी।
उग्रेण तपसा लब्धोभया पशुपति पति ।

इतना ही नही भित्तिया पर चित्रित 'ऐपन' एक तान्त्रिक चिह्न है। मिथिला का वर्णाधार, अभिलेख तथा साहित्य सभी शक्ति की उपासना से प्रभावित है और अनक तान्त्रिक ग्रथ भी सस्कृत म उपलब्ध हैं। इनका शुभ चिह्न 'मजो भी कुण्डलिनी का तान्त्रिक प्रतीक है।

विष्णु की उपासना का प्रभाव मिथिला के साहित्य और जीवन पर अपेक्षाकृत कम है। यह भीतर से उत्पन्न नही बल्कि बाहर से ग्रहण किया हुआ प्रभाव है। भागवत, हरिवश, ब्रह्मवैवर्त पुराण के प्रचलन आदि स मिथिला मे वष्णवोपासना का सकेत मिलता है। मिथिलावासी वैष्णव को विरक्त मानते हैं—विरक्त वह है जो बन्धनो से मुक्त हो, शैव होते हुए भी मछली और प्रसाद को ग्रहण न करता हो और उसके गले मे तुलसी की माला हो। ऐसे सत का वे विशेष आदर करते हैं। इस प्रकार मिथिला के धार्मिक जीवन मे शिव और शक्ति की उपासना की प्रमुखता है और विष्णु के प्रति उसम उदार आस्था है—जा यहाँ के निवासियों को समन्वयवादी सिद्ध करती है।

मिथिला का सगीत और नृत्य प्रेम भी अनूठा है। यहाँ के सगीत प्रेम ने साहित्यिक अनुभूति को वाणी और स्वर प्रदान किया है। यह मिथिला के लोक जीवन का अभिन्न अग है। पूर्वी भारत का समस्त साहित्य मिथिला के इस सगीत प्रम से प्रभावित है और इसका स्वर प्रधान है। किन्तु दुर्भाग्य है कि मिथिला की सगीत-नृत्य विधा का सम्यक एव विस्तृत इतिहास उपलब्ध नहीं है। अत यहाँ के सगीत और नृत्य कला के उत्स और विकास की जानकारी के लिये कतिपय विरल प्राप्त स्रोतो से ही सतोष करना पडता है। जो इने-गिने अन्वेषको एव सगीत प्रेमियो के फलस्वरूप उपलब्ध हैं। चेतनाथ झा लिखित उमापति के 'पारिजात हरण की भूमिका', मुरारी प्रसाद एडवोकेट की रचना 'विहार और सगीत कला,' ईशनाथ झा रचित 'विद्यापति और उनकी सगीत कला' आदि कुछ, फुटकल रचनायें हैं जिनसे मिथिला के सगीत प्रेम पर थोडा-बहुत प्रकाश पडता है। वसे इस क्षेत्र म शोध कार्य की पर्याप्त गुजाइश है।

राग रागिनियो का सवप्रथम परिचय 'कार्या पद' म प्राप्त होता है। किन्तु इन्हें विकसित तथा विस्तत विवेचन का श्रेय महाराज नान्य देव (1097-1133) को जाता है जिनकी प्रमुख रचना है—'सरस्वती हृदयोहार'। इसके पश्चात् मिथिला के सगीत विधा पर गीत गोविन्द के प्रख्यात कवि जयदेव का प्रभाव पाया जाता है जिसका उल्लेख राम कृष्ण कवि के एक लेख 'जनल आफ आन्ध्र हिस्टारिकल सोसायटी वाल्यूम I मे

मिलता है। महाराज हरिसिंह देव के शासन काल (1296 से 1324) में मिथिला में सगीत और नृत्य कला का व्यापक विकास हुआ। इस विकास का ही परिणाम है कि तीन प्रकार के नृत्य—नत्य, पात्रनृत्य, प्रेरण नत्य की चर्चा के साथ ढोलवादक के दस गुणो, मुरजि वादक के बारह गुणों, दस रसों तथा बीस व्यभिचारी भावो की भी चर्चा की गई है। उस समय पात्रा नाम की एक नृत्यागना थी जिसका बत्तिस प्रकार की कायिक चेष्टाओ और बत्तिस प्रकार की मुद्राओ पर अधिकार था। प्रेरणानामक नर्तक भी था जिसका नृत्य की विभिन्न मुद्राओ पर अधिकार था। शुभाकर नाम के व्यक्ति ने नृत्य और सगीत कला पर दो पुस्तकें—'नत्य दामोदर' और 'सगीत दामोदर' लिखी थी जो राजगुरु हेमराज शर्मा के पुस्तकालय नेपाल मे आज भी उपलब्ध हैं। सगीताचार्य बुद्धन का भी नाम इस क्षेत्र मे आदर के साथ लिया जाता है। सगीत कला की दृष्टि से इस युग को स्वर्ण युग की सज्ञा दी जा सकती है जिसका प्रभाव समस्त पूर्वी भारत पर व्याप्त था और आसाम, बगाल और नेपाल तो आज भी मिथिला के ऋणी हैं और रहेंगे।

सत्रहवी शताब्दि के अन्तिम भाग मे मिथिला मे सगीत शास्त्र के आधिकारिक व्याख्याता लोचन शर्मा (1681 ई०) का अभ्युदय हुआ जिन्होंने अपनी पुस्तक 'राजतरगिणी' मे नाना प्रकार की राग रागिनियों की ऐतिहासिक और प्राविधिक व्याख्या की है। इसके पश्चात् उमापति और गोविन्द दास ने गीत परम्परा का सुन्दर निर्वाह किया। उन्नीसवी शताब्दि मे हर्षनाथ झा, भानु झा, चन्द्र झा ने सगीत के प्राचीन परम्परा की रक्षा की राजदरबारों तथा बबुआनो ने भी इस दिशा मे महत्वपूर्ण काम किया है। महाराज छत्रसिंह, तत्रधारी सिंह, ललितेश्वर सिंह तथा बनौली के राजा कालिका सिंह, मनराही के शशि झा विष्णुपुरा के रामानुग्रह झा तथा नदोरा के मुन्नी महाराज सगीत कला के महान साधक हुए हैं। मिथिला की सगीत प्रधान भूमि के कुछ गाँवो का भी इस क्षेत्र मे विशेष महत्व है यथा—पचगछिया, पनिकोवा तेमाका, खडगा, योगियारा, विष्णुपुरा तथा नदोरा आदि।

मिथिला की स्त्रियाँ भी सगीत कला मे दक्ष रही हैं। इनका सम्पूर्ण

जीवन और समाज विविध अभिषेक ही सगीतमय है। महादेवी लखिमादेवी और विद्यापति की पुत्र वधू चन्द्रकला तो इतिहास प्रसिद्ध हैं। यहाँ की सामान्य स्त्रियों का भी सगीत प्रेम और उनका सगीतमय जीवन यहाँ की सास्कृतिक धरोहर है। मध्यकालीन राजनैतिक प्रहार से सगीत कला की रक्षा यहाँ के स्त्री समाज ने लोक गीतो के माध्यम से की। आज भी मिथिला मे कुछ ऐसे स्थान हैं जहाँ की स्त्रियाँ लोक कला की दृष्टि से मिथिला की गौरव मानी जाती हैं—वे स्थान हैं—खडकवसन्ता, शशिपुरा पिसरववादा, तरौनी, पोखरौनी कँकरोढ, सौरथ, सुगौना तथा कुकुनी आदि।

मिथिला की साहित्यिक सास्कृतिक और ज्ञान गरिमा से अभिमडित गौरव गाथा की झलक उपरोक्त वणन मे पाई जा सकती है। इस सम्पन्न मानव हृदय और उर्वर मस्तिष्क की धरोहर है मिथिला की पवित्र जल-प्रधान भूमि जिसके मानस पुत्र हैं महाकवि विद्यापति—मैथिल कोकिल जिनकी काकली की अनुगूँज मिथिला की अमराइयो मे ही नही वहाँ के निवासियो के हृदय म भी वर्तमान है और जिसका शाश्वत स्वर कोई भी सहृदय कमनाशा नदी से लेकर हिमालय की गोद म स्थित नेपाल की तराइयो तक सुन सकता है।

विद्यापति—जीवन प्रसग

कलाकार अपनी कृतिया मे जीवित रहता है, आयु के सीमित बधनो मे नही। भारतीय साहित्य मन्दिर के साधक मनीषी इस तथ्य को भली-भांति जानते थे इसीलिये उनकी रचनाओ मे नियोजित आत्मपरक अभिव्यक्ति नही के बराबर मिलती है। अस्तु इन मनीषियो के जीवन सम्बन्धी सत्यो के आकलन हेतु शोधी प्रवतियो को अन्त तथा वाह्य साक्ष्यो का ही विश्रृंखल सहारा मिलता है। वे तक, प्रचलित एव परम्परित मान्यताओ तथा अनुमान और कल्पना की सकीर्ण पगडण्डी पर सयत एव सावधान होकर चलते हैं और गभीर मथन चिन्तन एव विचारविमश के पश्चात किसी मान्य निष्कर्ष पर पहुचने का प्रयास करते हैं। कवि विद्यापति की जीवनगाथा भी इन्ही साधनात्मक प्रयासो की अपेक्षा रखती है। किन्तु मिथिला मे प्रचलित 'पजी प्रथा' एव कवि के प्रभावशाली राजदरबारी सम्बन्धों के कारण विद्यापति के जीवन प्रसगो की प्रामाणिक उपलब्धि अपेक्षाकृत सरल है।

जन्म स्थान—कवि कुलभूषण महाकवि विद्यापति का जन्म मिथिला राज्यान्तगत जरैल परगना के बिसपी ग्राम मे हुआ था। इसे गढ़बिसपी भी कहते हैं। पडित रमानाथ झा राज लाइब्रेरियन दरभगा का कथन है कि विद्यापति के पूवज सामन्त मध्य युग के प्रभावशाली जमीदार। ये ठाकुर उपाधिधारी महथा और महाराजधिराज भी कहलाते थे इसलिये बिसपी को गढ़बिसपी की सज्ञा मिल गई हो। यह ग्राम दरभगा (द्वारबग) उत्तर-पूर्व रेलवे क कमतोल स्टेशन क निकट है। इस समय तो विद्यापति

की स्मृति मे हाजीपुर से बरौनी शाखा लाइन पर विद्यापति नगर स्टेशन का भी निर्माण हुआ है। आज भी कोई जिज्ञासु यदि कवि की जन्मभूमि का दर्शन करना चाहे तो उसे विद्यापति डीह, विद्यापति कुल देवता, आँगन से पूव दिशा मे बहने वाली कमला नदी तक का सुरंग, विद्यापति की चौपाढ़ि (चतुष्पाटी) आदि का भग्नावशेष देखने को मिल सकता है। महानुकवि एव प्रिय सखा विद्यापति के गुणों पर रीझकर महाराज मिथिलेश शिवसिंह ने इस ग्राम को अपने राज्याभिषेक के पश्चात् उन्हे उपहार स्वरूप भेंट किया था। इस ग्राम को भेंट रूप मे स्वीकार करने के कारण ही महा महोपाध्याय केशवमिश्र ने विद्यापति को अति लुब्ध नागर याचक कह कर व्यग्य किया था और विद्वत मडली म उन्ह कोसा था। महाराज शिवसिंह द्वारा आदेश ताम्रपत्र का अभिलेख इस प्रकार था—'राजरथपुर के समस्त राजकीय पदार्थों से विराजमान श्री रामेश्वरी भगवती के वर से लब्ध प्रसाद, गौरीशकर के परम भक्त रूपनारायण पदभूषित श्रीमान शिवसिंह दवजू समरविजयी जरइल तप्पान्तगत बिसपी ग्राम निवासी सब लोगो और कृषकों को आज्ञा प्रदान करते हैं। आप लोगों को ज्ञात हो—यह ग्राम मैंने सत्कर्मशील अभिनव जयदेव राजपडित श्री विद्यापति ठाकुर को शासन सहित प्रदान किया। इसलिये तुमलोग इनकी आज्ञा के वशवर्त्ती हो कृषि आदि सभी कम करोगे।'[1] (इति लक्ष्मणसेन सम्वत 293 श्रावण सुदि सात-गुरौ) इसके अतिरिक्त इस दान पत्र मे आठ श्लोक भी हैं जिनमे प्रथम श्लोक मे दान का उल्लेख, द्वितीय से लेकर सातवें तक महाराज शिवसिंह की प्रशस्ति और आठवें श्लोक मे एक निषेधात्मक आदेश है।"[2]—हिन्दू अथवा मुसलमान जो कोई राजा इस बिसपी गाँव से कुछ ग्रहण करेंगे वे गाय, सुअर व अपने शरीर के मांस सहित सवथा अपने धर्म को खोयेंगे और जो अपने प्रताप से इस राजकीय कर रहित

1 अनुवाद—'जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बगाल से

2 ग्रामे गर्ह त मुपिन किमपि नृपतयो हिन्दवो य तुरुस्का गो कोल स्वात्ममांसे सहित मनुदिन भुजते स्वधमम्।

(वही—ज० सो० रा० ए० ...

गाँव का पालन करेंगे उनके सुयश का गान चारों ओर बहुत दिनों तक बन्दीजन गाते रहेंगे।

मिथिला में अनेक उत्थान पतन हुए किन्तु विद्यापति के वंशज ईस्ट इंडिया कम्पनी के भूमि बन्दोबस्त की क्रिया तक इसका भोग करते रहे इस दान पत्र को ग्रियसन और सेटलमेन्ट के आफिसरों ने जाली माना किन्तु महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री एवं अन्य विद्वान इसे प्रामाणिक मानते हैं।

कुल परिचय—मैथिल ब्राह्मणों के सुप्रसिद्ध परिचयात्मक ग्रंथ पंजी प्रबन्ध में विद्यापति के वंश का प्राप्त परिचय इस प्रकार है—"गढविसपी बीजी पुरुष विष्णु शर्मा विष्णु शर्मा सुतो हरादित्य, हरादित्य सुत कर्मादित्य, कर्मादित्य सुतो सन्धिविग्रहिक देवादित्य, राजवल्लभ, भवादित्यौ, देवादित्य सुता भाण्डागारिक वीरेश्वर, वार्तिक नैबन्धिक धीरेश्वर महामत्तक गणेश्वर भाण्डागारिक जटेश्वर, स्थानान्तरिक हरदत्त, मुद्राहस्तक लक्ष्मीदत्त राजवल्लभ-शुभादत्त भिन्नमात्रिका।"[1] प्राप्त अभिलेखों से ज्ञात होता है कि कर्मादित्य सन् 1331 ई० में विद्यमान थे। इनके दो पुत्र थे देवादित्य और भावादित्य। देवादित्य राजा हरिसिंह के प्रधानमंत्री थे। ये बड़े यशस्वी और दानशील थे। इनकी तीन पत्नियाँ और सात पुत्र थे—भाण्डागारिक वीरेश्वर, महावार्तिक नैबन्धिक धीरेश्वर, महामत्तक गणेश्वर भाण्डागारिक जटेश्वर, स्थानान्तरिक हरिदत्त मुद्राहस्तक लक्ष्मीश्वर तथा राजावल्लभ हरिदत्त। कवि विद्यापति ने अपनी रचना पुरुष परीक्षा' में 'सुबुद्धि कथा शीर्षक निबन्ध में इन्हें 'सास्य सिद्धान्त परगामी' और दण्डनीति कुशल कहा है। देवगिरि के राजा ने इनकी परीक्षा लेने के लिये महाराज हरिसिंह देवजू से एक पंडित और एक मूर्ख की याचना की थी। जब महाराज विचलित से नजर आये तो मन्त्री गणेश्वर ने उन्हें यह उत्तर देकर विदा किया—'पंडित न तो मेरे राज्य में हैं न आपके, बुद्धि का फल तो आत्मज्ञान है वह जिसे प्राप्त होता है वह जंगलों में जा बसता है, रही मूर्ख की बात तो उनकी कमी कहीं भी नहीं है—

---

1 काशी प्रसाद जयसवाल—राजनीति रत्नाकर भूमिका, पृ० 19

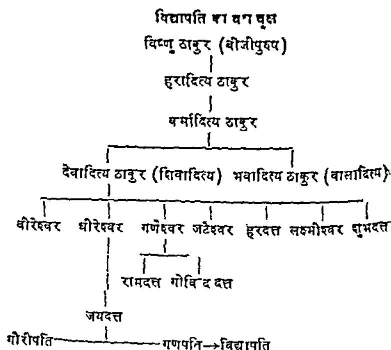
मूर्ख की पहचान इस दोहे से हो जायेगी—

सुन्दर कर सुन्दर चरन, दइअ सुसपति पाव,
जनिकर निन्दा लोक मे सो पुनि मूर्ख कहाव।
पावोल मानुष जनम का, पुण्य न सचित भेल,
शुद्ध सुयश जनिकर न पुन, मूख कोटि मे गेल॥

वीरेश्वर के पुत्र चण्डेश्वर पिता की मृत्यु के उपरान्त हरिसिंह देव के प्रधानमन्त्री हुए और इन्हें 'सधिविग्रहक' और 'महथा' की उपाधि मिली। व्यवहार रत्नाकर, कृत्य रत्नाकर, दान रत्नाकर, शुद्धि रत्नाकर, पूजा रत्नाकर, विवाद रत्नाकर, गृहस्थ रत्नाकर, राजनीति रत्नाकर तथा शैव मानसोल्लास इनके प्रसिद्ध ग्रथ हैं। ये जैसे विद्वान थे वैसे ही वीर भी। इन्ही के प्रयत्नो से हरिसिंह देव ने नेपाल घाटी पर आधिपत्य किया। ये पशुपतिनाथ को स्पर्श करने वाले प्रथम ब्राह्मण थे।

देवादित्य के द्वितीय पुत्र धीरेश्वर के दो पुत्र हुए कीर्ति ठाकुर और जयदत्त ठाकुर। जयदत्त के दो पुत्र हुए गौरीपति और गणपति। यही गणपति ठाकुर ओइनवारवशीय राजा गणेश्वर के मन्त्री थे जिनके एक मात्र पुत्र कविकुल चूडामणि विद्यापति ठाकुर हुए। गणपति ठाकुर का विवाह मातृवश की पजी के अनुसार बुधवारये मूलक श्रीधर नामक ब्राह्मण कन्या गागो देवी से हुआ था जिनकी कोख से विद्यापति जैसे कवि रत्न का जन्म हुआ जिसकी पुष्टि विद्यापति के इस प्रचलित कथन से हो जाती है—

जन्मदाता मोर गणपति ठाकुर मिथिला देश कर वास,
पच गौडाधिप शिवसिंह भूपति, कृपा करि लेल निज पास।



विद्यापति के पश्चात भी बारह पीढियो का उल्लेख मिलता है। डॉ० ग्रियसन ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'क्रिस्टोमैथी' मे विद्यापति के पूर्वजो के सात पीढिया के नाम दिय हैं जो ऊपर की तालिका से स्पष्ट हैं। विद्यापति के पश्चात की बारह पीढियो का नाम जो ग्रियसन ने दिया है वह क्रमश इस प्रकार है—हरपति, रतिधर, रघु विश्वनाथ, पीताम्बर, नारायण, दीनमणि, तुला, एकनाथ भैया, फणिलाल तथा बदरीनाथ।

कवि विद्यापति के कुलपरिचय के तथ्यो से स्पष्ट है कि इनके कुल की एक सुदीर्घ परम्परा थी। विद्यापति के पूर्वज पाण्डित्य और राजशक्ति के जाने माने इतिहास पुरुष थे। लक्ष्मी—सरस्वती और राजकीय सम्मान का ऐसा सुयोग विरले पुण्यात्माओ को प्राप्त होता है। ऐसी सम्पन्न परम्परा में जन्म और पले विद्यापति के लिये स्वाभाविक था कि वे अपनी कुलपरम्परा की सांस्कृतिक धरोहर की अभिवृद्धि कर अपनी यश पताका

मिथिला के गभीर गगन मे फहरावै।

जन्मतिथि निर्णय—आदिकालीन तथा मध्यकालीन कवियों की जन्मतिथियो की प्रमाणिकता एकत्र करना सरल नही है क्योंकि यह काय अंधेरे या धुँधलके मे सूई ढूढने की तरह है। इन कवियो की रचनाओ तथा जनश्रुतियो से प्राप्त अन्तर तथा वहिर्साक्ष्यों के आधार पर ही इस प्रकार के निष्कप निकाले जा सकते हैं। कविवर विद्यापति की जन्मतिथि भी इसका अपवाद नही है। विद्यापति की जन्मतिथि के सम्बन्ध मे पर्याप्त मतभेद है। विद्वानो द्वारा निर्दिष्ट कुछ महत्वपूर्ण तिथियाँ नीचे दी जा रही हैं—

विद्वानों के नाम	विद्यापति की जन्मतिथि
श्री रामवृक्ष बेनीपुरी—	1350 ई०
श्री कमलनयन झा—	1350 ई०
पडित रामचन्द्र शुक्ल—	1350 और 1352 ई० के मध्य
डा० अरविन्द नारायण सिन्हा—	1350 ई०
महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री—	1357 ई०
डॉ० बाबूराम सक्सेना—	1357—1359 के मध्य
डॉ० उमेश मिश्र—	1360 ई०
प० रमानाथ झा	1360 ई०
श्री शिवनन्दन ठाकुर	1360 ई०
श्री बी०के० चटर्जी—	1372 ई०
श्री सतीशचन्द्र राय—	1380 ई०
बाबू व्रजनन्दन सहाय—	1382 ई०

उपरोक्त तिथियों में अन्तिम तीन ही ऐसी तिथिया—1372 ई०, 1380 ई० और 1382 ई० ऐसी हैं जिनमे काल की भिन्नता विशेष रूप से विचारणीय है। ये तीनो तिथियाँ उचित नही प्रतीत होती हैं।

श्री सतीशचन्द्र राय तथा बाबू व्रजनन्दन सहाय ने अपनी भूल स्वीकार कर ली है। अयोध्या प्रसाद खत्री द्वारा लिखित मिथिला राज्य की वशावली जिसमें 46 वर्षों की भूल अब सबमान्य है। इसी वशावली के आधार पर इनकी जन्मतिथि 1372,80 और 82 मानी गई थी अत भूल का यह

उपयुक्त कारण है। अन्य सभी तिथियाँ 1350 और 1360 के बीच की हैं। यह 10 वर्ष का अन्तर शोध की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो सकता है किन्तु कवि की महत्ता मे कोई अन्तर नही डाल सकता, क्योकि कोई महाकवि 1350 मे पैदा हुआ या 1360 मे इससे उसकी काव्य प्रतिभा या कविता पर क्या प्रभाव पड सकता है। किन्तु प्रमाणो के आधार पर निश्चित तिथि के निर्णय का प्रयास किया जा सकता है।

इस निर्णय के लिये हमे किवदन्तियो और प्रचलित स्फुट पदों का आधार लेना पड़ेगा। देवसिंह की मृत्यु, शिवसिंह का सिंहासनारोहण एवं कवि को दिये गये बिसपी ग्राम के ताम्रपत्र से विद्यापति की जन्मतिथि पर पर्याप्त प्रकाश पडता है। विद्यापति ने अपनी रचनाओ मे जितनी भी तिथियाँ दी हैं वे सभी लक्ष्मण सवत की हैं किन्तु उनके देवसिंह की मृत्यु सम्बन्धी पद मे लक्ष्मणाब्द और शकाब्द दोनो का उल्लेख है—

अनल[3] रन्ध्र[9] कर[2] लक्खन नरवए
एक समुद्द[4] कर[2] अगिनि[3] ससी[1]।
चत करि छठी जठा मिली को
बार वेहप्पय जाहु लसी।
देवसिंह जू पुहुमि छड्डअ
अद्धासन सुर राज सरू॥

इस पद का यदि प्राचीन परिपाटी से अर्थ किया जाय तो देवसिंह की मृत्यु 293 लक्ष्मणाब्द या 1324 शकाब्द अर्थात 1402 ई० मे हुई। शिवसिंह का सिंहासनारोहण इसके अनुसार 1402 ई० मे हुआ और छ महीने के अन्दर कवि को बिसपी ग्राम दान मे प्राप्त हुआ। राज्यारोहण के समय शिवसिंह की अवस्था 50 वर्ष की थी। विद्यापति इनसे दो वर्ष बड़े थे अत उस समय उनकी अवस्था 52 वर्ष की हुई। इस प्रकार उनकी जन्मतिथि 293 लक्ष्मणाब्द—52 = 241 लक्ष्मणाब्द—1324 शकाब्द—52 = 1272 शकाब्द या 1402 ई०—52 = 1350 ई० सिद्ध होती है, जो अधिकांश विद्वानों के मत के अनुकूल है अथवा उसके आस पास।

अब प्रश्न यह उठता है कि 1350 ई० के आस-पास जो तिथियाँ हैं—उनका कारण क्या है और उनमें किस प्रकार के भ्रम की सम्भावना है। डॉ० बाबूराम सक्सेना द्वारा दी हुई तिथि 1357 से ५9 ई० के मध्य है। इस तिथि का आधार है कीर्तिलता की भाषा का भाषा वैज्ञानिक कारण जिसमें 5 7 वर्षों का अन्तर कोई माने नहीं रखता। जहाँ तक 1360 ई० की बात है—इसमें दस वर्ष की भूल लक्ष्मण सवत तथा ईस्वी सन के बीच सर्वमान्य अन्तर के अभाव के कारण है। लक्ष्मण सवत तथा ईस्वी सन के बीच 1108 से 1119 वर्षों का व्यवधान विभिन्न ऐतिहासिक आधारों पर बीम्स, कीलहान तथा जायसवाल प्रभृति विद्वानों ने माना है।[1] विद्यापति की उक्ति भी इस भेद के पक्ष में जाती है। अत इस भेद को स्वीकार कर लेने पर विद्यापति की जन्मतिथि 1350 ई० ही तर्क सगत प्रतीत होती है।

सिंहासन पर आरूढ होने के छै महीने के भीतर ही महाराज शिव सिंह ने अपने मित्र एव राजकवि विद्यापति को बिसपी ग्राम दान दे दिया। दान पत्र के अन्तिम भाग में लिखा हुआ है—"इति लक्ष्मण सवत 293 श्रावण शुक्ल सप्तम्या गुरौ।" श्रावण शुक्ल सप्तमी बृहस्पतिवार बागमती तट पर स्थित गजरथ पुर प्रसिद्ध गाँव दानेच्छा के उत्साह से जिनके दीर्घ बाहु पुलकायमान हो रहे हैं, जो अत्यन्त बुद्धिमान विद्यारसिक हैं, उन वीर-धीर शिरोमणि महाराज शिवसिंह देवजू ने सभा बीच कविवर विद्यापति ठाकुर को अत्यन्त उपजाऊ अधिकतर योग्य पदार्थ देने वाली नदी गर्भित जगलों झीलों सहित सीमाबन्दी कराके बिसपी नामक ग्राम और उसके शासनाधिकार दिये।[2]

---

1 डॉ० श० ना० सिन्हा—विद्यापति युग और साहित्य, पृ० 284

2 अब्दे लक्ष्मणसेन भूपति मते वहि ग्रहद् व्यक्तिते,
मासि श्रावण सतके मुनितिथौ पक्षे वलेक्षे गुरौ।
वाग्वत्या स्सरित स्तरे गजरथे ख्याख्या प्रसिद्धे पुरे,
दिच्योत्साह विवद्ध बाहु पुलक सम्याय मध्ये सभम्॥
(दान पत्र का प्रथम श्लोक)

श्रावण शुक्ला सप्तमी वृहस्पतिवार को इस ग्राम का दान कवि की जन्मतिथि की ओर संकेत करता है। मिथिला मे जन्मदिन तथा अन्य उत्सवो पर तुलादान करने की प्रथा प्रचलित थी। इस तिथि और वार को जन्म लेना अपने आप मे महाकवि होने का संकेत है। गोस्वामी तुलसी दास का जन्म भी इसी तिथि को हुआ था। यह तिथि निश्चित ही शिव सिंह की राज्याभिषेक की तिथि नही है अत इस तिथि पर दान देकर महाराज शिवसिंह ने अपने मित्र खेलन कवि के जन्म दिवस का उत्सव मनाया होगा। ऊपर अंकित तर्कों एव तथ्यो के आधार पर निष्कर्ष यही निकलता है कि विद्यापति का जन्म श्रावण शुक्ला सप्तमी गुरुवार सन् 1350 ई० मे हुआ होगा अत इसी तिथि को उनके जन्म की प्रामाणिक तिथि मानी जानी चाहिए। फिर भी पण्डितो तथा शोधकर्ताओ के लिये बाल की खाल निकालने की प्रवृत्ति यहाँ आकर समाप्त नही हो जाती।

पारिवारिक एव दरबारी जीवन—सुदीर्घ वश परम्परा से लक्ष्मी और सरस्वती का अपार वैभव जैसा विद्यापति को प्राप्त था वैसा स्यात किसी अन्य कवि को नही। कवि का लालन-पालन, शिक्षा दीक्षा आदि स्वभावत ही वैभव और समृद्धि की गोद मे हुआ। इनके विद्या गुरु मिथिला के प्रसिद्ध नैय्यायिक हरि मिश्र थे। इनके भतीजे पक्षधर मिश्र इनके सहपाठी थे जो बाद मे चलकर नव्यन्याय के प्रवर्तक हुए। अध्ययन शील होने के कारण ये बिल्कुल कृशकाय हो गये थे। दोनो मित्रों की भेंट भी विद्यापति की अतिथिशाला म हुई थी। इस समय का दोनो मित्रों का विनोदी वार्तालाप उल्लेखनीय है—विद्यापति भोजनोपरान्त अपने नियमा नुसार जब अतिथियो से मिलने गये तो उस कृशकाय व्यक्ति को देखकर सहसा उनके मुख स निकल पडा—'प्राघुणें गृहावत कोणे सूक्ष्मत्व न्नोपलक्षित'—घर के कोने मे सूक्ष्मवत् कीट सदृश अतिथि सूक्ष्मतावश्यात नही दीख पडे। बठे हुए उस पुरुष ने तत्काल उत्तर दिया "नहि स्थूलधिय पुस सूक्ष्मे दृष्टि प्रजायते," स्थूल बुद्धि को सूक्ष्म पदार्थ नही दीख पडता। आवाज सुनकर उन्होंने अपने साथी को पहचान लिया और आदर पूर्वक घर ले गये।

बचपन में ही विद्यापति अपने पिता के साथ राजा गणेश्वर के दरबार

मे जाया करते थे। यही उनका परिचय खेलन कवि के रूप मे शिवसिंह से हुआ जो अवस्था मे उनसे दो वर्ष छोटे थे। यह बचपन का परिचय कालान्तर मे प्रगाढ प्रेम और मित्रता मे विकसित होकर अमर बन गया। गणेश्वर के पश्चात जब कीर्ति सिंह राजा हुए तो विद्यापति का प्रवेश खेलन कवि के रूप मे दरबार मे हुआ। इसी समय इन्होने 'कीर्तिलता' की रचना की जिसकी भाषा सस्कृत प्रकृति मिश्र मैथिली है जिसे कवि ने अवहट्ट (अपभ्रश) का नाम देकर अपनी लोक रुचि की घोषणा की थी—'देसिल बयना सब जन मिठ्ठा, ते तैसन जम्पओ अवहट्ठा।' देशी भाषा सबको प्रिय लगती है, यही जानकर मैंने यह रचना अवहट्ट भाषा मे की ही। इस ग्रथ के अन्तिम श्लोक मे कवि ने खेलन कवि उपनाम का भी प्रयोग किया है।[1]

विद्यापति का पारिवारिक जीवन अत्यन्त सुखमय एव सतोषजनक था। इन्होंने दो विवाह किया था। इनकी प्रथम पत्नी हरिवंश शुक्ल की कन्या थी जिससे दो पुत्र हरपति और नरपति तथा दो कन्यायें थी। इनकी दूसरी पत्नी रघु ठाकुर की पुत्री थी जिससे एक पुत्र वाचस्पति ठाकुर और पुत्री दुल्लहि उत्पन्न हुए। दुल्लहि का विवाह गांगुली परिवार में राम नामक व्यक्ति से हुआ था। इनकी पुत्रवधू चन्द्रकला महान विदुषी थी और काव्य कला मे निपुण थी जो हरपति ठाकुर की पत्नी थी। लोचन रचित राजतरंगिणी मे चन्द्रकला का एक पद कवि की टिप्पणी क साथ मिलता है—'इति श्री विद्यापति पुत्र वध्वा'। इनके पुत्र हरपति ठाकुर दैवज्ञ बान्धव ज्योतिष ग्रथ के रचयिता और परम विद्वान थे। ये पदमसिंह के सम्मानित सभासद तथा मुद्रा हस्तक थे।

प्रोफेसर रमानाथ झा ने विद्यापति के जीवन काल को दो भागो मे विभक्त किया है। इनके जीवन के प्रथम भाग का पटाक्षेप शिवसिंह के पराजय और उनके अदृश्य होने के साथ होता है तथा द्वितीय भाग शिवसिंह के परिवार सहित राज बनौली में पुरादित्य के निवास से प्रारम्भ होकर

1 माधुर्य प्रसव स्थली गुरुयशोविस्तार शिक्षा सखी
यावद्विश्व मिदञ्च खेलन कवेर्विद्यापतेर्भारती।

कवि के मृत्यु काल तक चलता है।

कामेश्वर ठाकुर की मृत्यु के उपरान्त ओइनवारों की तीन शाखायें हो चुकी थीं। विद्यापति के जन्म 1350 ई० के समय भोगीश्वर ओइनवार राज्य के एक खण्ड के अधिपति थे। भोगीश्वर के पुत्र 'गनश्रेशन' जब असलान द्वारा छल से मारे गये उस समय विद्यापति किशोर रहे होंगे। 'गनश्रेशन' के पुत्र कीर्तिसिंह अपने पिता के वध का प्रतिशोध लेने के लिये पश्चिम की ओर रवाना हुए। इस योजना में कीर्ति और शिवसिंह के साथ विद्यापति भी थे जिसकी पुष्टि कीर्तिलता में वर्णित जौनपुर की शोभा से होती है। कीर्ति सिंह ने जौनपुर की सहायता से 1402 ई० में अपना राज्य प्राप्त कर पुन सिंहासनारूढ हुए। इसी समय कीर्तिसिंह की कीर्ति को अमर करने के लिये विद्यापति ने 'कीर्ति पताका' की रचना की होगी।

शिवसिंह के सिंहासनारोहण के साथ विद्यापति की काव्य कला भी यौवनावस्था को प्राप्त हुई और वे शरद पूनो की ज्योत्सना की भाँति अपने काव्य की चन्द्रिका शिवसिंह के शासन काल में विकीर्ण करने लगे। यही समय रहा होगा जबकि कवि ने उद्दाम यौवन एवं सरस प्रेम के अधिकाधिक गीत लिखे होंगे। महाराज शिवसिंह की प्रेरणा एवं लखिमा देवी के सौन्दर्य ने इनकी कविता में चार चाँद लगाये होंगे। शिवसिंह का शासन-काल विद्यापति के चरमोत्कर्ष एवं वैभव का काल था। उनकी काव्य की कारयित्री प्रतिभा प्रेम, यौवन और सौन्दर्य के मधुर गीतों से सम्पूर्ण मिथिला को आप्लावित कर रही थी। इस काल में काव्य कला, गीति-कला और नृत्य कला रस मगन राजा और रानी की छत्र छाया में विकास चरमोत्कर्ष पर थी। निश्चित ही यह तिरहुत का स्वर्णयुग था जिसके मुख्य उद्गाता थे महाकवि विद्यापति।

काल चक्र का प्रवाह एक सा नहीं रहता। महाराज शिवसिंह ने गौणेश्वर को पराजित किया। कवि ने उनकी यशोगाथा कीर्तिपताका और पुरुष परीक्षा में लिखी। शिवसिंह पर पुन पश्चिम से आक्रमण हुआ। इस भयानक आक्रमण का परिणाम संभवत शिवसिंह जानते थे अत उन्होंने अपने परिवार को अपने मित्र कवि विद्यापति के साथ राज बनौली भेज दिया। आशंका सच निकली। शिवसिंह युद्ध से वापस नहीं

आ सके। आक्रामक सेना ने गजरथपुर को बुरी तरह लूटा और महाराज शिवसिंह के राज्य का स्वर्ण काल इतिहास की वस्तु बन गयी। इसी के साथ विद्यापति के जीवन के प्रथम खण्ड का अवसान हो गया।

कवि के जीवन के द्वितीय खण्ड का प्रारम्भ उनके राज बनौली के जीवन से होता है जहाँ वे पुरादित्य के सरक्षण म महाराज शिवसिंह के परिवार के साथ बारह वप तक रहे। स्वतन्त्र एव उ मुक्त विहार [illegible] वाले कवि के जीवन मे उदासी क बादल छा गये। लखिमादवी जो [illegible] काव्य की पोषिका और प्रेरणा थी उनके जीवन उपवन की [illegible] और सुमन सूख गये। बारह वप तक प्रतीक्षा करने के बाद [illegible] मूर्ति के साथ लखिमा देवी सती हो गईं। कल्पना की [illegible] दारुण स्थिति मे कवि की मनोदशा की। यह पद [illegible] द्योतक है—

सखि हे दिन जनु काहु अवगाहे।
सुरतरु सुखे जनम जमाओल, घुघुरु [illegible]।
दखिन पवन सउरभ उपभोगल पिटल [illegible]।
कोकिल कलरव उपवन पूरल, [illegible]॥
पातहि सओ फूल भमर अगोरल [illegible]।
से फुल काट कीट उपभोगल [illegible]॥
भनई विद्यापति कलिजुग [illegible]।
अपन करम अपने पत्र [illegible]॥

इस प्रकार कवि अपने मित्र [illegible] अन्य रानियो को परितोष करा[illegible]। [illegible] बारह वष का प्रवास कवि के [illegible] था क्योंकि इस प्रवास में [illegible] सका न अपने मित्र [illegible] कवि ने 'लिखनावली' की [illegible]।

इस बारह वर्ष के [illegible] शेष दिन भजन-[illegible]। [illegible] दरबार म [illegible]

थ। नागा सूत्र पदमसिंह और विश्वास देवी के हाथ में था। नरसिंह तथा भरवसिंह य राज्य कारा तब यह वयोवृद्ध कवि भजन पूजन मे अपना दिन व्यतीत करता हुआ भक्तिमय गीतां क साथ यदा कदा रस के छाट भी छिड़कता रहा। अन्त म अपना महा प्रयाण जानकर महाकवि पालकी पर चढ़ घर से विदा हुआ और माँ गगा की पवित्र और शीतल गाद मे सदा के लिये सो गया।

विद्यापति जिन जिन राजाओ, राजपुरुषो एव अन्य व्यक्तियो के आश्रय और सम्पर्क मे रहे उन सबके नामो का उल्लेख करके अपनी रचना क साथ उन्हें भी अमर बना दिया। शिवसिंह और लखिमा देवी के लिये तो पदावली की रचना ही हुई, साथ ही कवि ने अन्य रानियो की भी उपक्षा नहीं की। पदावली उनकी कृतज्ञता ज्ञापन की साक्षी है। कुछ उदाहरण लिये जा सकते हैं—देवसिंह हासिनिदेवी शिवसिंह, लखिमा देई, मधुमति देई सोरभ देवि मोदवती मेधादेवि, रूपनारायण, सुखदई, महेसर, रेणुका देवी आदि तथा बगाल का शासक नसरतशाह, अर्जुनसिंह देवसिंह के अनुज विशेष सभासद दामोदर, दशशतावधान, समकालीन कवि जयराम, ग्यासुदीन सुलतान, सुप्रसिद्ध सामन्त श्रीधर का पुत्र रतिधर, जौनपुर दरबार का मुसलमान कवि बहारदीन एव पदमसिंह विश्वासदेवी, कस नारायन, राघवसिंह, रुद्रसिंह, कुमारसिंह तथा मन्त्री महेशर आदि।

मृत्यु तिथि—जन्मतिथि की भाँति विद्यापति की मृत्यु तिथि भी विद्वानो के बीच विवाद का विषय है। प० शिवनन्दन ठाकुर इनकी मृत्यु तिथि कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी ल० स० 329 मानते हैं। 293 ल० स० के चत्रमास की कृष्ण छठी ज्येष्ठ। नक्षत्र वहस्पतिवार को सध्या काल मे देवसिंह परलोकवासी हुए और शिवसिंह का राज्याभिषेक हुआ। तीन वष आठ महीने तक शिवसिंह ने शासन किया। तत्पश्चात वे युद्ध मे मारे गय। शिवसिंह की मृत्यु के 32 वर्ष बाद विद्यापति न अपने परम मित्र शिवसिंह को स्वप्न मे देखा—

सपन देखल हम शिवसिंह भूप,
बतिस बरस पर सामर (भामर) रूप।

ब्रह्मवर्त पुरान के अनुसार इस प्रकार के स्वप्न का फल आठ महीने

के पश्चात प्राप्त होता है। अत शिवसिंह के मृत्यु के 32 वर्ष आठ महीने पश्चात् विद्यापति की मृत्यु हुई होगी। गणना के अनुसार उक्त तिथि ल०स० 329 कार्तिक शुक्ल त्रयोदसी हुई। विद्यापति ने स्वय कहा भी है—'कातिक धवल त्रयोदशि जान, विद्यापतिक आयु अवसान।' इस प्रकार विद्यापति की मृत्यु तिथि 1448 ई० के अक्टूबर मास मे शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी हुई। इसी पुण्य तिथि को परम्परा के अनुसार दरभगा जिले मे मउबाजित पुर के निकट जहाँ कवि को गगा लाभ हुआ, मिथिला मे हर वर्ष मेला लगता है। उस स्थान पर ऐतिहासिक शिवालय और पृथ्वी से स्वत प्रकट हुआ शिवलिंग आज भी विद्यमान है। इसी स्थान के निकट विद्यापति नगर स्टेशन भी बना हुआ है।

कवि को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो गया था अत अपनी जीवन नाटिका की अवनिका का अंतिम पतन जानकर उन्होंने अपनी पुत्रवधू या कन्या को दुल्लहि शब्द से सम्बोधित करते हुए उनकी माँ का स्नान कर निकट आने के लिये कहा—'दुल्लहि तोहर कतए छथि भाय कहुन ओ आबय ए खन नहाय। थोडी देर बाद अपने परिजनों को अन्तिम उपदेश देकर—"प्रजाहित करना, अतिथि सत्कार मे मत चूकना और पर स्त्री को माता समझना', गगा के तीर प्रस्थान करने के पूर्व कुलदेवी विश्वेश्वरी से अनुमति माँगी।

पालकी पर सवार होकर कवि अमरौधा घाट के लिये प्रस्थित हुआ। जब गगा जी दो कोस की दूरी पर रह गई तो हठी भक्त की भाँति उसने कहा—'मैं इतनी दूर से मैया के निकट आया क्या मइया मेरे लिये यहाँ तक नही आ सकती', पालकी वही रखवा दी। रात बीती प्रात होते ही गगा की धारा उस स्थान पर पहुँच गई जहाँ कवि विश्राम कर रहा था। सचमुच गगा मइया ने कवि की प्रार्थना को स्वीकार कर मृत्यु के समय परम भक्त विद्यापति को अपनी शीतल गोद मे चिर विश्राम हेतु सस्नेह से लिया। लगभग एक शताब्दि तक जीवन के बसन्त और पतझड का सुख-दुख भोगने के पश्चात यशस्वी कवि की जीवनलीला समाप्त हो गई किन्तु उसकी सरस वाणी जन मानस के कानो मे आज भी गूँज रही है और अनन्त काल तक गूँजती रहेगी और उसकी यशचन्द्रिका तथा काव्य कौमुदी सृष्टि

के अन्त तक अपनी ज्योत्सना से काव्य-जगत को अनुप्राणित करती रहेगी।

किंवदन्तियाँ—महापुरुषो के साथ किंवदन्तियो का जुड जाना भारत की लोक भावना और श्रद्धा की मौलिक विशेषता है। महाकवि एव जननायक विद्यापति के सम्बन्ध मे भी अनेक किंवदन्तिया प्रचलित हैं जिनमे कुछ प्रमुख का उल्लेख किया जा सकता है—

उगना—कहा जाता है कि उगना या उदना नाम का विद्यापति के पास एक भृत्य था। विद्यापति की भक्ति भावना से प्रसन्न होकर स्वय भगवान शिव ही उगना के रूप मे कवि के साथ रहते थे। यह रहस्य तब खुला जब एक यात्रा मे उगना ने प्यास लगने पर विद्यापति को गगाजल लाकर दिया जब कि गगा जी उस स्थान से बहुत दूर थी। उगना के रूप मे शिव ने उनसे कहा कि यदि वह इस रहस्य को प्रकट कर देंगे तो उगना उन्हें छोड देगा। एक बार विद्यापति की पत्नी ने क्रुद्ध होकर जलते हुए चैले से उगना पर प्रहार किया। विद्यापति के मुख से अचानक निकल पडा 'साक्षात शिव पर प्रहार' और उगना उसी समय से गायब हो गया। विद्यापति को घोर पश्चाताप हुआ।

गगा सम्बन्धी घटना—मृत्यु केलि पालकी पर सवार होकर विद्यापति गगा तट के लिये चले और जब वे एक स्थान पर विश्राम कर रहे थे—गगा की धारा स्वय वहाँ आ गई—इसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

रेलवे लाइन की कथा—बी० एन० डब्ल्यू रेलवे लाइन सीधे विद्यापति की चिता पर से बन रही थी। माग साफ करने के लिये जब वक्षो की शाखायें काटी जाती लगीं तो उनसे रक्त निकलने लगा और रात मे सिसकने की आवाज भी सुनाई देने लगी। काय कराने वाले इन्जीनियर बीमार हो गये। अनेक बार प्रयास करने के बाद अन्ततोगत्वा लाइन का माग बदलना पडा।

दिल्ली-सुलतान की कथा—शिवसिह को जब बन्दी बनाकर दिल्ली ले जाया गया था तो विद्यापति उन्हें छुडाने के लिये दिल्ली पहुँचे। उन्होंने अपना परिचय दिया और काव्य चमत्कार की बात बताई कि बिना देखी हुई वस्तु का वणन वे सफलतापूवक कर सकते हैं। सुलतान ने परीक्षा

f

स्वरूप सद्य स्नाता का वणन करने को कहा। विद्यापति की वाणी से सरस्वती की धारा प्रवाहित होने लगी—'कामिनि करए सनाने, हेरतहि हृदय हने पच बाने।' विद्यापति को काठ के बक्स म बन्द कर कुएँ मे लटका दिया गया। उपर एक स्त्री झुक कर आग फूंक रही थी—विद्यापति की वाणी पुन फूट पडी—'सुन्दरि निहुर फूकु आगि तोहर कमल भमर मोर देखल मदन उठल आगि।' विद्यापति परीक्षा में सफल हुए और शिवसिंह मुक्त कर दिये गये।

ये किंवदन्तियाँ जनता की श्रद्धा की प्रतीक होती हैं। इस प्रगाढ श्रद्धा के आवरण म सत्य लिपटा होता है। श्री शिव प्रसाद सिंह के शब्दो म—'यह अलकरण जितना ही अधिक घना होता है। ऐतिहासिक सामग्री का रूप उतना ही धूमिल होता है। इन निजधरी कथाओ के पेट से सत्यांश को निकालना कठिन होता है, असम्भव नही।'

विद्यापति की कृतियो का समीक्षात्मक परिचय

कृतिया कवि की आत्मजायें होती हैं। उनका निर्माण कवि के बहु-मूल्य प्राण रक्त से होता है, उनम उसकी अमरता निवास करती है। कवि का पार्थिव शरीर समय आन पर नष्ट हो जाता है किन्तु वह अपनी कृतियो मे अमर होता है। इस सदभ मे अग्रेजी साहित्यकार लैम्ब का एक कथन स्मरण हो आता है जो उसने पुस्तकालय के सम्बन्ध मे कहा था—'पुस्तकालय एक विशाल शयन कक्ष है उसमे महान आत्मायें सोती हैं, जिज्ञासु जब चाहे उन्हे जगाकर उनसे बात कर सकता है।'

विद्यापति एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। तुलसीदास की भाँति अपने समय की प्रचलित समस्त भाषाओ और शैलियो पर उनका पूर्ण अधिकार था। उनकी व्यापक रचनाओं से यह बात स्वय ही सिद्ध हो जाती है। विद्यापति ने सस्कृत, अवहट्ट और मैथिली तीनो ही भाषाओ में अपनी सजनशील प्रतिभा का चमत्कार प्रस्तुत किया किन्तु हिन्दी साहित्य मे उनका चतुर्दिक महत्व मैथिली (अब हिन्दी की मान्य बोली) रचना पदावली के कारण ही है। यहाँ उनकी रचनाओ का सक्षिप्त परिचय देना ही अभीष्ट है।

सस्कृत की रचनायें—सस्कृत भाषा मे विद्यापति की चौदह रचनायें उपलब्ध हैं।

1 भू परिक्रमा—महाराज देवसिंह की आज्ञा मे लिखित इस रचना मे मिथिला स नैमिषारण्य तक के प्रधान तीर्थ स्थानो का वणन है। इसमें

शाप के दिनों में बलराम जी को मिथिला में सुनाई गई कथा का भी वर्णन है। इस पुस्तक की हस्तलिखित प्रति एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल के पुस्तकालय में सुरक्षित है।

2 पुरुष परीक्षा—शिव सिंह की आज्ञा से लिखी हुई यह एक नीति का ग्रंथ है। इस रचना का उद्देश्य नवोदित बालकों को नीति का ज्ञान कराना एवं काम कला में निपुण स्त्रियों को आनंदित करना है। पुस्तक की भूमिका में चन्द्रतपा नगर के पारावार नामक राजा की कन्या पद्मावती के लिए सुबुद्धि ऋषि का योग्य वर ढूंढने का संकेत है। इसी संदर्भ में योग्य पुरुष के लक्षणों की भी चर्चा की गई है। जो पुरुष वीर हो, सुधी हो, विद्वान हो तथा पुरुषार्थी हो वही वास्तव में पुरुष है। पुरुषों के इन चार भेदों का चार परिच्छेदों में अलग अलग वर्णन है।

प्रथम परिच्छेद में चार प्रकार के वीरों—दानवीर जैसे हरिश्चन्द्र तथा विक्रमादित्य, दयावीर—शिवि तथा हम्मीर देव, युद्धवीर—अर्जुन तथा मल्लदेव, सत्यवीर—युधिष्ठिर आदि की कथायें हैं। साथ ही इनकी विपरीत स्थिति वाले पुरुषों—चोर, भीरू, कृपण तथा आलसी आदि की भी कथायें हैं। द्वितीय परिच्छेद में सुधी पुरुषों के उदाहरण तथा प्रत्युदाहरण में सप्रतिभ, मेधावी, सुबुद्धि वंचक, पिशुन जन्मबर्बर तथा ससंग बर्बर की कथायें हैं। तृतीय परिच्छेद में विद्या निपुण पुरुषों के उदाहरण तथा शस्त्र एवं शास्त्रविद्य वेदविद्य, लोकविद्य, उभयविद्य, उपविद्य, गीतविद्य, नृत्यविद्य, इन्द्रजालविद्य, पूजितविद्य अवसन्नविद्य, अनिद्य तथा हास विद्य के वर्णन हैं। चतुर्थ परिच्छेद में पुरुषार्थ वालों की कथायें हैं जिनमें सात्विक, तामस, अनुरुचि महेंद्र, मूढ़, बह्वाश, सावधान, रामानुकूल, दक्षिण नायक, विदग्ध, धूर्त, धस्कर, निर्विधि, निस्पृह तथा लब्ध सिद्ध के उदाहरण हैं।

इस ग्रन्थ की भाषा अत्यन्त सरल और शैली रोचक है। इसकी उपयोगिता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इसका अनुवाद चंदा झा द्वारा मैथिली में, हर प्रसाद राय द्वारा बंगला में और राजा काली कृष्ण बहादुर द्वारा अंग्रेजी में तथा विद्यापति प्रेस लहेरिया सराय द्वारा हिन्दी में किया गया है।

3 लिखनावली—इस ग्रन्थ की रचना कवि ने अपने प्रवास काल में राज बनौली के महाराज पुरादित्य की आज्ञा से की थी। इसमे उच्च, अधम समकक्ष तथा अन्य लोगो के लिए क्रमश 18, 28, 7 तथा 36 पत्र हैं जो समाज मे आवश्यक सभी प्रकार के पत्र व्यवहार के ज्ञान के लिए परम उपयोगी हैं। मिथिला के पत्र व्यवहार मे प्रारम्भ मे स्वस्ति लिखा जाता है और इसके पूर्व 'आंजी' का शुभ चिह्न (F) श्रीगणेशाय नम की तरह प्रयोग किया जाता है और अन्त मे 'कि बहुनेति' अधिक क्या लिखू की प्रथा है।

4 शव सर्वस्व—इस ग्रन्थ की रचना पद्म सिंह की पत्नी विश्वास देवी की आज्ञा से हुई थी। इसमे शिवोपासना पद्धति का विवेचन है। इस ग्रथ की हस्तलिखित प्रतिया रायल एशियाटिक सोसाइटी पुस्तकालय तथा दरभगा राज पुस्तकालय मे सुरक्षित हैं।

5 शव सर्वस्वसार प्रमाणभूत पुराण-सग्रह—इस ग्रथ मे शैव सर्वस्व सार के प्रमाण सग्रहीत हैं। इस ग्रथ की हस्तलिखित प्रतिलिपि भी दरभगा राज पुस्तकालय मे सुरक्षित है।

6 गगा वाक्यावली—इस ग्रथ मे गगा पूजन विधि का विवेचन है। इस पुस्तक की रचना भी कवि ने विश्वास देवी की आज्ञा से की थी।

7 विभाग सार—इस ग्रथ की रचना महाराज नरसिंह देव के शासन काल मे हुई थी। इसमे धन एव अस्थायी सम्पति सम्बन्धी विभाजन का विधान है। इसके अतिरिक्त इसमे द्वादश पुत्र लक्षण विवेचन पुत्र विहीन धनाधिकार विवेचन तथा स्त्रीधन अधिकार आदि का निरूपण है। इस ग्रथ की हस्तलिखित प्रति जगदीश झा नैयायिक नवानी तामोडिया दरभगा के घर मे सुरक्षित है।

8 दानवाक्यावली—इस ग्रथ की रचना महाराज नरसिंह देव के शासन काल मे उनकी पत्नी धीरमति देवी की आज्ञा से हुई थी। इसमे सभी प्रकार के दान कृत्यो उनके फलो, कुफलो एव पाप पुण्य का सावि धिक विवेचन है। इसमे आठ प्रकार के रोगो—उन्माद त्वगदोष, राज्य क्षमा श्वास, मधुमेह, भगदर, उदर तथा मसूरी का उल्लेख है। इसमे यह भी बताया गया है कि जिस देश मे वर्ण व्यवस्था न हो वह म्लेच्छ देश

है। दान, दान की वस्तु एव दान फल के ज्ञान के अतिरिक्त इस ग्रंथ का महत्व इस दृष्टि से भी है कि इसमे सस्कृत के कुछ दुर्लभ शब्दों का प्रयोग भी मिलता है।

9 दुर्गाभक्ति तरगिणी— महाराज भैरव सिंह के आदेश से लिखित इस ग्रन्थ में दुर्गा पूजन के समस्त विधानों का उल्लेख किया गया है।

10 गया पत्तलक—इस ग्रथ मे गया श्राद्ध कर्म के विधान का विवेचन है। इस ग्रन्थ मे राजा के आदेश का कोई उल्लेख नही है। किन्तु इस ग्रथ का प्रसार बहुत है। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ डॉ० उमेश मिश्र, प० शिवेश्वर झा लाल गज झझारपुर तथा अन्य मैथिल ब्राह्मणो के पास उपलब्ध हैं।

11 वर्ष कृत्य—इस ग्रन्थ मे वर्ष भर के शुभ कर्मों का विधान है तथा नियमित दैनिक पूजा, व्रत, दान आदि व नियमों का वर्णन है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने गया पत्तलक और वर्ष कृत्य की रचना अपनी सनातनी आस्था की प्रेरणा से लोक कल्याण के लिए थी क्योंकि इनमे लेखन के लिए राजाज्ञा का उल्लेख नही है।

इसके अतिरिक्त 'द्वैतनिर्णय', 'गगा भक्ति अभ्युदय' तथा 'तन्त्राणव' आदि ग्रन्थो को भी विद्यापति के नाम से जोडा गया है। किन्तु न तो ये उपलब्ध हैं न ही इनका कोई प्रामाणिक आधार है। किन्तु इन चौदह सस्कृत ग्रन्थो को देखकर कहा जा सकता है कि ये सारे ग्रन्थ जीवन की आस्थापरक व्यावहारिकता से सम्बद्ध हैं। इसीलिये वे मिथिला के जन-जीवन का अग बन चुकी हैं।

अवहट्ठ मे लिखित ग्रथ—सस्कृत, प्राकृत तथा मैथिली मिश्रित भाषा को कवि ने अवहट्ठ की सज्ञा प्रदान की है। इसे प्रचलित लोक भाषा भी कह सकते हैं। लोक रुचि का कवि होने के नाते कवि को यह भाषा सस्कृत से अधिक प्रिय थी। उसने स्पष्ट लिखा है—'देसिल बअना सब जन मिट्ठा' इस भाषा मे कवि ने 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' की रचना की थी।

1 कीर्तिलता—मैथिली अपभ्रश अर्थात अवहट्ठ भाषा मे रचित यह ग्रन्थ वीर, काव्य प्रेमी, उदार, दानी एव कवि महाराज कीर्ति सिंह

की अमर गाथा है।[1] इस ग्रन्थ के प्रारम्भ मे कामेश्वर ठाकुर से वीर सिंह कीर्तिसिंह तक राजपुरुषो के विरद कवि ने कहे हैं। इस ग्रन्थ का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कवि ने कहा है— त्रिभुवन रूपी खेत मे किस प्रकार कीर्ति की लता फैल सकती है, यदि काव्य के स्तम्भ पर उसे मच न दिया जाय।"[2]

डॉ० अरविन्द नारायण सिन्हा के मतानुसार इस ग्रन्थ की रचना शिव सिंह के शासन काल मे हुई। रचना चाहे जिसके शासन काल मे हुई हो पर इस ग्रन्थ का महत्व इतना अधिक है कि इसका अनुवाद हिन्दी, बगला और मैथिली तीनो भाषाओ मे हुआ है। इस ग्रन्थ का सक्षिप्त कथानक है—अलसान ने राजा गणेश की हत्या कर डाली। राजा गणेश के दोनो पुत्र वीर सिंह और कीर्ति सिंह जिनके साथ विद्यापति, कायस्थ श्री केशव तथा सोमेश्वर भी थे, अलसान से बदला लेने के लिए माँ से आज्ञा लेकर जौनपुर के लिए प्रस्थान किया तथा शासन और माता का उत्तरदायित्व उन्होने भाई राज सिंह मन्त्री आनन्द खान एव गोविन्द दत्त, मित्र हमराज, योद्धा रुद्रसिंह, शिवभक्त हरदत्त, धर्माधिकारी हरिहर, नीति निपुण अमरेश झा, तथा न्याय सिंह राउत पर छोड दिया। मार्ग मे पैदल चलते हुए अनेक कष्टो को झेल कर वे जौनपुर पहुँचे। इस ग्रन्थ मे कवि ने इस यात्रा से लेकर कीर्ति सिंह के राज्याभिषेक तक का सुन्दर एव रोचक वर्णन किया है। मार्ग की कठिनाइयो एव पथ मे मिलने वाले लोगो का भाव कवि द्वारा इस ग्रथ मे पृ० 18 पर अकित है। यथा—

> पजि[3] चलु दुअओ कुमट हरि हरि सबे सुमट।
> बहुल छाडल पाहि पाँतरे[4] बसल पाओल आँतरे आतर[5]

---

1 श्रोतुर्जातुव दानस्य कीर्तिसिंह महीपते। करोतु कवितु काव्य भव्य विद्यापति कवि। —कीर्तिलता—डॉ० उमेश मिश्र, पृ० 2

2 तिहुअन खेतिहि काञि कट्ठु कित्ति वल्ली पसरेई।
अक्खर खम्मा रम्भओ जौं तस मचो न देइ।

3 पदल, 4 बीहड़ प्रांत, 5 बीच-बीच मे,

जहाँ जाइय जेहे गाओ, भोगाई[1] राजाक बहिडनाओ।
काहु कापल[2] काहु धोल[3] काहु सम्बल[4] देल योल।
काहु पाति भेल पैठि[5], काहु सेवक लागि भटि[6]।
काहु देल ऋण उधार, काहु करि अउ नदिक पार।
काहु उबहल[7] भार बोझ, काहु बाट कहल सोझ[8]।
काहु आतिथ्य विनय करू, कतहु दिने बाट सन्तरू[9]।

इस ग्रन्थ मे जौनपुर का वणन भी उल्लेख्य है —

'हाट करेओ प्रथम प्रवेश। अष्टधातु घटना टँकारे, कँसरी, पँसरा, कास्य झँगार, प्रचुर पौर जनपद, सम्हार सम्हीन, धनहटा, सोनहटा, पनहस्य, पक्कवान हटी, मछेहटा करेओ सुखरव कथा कहन्ते होइअ झूठ जनि गम्भीर गुर्जुरावत कल्लोल कोलाहल कान भरन्ते, मर्यादा छाडि महाणव उठ।" अर्थात् हाट मे प्रथम प्रवेश करते ही अष्टधातुओ के बतनो के निर्माण का स्वर कसेरों की दुकानो की खनखनाहट, बाजार की भीड एव उनके द्वारा उत्पन्न सामूहिक रव धन, सोना, पान, पकवान, मछली आदि के बाजार की बातचीत, लोगों को सहसा विश्वास नही होगा, ऐसा प्रतीत होता था मानो कोलाहल करता हुआ समुद्र अपनी मर्यादा त्याग कर चला आया तो।

हाट-बाजार के वणन मे कवि ने वारवनिताओ की शृगारिक चेष्टाओ तथा हाव भाव का विशेष रूप से वणन किया है। इसके बाद पृ० 20 21 पर कवि ने तुर्कों के लक्षणो का भी उल्लेख किया है। जैसे—

कही कोटि गन्दा, कहीं ब दीबन्दा
कही दूर निक्कारिये[10] हिन्दु गन्दा।
कही तथ्य कुजा तब्बेला पसारा,
कही तीर तोम्मार दोक्कारा दारा।

---

1 राजा भोगीश्वर, 2 वस्त्र, 3 मट्ठा,
4 सामग्री, 5 मिलना, 6 समूह मे,
7 ढोना, 8 सीधा, 9 रास्ता पार किया,
10 निकाल बाहर करना,

सराके सराहे भरे व वि याजू[1]
तोलन्ति हेरा ससूल्ला पे आजू।[2]
परीदे परीदे बहुत्तो गुलामो,
तुरुक्के तुरुके अनेरो सलामा।
बमाहन्ति पीमा, पइजल्ल मोजा,
भये मीर वल्लीअ सइल्लार पोजा।
अवे वे भण ना सरावा पिवन्ता,
कलीमा[3] कहन्ता कला मे जिअन्ता।
कसीदा कहन्ता, मसीदा महन्ता,
कितेया पढन्ता तुरुक्का अनन्ता।।

पुन कवि वर्णन करता है—

हिन्दू तुरुके मिलल वास, एकक धम्मे अओकर उपहास,
कतहु बांग कतहुँ वेद, कतहु विस्मिल कतहु छेद।
कतहुँ ओझा कतहु पोझा, कतहु नमद कतहु रोजा,
कतहुँ तम्बारू कतहुँ कूजा, कतहुँ निमाज कतहुँ पूजा।

जौनपुर पहुँचने के बाद ये लोग एक ब्राह्मण परिवार मे ठहरे और प्रात एक घोडा और एक वस्त्र लेकर अत्यन्त विनम्र भाव से दरबार म अलसान के अत्याचारो का विवरण निवेदन किया। सुलतान इब्राहिम शाह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने शाही सेना को पूरी तैयारी के साथ तिरहुत जाने का आदेश दिया। सेना चल पडी। सेना के चलने के प्रभाव के वर्णन से भूषण की याद आती है—

गिरि टरइ महि पडई नाग मन कम्पिया,
तरणि रथ गगन पथ धूलि भरे झम्पिया।
तबल शत बाज कत भेरि भरे फुक्किआ,
प्रलय घण सद हुअ सार र व लुक्किआ।

इस प्रकार घमासान युद्ध करते हुए और विजय प्राप्त करते हुए

---

1 दोनो ओर 2 लहसुन प्याज, 3 कलाम

सुलतान चला और साथ में दोनों भाई भी। मुसलमानों के साथ बड़ी कठिनाई से अपने कुल धर्म का निर्वाह करते हुए वे सभी तिरहुत पहुंचे असलान भाग निकला। कीर्तिसिंह की विजय हुई। शख ध्वनि और वेदगान के साथ कीर्ति सिंह का राज्याभिषेक हुआ।

कीर्तिलता की कथा नगर, हिन्दू मुस्लिम तथा युद्ध आदि के रोचक वर्णनों से भरी हुई है। इस ग्रथ की भाषा पर सस्कृत की छाप अवश्य है किन्तु व्याकरण पर पालि और प्राकृत का प्रभाव अधिक है। कवि ने कीर्तिसिंह को इस अमर रचना से अमरता प्रदान की है।

2 कीर्तिपताका—अवहट्ठ भाषा मे लिखि कवि की यह दूसरी रचना है। दोहा छन्द मे लिखे हुए इस ग्रथ के बीच बीच मे सस्कृत के श्लोकों एव गद्य का भी यत्र-तत्र प्रयोग है। इसमे ग्रथ शिव सिंह की कीर्ति पताका का वर्णन है। ग्रन्थ के प्रारम्भ मे अर्धनारीश्वर तथा गणेश की वदना है। मिथिलाक्षर मे लिखित इसकी एक खण्डित प्रति नेपाल के राज पुस्तकालय में सुरक्षित है। इसके लगभग बाइस पृष्ठ नष्ट हो चुके हैं। इस ग्रन्थ की एक प्रतिलिपि डॉ० उमेश मिश्र के पास भी उपलब्ध है। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ मे कवि ने लिखा है—

पढिअ मराडलि बद्धगुणे भीषम वीर मुहेन,
वाणी मुहुर महग्घ रस पिअउ सुअस बलेन।

उसके पश्चात् शिव सिंह के आदर्श आचरण का उल्लेख इस प्रकार है—धम्म देखी व्यवहार लोक नहि, नहई पर भेद। सबका घर उब्बाह पलटि जानि जम्मिअ। बाहर दाने दलई। दरिद्द खग्गो परि पडिडअ खण्डिअ। जस पउरूए पत्तापे सहि मडल मरिडअ वीर जब राज विराज भउ। तिरहुत मज्जादा बहि रहिअ। करि तुरुअपत्ति पअभार भरें कुरुसु को वक समस महिआ।

इसके पश्चात् इस ग्रन्थ मे शृगार वर्णन का विस्तार है इसी प्रसग मे कवि ने यह भी कहा है कि 'त्रेता के विरही राम ने सीता विरह के दुख को दूर करने के लिए ही कृष्ण का अवतार लिया और गोपियों के साथ रास रचाया इस प्रसग के पश्चात सुलतान के साथ शिव सिंह के युद्ध कौशल का विस्तृत चित्र है। शिव सिंह की विजय एव सुलतान की

पराजय का वणन विविध उपमाओ के सहारे कवि ने बडे उत्साह के साथ किया है। इस प्रसग के साथ ग्र थ को समाप्त करते हुए कवि ने लिखा है—

> एव श्री शिव सिह देव नृपते सग्राम जात यशो,
> गायति प्रति पत्तनि (न) प्रति दिश प्रत्यङ्गण सुभ्रव ॥

3 गोरक्ष विजय—यह चार अको मे समाप्त एक नाटक है। इसकी भाषा सस्कृत मिश्रित मैथिली है। इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति नेपाल राज पुस्तकालय मे उपलब्ध है। इसी प्रतिलिपि के आधार पर इसका सम्पादन सन् 1961 ई० मे डॉ० उमेश मिश्र तथा जयकान्त मिश्र ने किया था। इसका प्रकाशन किया है मैथिली साहित्य समिति, इलाहाबाद ने। यह पुस्तक बारह पत्रो (फोलियोज) म समाप्त हुई है।

मैथिली रचना 'पदावली'—मिथिला की हरी भरी अमराइया म महाकवि विद्यापति की प्रतिभा की कोख से एक कन्या रत्न का जन्म हुआ। काव्य-मनीषियो ने इसका नाम रखा, 'पदावली'। उसे माँ मिथिला और मौसी बगाल का असीम स्नेह मिला तथा पिता का वैभवशाली सरक्षण। वैभव और विलास की क्रोण मे पली बालिका ने यौवन की देहरी पर पाव रखा। ऋतुपति ने उसका स्वागत किया। उसकी 'परिरम्भ कुम्भ की मदिरा' का पान कर तथा नि श्वास मलय के झोको मे झूम वह उन्मत्त हो उठा। कन्या के रूप गुण की सुकीर्ति सुरभि सम्पूण देश मे फल गई। जिज्ञासु रसलोभी भ्रमर स्वत आमन्त्रित हो उसके परिवृत्त गुणगान करने लगे। सौन्दय और गुण की पराकाष्ठा ने उन्हे उसे अपना बनाने के लिए विवश कर दिया। बग भ्रमर समूह ने उस पर अपना अधिकार घोषित किया, असम और उडीसा उपवनवासियो ने भी अपना अधिकार जताने की चेष्टा की, मैथिली रस रसिक तो उसे अपना समझते ही थे। हिन्दी साहित्य की मनीषा मण्डली ने भी इस दिशा मे रागात्मक प्रयास किया और सौभाग्य म सफलता उनके हाथ लगी क्योकि उस रमणी रत्न का शरीर तो मिथिला की पावन रज स निर्मित था किन्तु उसका हृदय हिन्दी के अत्यन्त निकट था। पावन परिणय के पश्चात वह कन्या विधिवत वहू बन कर मिथिला से सीता की भाँति अवध पुरी को पधारी। माँ हिन्दी ने अपने

प्राँगण मे उसका स्वागत किया, आरती उतारी और उसके सौभाग्य दीप्त भाल को स्नेह स चूम लिया। आज हिन्दी जगत ऐसी सुलक्षणा बहू को अपना कर अपने आपको ध य मानता है। इतना होने के पश्चात भी क्या इसमे स देह है कि विद्यापति हि दी के सवश्रेष्ठ कवियो मे से एक है और राधा कृष्ण सौ दय प्रेम सुधासिक्त उनकी पदावली हि दी साहित्य की अमर निधि और प्रेरक कृति है?

महाकवि विद्यापति की समस्त पद रचनाओं के सग्रह का नाम 'पदावली' है। इसकी उपलब्ध हस्तलिखित प्रामाणिक प्रतियो की सख्या चार है जो नेपाल, बगाल एव मिथिला के विभि न क्षेत्रो से उपलब्ध हुई हैं—

1 राज पुस्तकालय नेपाल की प्रति—स्व० महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री के प्रयत्नों स यह प्रति उपलब्ध हुई है। इसकी लिपि मथिली है और इसमे 287 पद सकलित हैं। इसकी फोटो कापी स्व० काशी प्रसाद जायसवाल तथा डॉ० अन त प्रसाद उपाध्याय न तैयार की थी। इसका प्रथम खण्ड पटना कालेज पुस्तकालय एव द्वितीय खण्ड पटना विश्वविद्यालय पुस्तकालय मे सुरक्षित है।

2 तरौनी ग्राम (मिथिला) मे प्राप्त ताल पत्रावली प्रतिलिपि—इस प्रति का सकलन कवि के प्रपौत्र न किया था। इस पोथी मे सकलित पदो की सख्या 350 है। इस पोथी से सम्ब धित सभी सूचनायें डॉ० नगेंद्र नाथ के प्रयत्नों का फल हैं। इस पोथी की मूल प्रतिलिपि उपलब्ध नही है।

3 रामभद्र पुर की पोथी—यह मूल पोथी प० विष्णुदयाल झा को प्राप्त हुई थी। इसका सम्पादन श्री शिव न दन ठाकुर ने 'विद्यापति विशुद्ध पदावली' के नाम स किया था। इसका प्रकाशन मैथिली साहित्य परिषद, दरभगा के द्वारा 1941 म हुआ था। इसमे पदो की सख्या 96 है उपलब्ध ताल पत्रो पर चार लखको के हस्ताक्षर हैं। सभी पत्र काल दृष्टि स एक तरह के नही हैं। डॉ० विमान विहारी मजूमदार इ हे केवल दो सौ वर्ष प्राचीन मानते हैं।

4 स्व० च दा झा द्वारा सग्रहीत पदावली—इस पदावली की प्रति

डॉ० उमेश मिश्र के पास है। इसे आधार मानकर उन्होंने विद्यापति पदावली का सम्पादन किया था और उसकी समीक्षा भी लिखी थी।

इनके अतिरिक्त बंगाल के विश्वनाथ चक्रवर्ती द्वारा संकलित प्राचीन पोथी 'क्षणदा गीत चिन्तामणि' जो सन 1705 के आसपास तैयार हुई थी, में विद्यापति के कुछ पद संकलित हैं। वैष्णवदास ने 18वीं शताब्दि के अन्त में 'कल्पतरु' का संकलन किया था जिसमें विद्यापति के 161 पद संकलित हैं। देशबन्धु चितरंजन दास द्वारा 1771 ई० में संग्रहीत 'संकीर्तनामृत' में भी विद्यापति के दस पद पाये जाते हैं। इस प्रकार गौड़ीय वैष्णव भक्तों ने भी विद्यापति के पदों को बड़ी सावधानी से सुरक्षित रखा है।

मिथिला में भी लोचन कवि द्वारा 'राजतरंगिणी' जो कवि की मृत्यु के ढाई सौ वर्ष बाद लिखी गई, में विद्यापति के 51 पद संगृहीत हैं 'मिथिला गीत संग्रह' में भी विद्यापति के कुछ पद मिलते हैं। प० बलदेव प्रसाद मिश्र, श्री रमानाथ झा डॉ० जयकांत मिश्र तथा डॉ० सुभद्र झा प्रभृति विद्वानों के शोधी प्रयत्नों से कवि के अनेक पद उपलब्ध हुए हैं। मिथिला की गानप्रिय महिलाओं का भी विद्यापति के पदों की सुरक्षा में ऐतिहासिक महत्व है। पदों की शुद्धता के लिए भी हमें मिथिला की स्त्रियों पर ही निर्भर रहना पड़ता है क्योंकि वे ही परम्परा से उन पदों को श्रुति के समान सुनती और गाती आई हैं।

विद्यापति पदावली के काव्य-वैभव की ओर आजकल अनेक विद्वानों की रुचि आकृष्ट हो रही है और उनपर अनेक शोध ग्रंथ भी लिखे जा रहे हैं। किन्तु अब तक की उपलब्ध सामग्री के आधार पर विद्यापति के पदों के जो प्रमुख संकलन तैयार किए गए हैं उनमें निम्न संकलन ऐतिहासिक एवं सामग्री की प्रामाणिकता की दृष्टि से विशेष महत्व के हैं—

1 विद्यापति पदावली—नगेन्द्रनाथ गुप्त (बंगला में)
2 विद्यापति पदावली—श्री ब्रजनंदन सहाय—प्रकाशक इण्डियन प्रेस, प्रयाग
3 विद्यापति— खगेन्द्रनाथ मित्र तथा विमान बिहारी मजूमदार, प्रकाशित—यूनाइटेड प्रेस, पटना

श्री कृष्णश्री शास्त्री

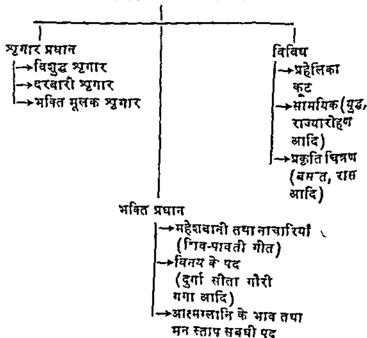
4 विद्यापति पदावली—रामवृक्ष बेनीपुरी तथा कुमारी गगानद झा, प्रकाशित पुस्तक भण्डार, लहेरिया सराय

5 विद्यापति पदावली—बिहार राष्ट्र भाषा परिषद द्वारा प्रकाशित। अब तक के प्रकाशित सभी ग्रथो मे यह सर्वाधिक प्रामाणिक प्रामाणिक एव विश्वसनीय है।

पदावली के पद विद्यापति के जीवन-अनुभूत सवश्रेष्ठ उन्मुक्त क्षणो की भावनिधियाँ हैं। उनके सम्मुख पदो के वग विभाजन, क्रमायोजन अथवा नियोजित अवस्था विशेष के चित्रण का प्रश्न नही था। विशिष्ट 'रडार' की भाँति जीवन व्योम मे उडती हुई विविध किन्तु रम्य झलकियो को उन्होने स्वभावत ही ग्रहण कर लिया और अपनी कारयित्री प्रतिभा से उस अनुपम काव्य चित्र मे ढालकर जन मानस को विमुग्ध कर दिया। प्रतिभा की अलौकिक सम्पन्नता एव व्यापकता के कारण अनायास ही पदावली मे व्यापक मानव जीवन की विविध व्यापार दशाओ एव सूक्ष्म वृत्तियो का चित्रण हो गया है। अध्ययन की सुविधा एव अभिव्यक्तियो के मनोवज्ञानिक विवेचन के लिए पदावली की समस्त विषय सामग्री को तीन विभागो एव अनेक प्रभागो मे विभक्त किया जा सकता है—

शृगार प्रधान—निस्सन्देह विद्यापति की पदावली मूलत शृगार प्रधान है। इसमे तीन प्रकार के शृगार का वणन है। प्रथम—विशुद्ध शृगार के वे पद हैं जिनमे किसी भी राजा, महाराजा या देवी देवता अथवा राधा कृष्ण आदि के नामो को उल्लेख नहीं है। इन पदो म विद्यापति स्वय आनद के स्वतत्र उपभोक्ता हैं। द्वितीय—दरबारी शृंगार—इन पदो म रानी लखिमादेई, शिवसिंह या अन्य राजा रानियो या दरबारियो के नाम हैं जिनके आश्रित या सलाहकार विद्यापति रहे थे। राधा कृष्ण के नाम मे सम्बन्धित कुछ पद भी जिनमे लौकिक शृगार का मांसल व्यापार अधिक मुखर है, दरबारी शृगार की ही श्रेणी मे रखे जायेंगे। तृतीय—भक्ति मूलक शृगार। इस श्रेणी म उन पदो की गणना की जा सकती है जिनम राधा-कृष्ण के नामो का उल्लेख भक्तिभाव मे है और उनके अलौकिक सौन्दर्य तथा दिव्य प्रेम का चित्रण है। इन पदो मे कृष्ण और राधा जयदेव परम्परा मे ललित नायक एव नायिका के रूप मे

िन्त्रित तो अवश्य हुए हैं कि तु उनके विस्मयादिबोधक देवत्व पर रज प्रधान लौकिकता के छीटे नही पडे हैं। यद्यपि इस प्रकार के वर्गीकरण की कोई स्पष्ट या दढ सीमा रेखा नही खीची जा सकती है, क्योंकि ये सारे मानदण्ड सापेक्षिक हैं कि तु प्रबुद्ध आलोचक के मानस क्षेत्र मे य सीमा रेखायें स्वय खिच जाती हैं, इस नकारा नही जा सकता।



पदावली मे शृगार की विषय-सामग्री अत्यन्त व्यापक है। वय सधि की अवस्था से अकुरित होकर शृगार की धारा ... के उन्मत्त प्रवाह मे परिणित हो जाती है और वृद्धावस्था मे ... के महासागर में उस उद्दाम धारा का ... जाता ... शृगार के वय सधि, यौवन, सद्य ... एव गुणात्मक सौन्दय, ... निद

मिलन प्रसग, सखी सभाषण, कौतुक, अभिसार, छलना, मान, मानभग, विलास, बसन्त, विरह तथा भावोल्लास प्रभृति, अभिव्यक्तियाँ कलात्मक, रोचक एव सहज ढग से प्रस्तुत की गई हैं।

अत पदावली शृ गार का अक्षय कोश है। इसमे केवल अनुभूत क्षणो की आनन्दमयी लहरियाँ ही नही बल्कि सामाजिक बधन से युक्त पारिवारिक जीवन की सफलता के लिए मधुर निर्देश भी है। भावना के प्रबल वेग मे कवि ने समाज और लोक जीवन की व्यावहारिकता और परलोक को विस्मृत नही किया है। इन सबका समन्वित गगा-यमुनी रूप ही पदावली के शृ गार की विशेषता है।

भक्ति प्रधान—काव्य के क्षेत्र मे सच्चा कवि धर्म और समुदाय की परिधि से परे होता है, फिर भी उसकी व्यक्तिगत आस्था होती है। वह लोक जीवन मे प्रचलित धार्मिक आस्था को अभिव्यक्ति प्रदान करता है और लोक धर्म को अपने काव्य मे स्थान देता है इसी सदर्भ के अनुकूल पदावली मे कुछ भक्ति प्रधान पद भी प्राप्त होते हैं। इन पदो मे महेशबानी और नाचारी मिथिला के लोक जीवन में बहुत प्रिय हैं और उनका झोपडी से लेकर महलो तक व्यापक आदर और प्रसार है। दुर्गा, गगा एव शिव की वन्दनाओ मे कवि की व्यक्तिगत निष्ठा अत्यन्त प्रबल है। इन पदो ने कवि की व्यक्तिगत एव लोक आस्था को स्वर मिला है और भावनायें साकार हो उठी हैं। वैदेही और राधा कृष्ण का प्रसग नितान्त कलात्मक है। किन्तु वे पद जिनकी रचना कवि ने जीवन के साध्य काल मे की है वे विशुद्ध भक्ति के उदगार हैं। उनमे गँवाये हुए यौवन के प्रति पश्चात्ताप है, आत्मग्लानि है और आने वाली घडियो के लिए हताशा और निराशा है। पर इस निराशा के बीच भी भगवान मे अटूट विश्वास और श्रद्धा है। ये पद सूर और तुलसी के विनय-पदो के समकक्ष हैं —यथा

1 'माधव हम परिनाम निराशा' या 'हरिजन बिसरब मो ममिता'। प० सं० 241
2 माधव की कहब तोहर गियान। प०स० 256
3 फुल एक फुलवारि साओल मुरारि,
जतने पटाओल सुबधन वारि। प०स० 257

4 दूर दुग्गम दमसि मजेओ, गाढ गढ गूढिय गजेओ।
पात साह ससीम सीमा, समर दरसओ रे। प०स० 258
5 हरि सम आनन, हरि सम लोचन, हरित हाँ हरिवर आगी।
प०स० 259
6 कुसमित कानन कुज बसी नयनक काजर घोर मसी। प०स०261
7 पिया मोर बालक हम तरुनि, कौन तप चुकलो हमे लौह सजनी।
प० स० 263
8 सुदरि चलि लहु पहु घरना, जइतहु लागु परम डरना। प०स०72
9 हम जुवती पति गेलह विदेश, लग नहि बसये पडोसिया कलेश।
प० स० 265

इन पदो मे कवि की वृद्धावस्था की मनोदशाओ का सुदर चित्रण हुआ है। सम्पूर्ण जीवन वैभव विलास मे व्यतीत करने के पश्चात वृद्धावस्या मे जब ससार की नश्वरता की चेतना जागी है तो कवि विकल हो उठा है और वही विकलता घनी आस्था के साथ इन पदो में अभिव्यक्त हुई है।

विविध —इस श्रेणी मे आने वाले पदो का सम्ब घ जीवन के विविध क्षेत्रो और प्रसगो से है। इसमे कवि की आन्तरिक व्यथा, प्रेम, शिवसिंह का युद्ध, कूट, प्रहेलिका, बालविवाह, लोक प्रसग तथा मानव जीवन मे होने वाले विभिन्न सस्कारो के अवसर पर गाये जाने वाले गीत हैं। इन गीतो मे कवि ने लोक जीवन की धमनियो की गति को सुविज्ञ वद्य की तरह पहचाना है इसीलिए इन गीतो मे वहाँ के जन मानस को आनद विभोर कर देने की अद्भुत क्षमता है।

विद्यापति की कृतियाँ साक्षी हैं कि विद्यापति एकात गायक कवि नहीं थे। उन्होने व्यक्तिगत तथा सामाजिक एव राजनीतिक जीवन का उनकी पूणता क साथ जिया था। जीवन के उत्थान पतन और सुख-दुख को पूर्ण मनोयोग के साथ भोगा था। इसीलिए उनकी रचनाओ मे समग्र जीवन की सघन अनुभूति और मरम अभिव्यक्ति है। पदावली उनकी विशेष रचना है उनकी कीर्ति का आधार स्तम्भ है। इस पदावली का अपना खास स्वरूप अपना खास रग है। वह कही भी रहे आप उसे कितनी ही

कविताओं में छिपाकर रखिए वह स्वय चिल्ला उठेगी—'मैं हिन्दी कोकिल की काकली हूँ। जिस प्रकार हजारों पक्षियों के कलरव को चीरती हुई कोकिल की काकली आकाश पाताल को रस-प्लावित कर देती है और अपना स्वतन्त्र अस्तित्व प्रकट करती है, उसी प्रकार यह पदावली भी अपना परिचय अपने आप देती है।' रामवृक्ष बेनीपुरी के इन शब्दों के साथ विद्यापति पदावली की अभ्यर्थना को मैं यही विराम देता हूँ वैसे तो साहित्य समीक्षकों और साहित्य रस प्रेमियों की भावनाओं के सागर को शब्द की सीमाओं में बांधना सम्भव नहीं है।

विद्यापति के काव्य में कृष्ण तथा राधा का स्वरूप

राधा कृष्ण-युगल छवि की रूप गुण माधुरी का पान भारतीय समाज युग-युग से करता आ रहा है। यह युगल छवि व्यक्ति विशेष की मूर्ति नहीं बल्कि भारतीय सस्कृति के प्रवाह मे अग्रसर होती हुई जन मानस की समष्टिगत भावना का मिश्र स्वरूप है। इस स्वरूप के विकास का इतिहास अत्यन्त विचित्र मा यताओ तथा भ्रान्तियो से युक्त एव मनोरजक है। काल कोश म इसका कैसे बीजारोपण हुआ, इतिहास के गोद मे इस स्वरूप ने कितने करवट बदले, बाहरी तथा भीतरी प्रभावो न इस स्वरूप को कैसे और कितना विकृत किया और कसे इस भावना का शृ गार किया, यह सारी गाथा अत्यन्त रोचक है और आज भी शोध की अपेक्षा रखता है।

वेदो मे द्यु लोक का अधिष्ठाता आदित्य और भू लोक तथा मध्य लोक का इन्द्र था। इन्द्र—कृषि, वनस्पति, वृष्टि और खाद्यान्नो के देवता होने के कारण 'राधानापति' हो गया। इसी समय जीवन मरण के दुख को दूर करने वाले विष्णु का भी उदय हुआ जो कालातर म इन्द्र से भी अधिक महत्वपूर्ण और त्रिविक्रमनिश्वस' भुवनस्य सा-आ और राधाना पति हो गए। पांच रात्र धम मे उनकी पूजा होने लगी और वही वसुदेव हो गए। ई०पू० पाचवी शती म पाणिनी के समय जन साधारण म यह पूजा प्रचलित थी। पतजलि ने अपन भाष्य मे विष्णु और वसुदेव कृष्ण मे कोई अन्तर नहीं रखा। गीता मे वसुदेव की गिनती विष्णियों मे हुई जो विष्णि यादव या सात्वत वश का नाम था और वसुदेव इसी वश मे 100 शती ई० पू०

एक महान व्यक्ति हुए थे। विष्णु पुराण और वाराहमिहिर इन्हे कोकण या सौराष्ट्र के आसपास का निवासी मानते हैं। इनके अनुसार कृष्ण या गीता के गोविन्द आभीर नामक एक घुमक्कड जाति के बाल देवता हैं। इन आभीरो का मधुपुर से लेकर आवत और अनूप तक के प्रदेशो पर अधिकार था। वतमान अहीर, जाट और गूजर इसी घुमक्कड जाति के सतान हैं। अत वर्तमान कृष्ण—विष्णु, नारायण, वसुदेव, गोपाल और गोविन्द के काल प्रवाह परिमार्जित सस्करण है।

कृष्ण की भाँति राधा मे भी ऐतिहासिक व्यक्तित्व का अभाव पाया जाता है। गोपियो मे तो यह व्यक्तित्व है ही नहीं। भागवत, विष्णु तथा हरिवश पुराण आदि प्राचीन ग्रथो मे राधा का कही कोई उल्लेख नहीं है। गाथा सप्तशती और पचतत्र मे 'राधा' का उल्लेख मिलता है। राधा की भक्ति का उल्लेख दक्षिण मे भी मिलता है। इन विरोधों की तह मे जाने से पता चलता है कि राधा आभीर जाति की प्रेम देवी रही होगी जिसका सम्बन्ध बाल कृष्ण से रहा होगा। कालान्तर मे राधा की प्रधानता के साथ आभीरो के बाल दवता की कथा सम्बद्ध हो गई होगी। यह भी सम्भव है कि राधा आय पूर्व जाति की प्रेम देवी रही हो जिसे आर्यों ने कृष्ण के साथ जोड दिया हो।

पाँचरात्र और भागवत धम के विकास के साथ राधा कृष्ण म मानवीय गुणा का आरोप हुआ और प्रेम भक्ति को प्रधानता मिली। निम्बाक ने राधा कृष्ण भक्ति का प्रचार किया जिनके अनुसार वे कृष्ण परब्रह्म की अनन्य सगिनी है। महाभारत और पौराणिक काल के कृष्ण विष्णु के अवतार थे। निम्बाक न ही कृष्ण के ब्रह्मत्व के साथ मधुर भावना का समावेश कर उन्हें सर्वजन सुलभ बना दिया। राधा प्रेम की अधिष्ठात्री देवी हो गई और उनम रसराज श्रृगार की स्थापना हो गई और नायक-नायिका स्वरूप की सभावना बन गई। तान्त्रिक शाक्तो की श्रृगार भावना के अनुरूप भी राधा-कृष्ण श्रृगारिक मनोवत्ति के प्रतीक बन गये। राधा की आठ प्रधान सखियाँ आठो रसो और अन्य सखियाँ सचारी भाव की प्रतीक बन गइ और राधा और कृष्ण का यह स्वरूप साहित्य म श्रृगार का आदिस्रोत बन गया।

तात्पय यह है कि हिन्दी साहित्य को स्पर्श करते-करते राधा और कृष्ण का स्वरूप दर्शन या तत्व की वस्तु न रहकर सम्पूर्णतया भाव जगत की वस्तु हो गए थे। "भक्ति-प्रेम और माधुय की विचित्र सपदाओं स युक्त यह युगल मूर्ति ईश्वर का रूप तो थी किन्तु उसमे वैदिक देवताओ का सभ्रम नही था। वह ग्रीक अपोलो की भाँति नही थी। उसमें इस्लामी खुदा की तटस्थता नही थी, उसम था एक सहज सरल घरेलू सम्बन्ध। सखा, प्रिय, स्वामी आदि का भाव सहज ही उनमे घर कर गया। राधा कृष्ण की यह जोडी जो विकास के अनेक सोपानो को पार कर हिन्दी साहित्य को उपलब्ध हुई, वह केवल रसिक भक्तो, कवियों एव उपासको के भाव लोक की आदर्श प्रतिमा ही नही बल्कि समग्र समाज की प्राण सजीवनी बन गई। राधिका के चरणो पर अनेको लक्ष्मी और कृष्ण के स्वरूप पर करोडो कामदेव को न्योछावर करने की लालसा जो कवि-कुल के मन म उठती है वह उनके रूप गुण के लालित्य की तुलना मे कुछ भी नही है। यदि उसके पास इससे भी बडी कोई सम्पदा होती तो वह इन चरणो पर सहष और सगव न्योछावर कर दता।

विद्यापति के कृष्ण का स्वरूप—विद्यापति ने कृष्ण के अवतार का कारण रामावतार म राम सीता का अतृप्त पारिवारिक जीवन माना है। विद्यापति के कृष्ण का प्रथम दशन पदावली मे 'नन्दक नन्द कदम्बक तरु तर धिरे धिरे मुरली बजाव' के साथ कृष्ण-वन्दना मे होता है। आनन्दकन्द कृष्ण नाम समेतम कृत सकेतम वादयते मृदु वेणुम जयदव की परम्परा मे धीरे धीरे मुरली बजाकर राधा को सकेत स्थल पर बुला रहे हैं। वे प्रतीक्षा मे आँख बिछाये 'खने खने विकल मुरारि हैं। वे मुरली धीरे धीरे बजाते है क्योकि दूसरे भी सुन सकते हैं, यह भय बना हुआ है। विकलता की तीव्रता तो देखिये—आते जाते गोरस वेचने वाली गोपियो से बार बार पूछते है। मुरारि की यह विकलता, यह तडपन देखकर पाठक का मन सहज ही रसिक शिरोमणि कृष्ण के राधा प्रेम की गहराई की ओर आकृष्ट हो जाता है और उनका अलौकिक रूप इस प्रेम प्रवाह मे तिरोहित हो जाता है।

राधा के मन को भी मुग्ध कर देने वाला यह कृष्ण 'सुपुरुष' है जिसकी

व्याख्या कवि ने 'पुरुष परीक्षा' मे की है। उसका स्वरूप स्वप्नवत है। युगल कमल पर चाँद की माला, उस पर तरुण तमाल, तमाल पर बिजली की लता, ऐसा स्वरूपवान कृष्ण मस्ती मे मथर गति से यमुना के किनारे जा रहा है। कमाल का रूप है कि प्रथम दशन मे ही वह राधिका 'हेरइत पुनि मार हरल गियान', की सुध बुध हर लेता है। क्षण भर के लिए ही राधिका उसे देखती है और देखते ही व्याध के विषम बान से उसका हृदय बिंध जाता है और राधा की 'सुकृति सुफल' हो जाती है जैसा तुलसी ने 'पुण्य पुराकृत भूरि' की बात कही थी। राधा प्रयत्न करके अपन मुख को नीचे कर चरणों में टिका देती है किन्तु चकोर की भाति बार बार उसके नत्र चन्द्रमा कृष्ण की ओर चले ही जाते हैं—बिहारी के बरजोर घोडे की तरह—'लाज लगाम न मानही नैना मो बस नाहि।' माधव मधुर वाणी मे कुछ कहत हैं सुनकर राधिका कान बन्द कर लेती है किन्तु मन के भाव को कौन रोक सकता है। शरीर से पसीने का प्रवाह चलने लगता है, कचुकी फट जाती है, चूडिया चटक जाती हैं, हाथ कापने लगता है, जिह्वा 'गिरा अलिनि मुख पकज रोकी' की स्थिति मे हो जाती है। यह है श्याम सुन्दर की अनुपम छवि और मिलन का राधा पर प्रभाव।

फिर क्या है राधा की विकलता जाग उठती है, दशन की अतृप्त लालसा हिलोरें लेने लगती है। वह सुरपति से नेत्र और गरुण से पख की कामना करने लगती है जिससे उसकी कृष्ण मिलन की साध पूरी हो सके। अभिलाषा पूरी होती है। यमुना तट पर राधा-कृष्ण का मिलन होता है। पनघट पर युगल मूर्ति को देखकर यमुना उद्वेलित हो उठती है। बनस्थली आत्मविस्मृत मे खो जाती है, गोकुल की अँधेरी गलियाँ प्रकाश से जगमगा उठती हैं, चन्द्रमा को अपने रूप की सार्थकता पर गर्व होता है और बसन्त अपने यौवन का सच्चा आनन्द पा धन्य हो जाता है। किन्तु ससार मे सुख ने किसका साथ दिया है—एक दिन कृष्ण अपनी प्रियतमा का हाथ पकड कर विदा लेते हैं और मधुपुरी के लिए प्रस्थान कर दते हैं। राधा रक हो जाती है, कृष्ण को भी चैन कहाँ। राधा का संदेश सुनकर वह कह उठते हैं—

राधा हे से कि्य बिसरल जाई।
करे धरि माथुर मन मति मगइत, ततहि् पडल मुरझाई।
किछु गद गद सो लहु लहु आखरे जे किछु कहल कर बामा॥
कठिन कलेवर तेजि चलि आएल, चित रहल सोई ठामा॥
से बिनु रात दिवस नहि भावइ, ताहि् रहल मप लागी।
आनि रमनि सग राज सम्पदा, भागे अछिय जइसे विरागी॥

माधव न कहा उस राधा को कम भूला जा सकता है। हाथ पकड जब मैंने मथुरा जाने की अनुमति माँगी थी उसी समय वह मूच्छित होकर भूमि पर गिर पडी थी और टूट फूटे अक्षरो मे जो कुछ उस रमणी ने कहा था उसे सुनकर भी यह कुलिश हृदय चला आया पर चित्त तो वहीं रह गया। उसके बिना न रात अच्छी लगती है न दिन। अन्य रमणियो के साथ राज सपदा होते हुए भी मैं विरागी के समान हूँ।

यह है विद्यापति के कृष्ण का चित्र। वे राधा म स्वकीया भाव से अनुरक्त हैं। यही स्वकीया भाव विद्यापति की सामाजिक मर्यादा और अनुशासनप्रियता का प्रमाण है। विद्यापति क कृष्ण ललित नागर हैं, रसिक शिरोमणि हे वे बाँसुरी ध्वनि म सकेत स उन्हें बुलाते हैं, कुज भवन मे रास्ता रोकते हैं, यमुना तट पर नौका से पार कराते हैं, कदम्ब के छाया म मिलते हैं। मिलकर प्रिया की सम्पूण मनोकामनाओ को पूण करते हैं। सबसे बडी बात तो यह है कि वे पति पत्नी भाव से राधा को सदव स्मरण करते हैं। सयोग मे उल्लास अपने पूर्ण वैभव के साथ तरगायित होता है तो वियोग का विषम ज्वर उन्हे सुख सपदा और अन्य रमणियो के बीच भी विरागी बना देता है। जीवन के इन उत्कृष्ट क्षणो मे याद आती है चचरीक जिमि चपकु बागा की भरत के स्वरूप की। प्रिया का दुख उनसे देखा नही जाता वे सबकुछ त्यागकर पुन आकर अपनी प्रियतमा से मिलते हैं और उसके जीवन की तपस्या को साथक बना देते हैं।

विद्यापति की राधा—कृष्ण की भाँति विद्यापति की राधा का भी दशन पाठको को सबसे पहले वन्दना के पद म होता है। रूप-वैभव वैचित्र्य से चकित होकर कवि की वाणी मुखर हो उठती है—'देख देख राधा रूप अपार'। इस रूप की सघटना पर कवि को आश्चय होता है। करोणा

अनग शत शत लक्ष्मी उसके अग-अग पर न्योछावर होते हैं, 'मुरारि' मुरा राक्षस को मारने वाले कृष्ण भी उसके रूप को देखकर मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर जाते हैं। विद्यापति की राधा 'सामरि' श्यामा नायिका है—'तप्त-काचन वर्णाभा' है उसकी, वह 'शीतासुखेष्णु' और 'गष्म च सुख शीतला' है। इस अपार सौन्दय का प्रभाव भी अपार है। कवि की हार्दिक अभिलाषा है कि वह अनुपम सुन्दरी राधा के पावन चरणो को अपनी गोद मे 'अगोर' कर रात-दिन रखें।

इन चरणो को गोद मे रखकर विद्यापति अपनी पदावली की अधिष्ठात्री सौन्दय देवी राधा के रूपवणन का द्वार खोलते हैं। राधा के हृदय मे मनोज अकुरित होता है। किशोरावस्था और यौवन के मिलन की देहरी पर विशाल नेत्र काननचारी होन लगते हैं, वचन मे माधुय, चरणो मे चपलता आती है। चरणो पर चन्द्रमा प्रकट होता है। मुग्धा राधा बार-बार दपण देखती है। अगो का विकास होता है। अनग अपने बाग की रखवाली करने लगता है। सुरत विहार की जिज्ञासा स्वभावत जाग उठती है। शैशव यौवन मे द्वन्द छिडता है। केश रह रहकर ब धन विमुक्त हो जाते हैं, आँचल बार बार खिसक जाता है। मदन का प्रवेश होता है अग विशेषो को गौरव प्राप्त होता है—कटि क्षीण हो जाती है, वक्षस्थल एव नितम्बो की गुरुता बढने लगती है। चरणो की चपलता नेत्र ले लेत हैं और नेत्रो का भोलापन चरणों मे समा जाता ह। वय सन्धि क पदावली-पद राधा के वयविकास और मनोदशा के चित्र हैं।

राधा किशोरावस्था की देहरी को पार कर यौवन मे पदापण करती है। कृशगात, पीन पयोधर, कनकलता मे मरु का सदेश ले दूती कृष्ण के पास पहुँचती है। कृष्ण विमुग्ध हो मिलने के लिये चल पड़ते हैं। कसा अभिराम यौवन है। आनन सहज ही सुन्दर है। 'भौंह सुरेखल' आखें हैं, छहो अनुपम एक साथ एकत्र हो गये हैं—

कि आरे ! नवयौवन अभिरामा।
जत देखल तत कहओन पारल छहो अनुपम इक ठामा ।।
हरिन इन्दु अरविन्द करिन हेम, पिक बूझल अनुमानी ।।
नयन बदन परिमल गति तनरुचि अओ सुललित बानी ।।

कृष्ण के प्रेम मे डूबी राधिका अपने समस्त यौवन के रूप और भाव—संपदा को लेकर जब एक दिन अचानक ही कृष्ण से मिल जाती है तो जिह्वा मूक हो जाती है, नेत्रो से सावन की झडी लग जाती है, हृदय धक धक धड़कने लग जाता है। बेचारी मुग्धा राधा को क्या पता था कि यह दर्शन विषमवेदना का कारण बन जायेगा और चितचोर एक ही दृष्टि में सब कुछ हर लेगा।

इसके बाद तो राधा ने कृष्ण को सैकडो बार देखा—कभी उसने कुंज भवन मे रास्ता रोका तो कभी पनघट पर मटकी फोडी, कभी नाव पर चढ़ा बीच यमुना मे जाकर खडी कर दी और कभी राधा ने स्वय हठ किया—'कर धरू कर मोहे पारे कन्हैया'। यमुना की टेढी मेढी पगडडियों पर और बार बार आँखें चार हुई और वे 'नयन तरगे जनुगेलहि समाई' मानो समग्र तरंगों मे मे डूब गये। पर निष्ठुर सखियाँ इस बात पर विश्वास कहाँ करती हैं। सच है—'निठुर सखी विश्वास न देई, परक वेदन पर बाँट न लेई।'

प्रिय मिलन की ऐसी ही तरगो मे राधा का मन हिलोरें ले रहा था कि एक दिन संदेश मिला प्रियतम मधुपुरी जाना चाहते हैं। वियोग की आशका मे राधा का हृदय विदीर्ण हो गया। लोक लाज छोडकर स्वय ही प्रियतम के पास गई और बोली—प्यारे सुनो यदि विदेश जाना ही चाहते हो तो मेरी बात सुनो 'यदि भौंरे ग[illegible] गें, कोकिल [illegible] छेड दे तो अनुमान करना की बसत अ[illegible] वरन अप[illegible] लेना। उस समय हे प्यारे अपना प्राण र[illegible] को भी [illegible] ने प्रिया को सम्बोधित किया। [illegible] पडी आँखों से [illegible] गिर पडी। [illegible] राधा की मू[illegible] सकते थे—[illegible]

कानमुख[illegible]
अनुमति [illegible]
आकुल कत

किन्तु समय आया, कृष्ण चले गये। वे राधा के विरह का अनुभव नहीं कर सके। कवि के अनुसार यदि राधा की इच्छा पूरी हो जाती और मर कर दूसरे जन्म मे राधा कृष्ण होती और कृष्ण राधा तब इस व्यथा का अनुभव कर सकते। तुलसी की सीता की भांति राधा कह उठती है—'बिछुरत प्रानन कीन्ह पयाना। हृदय वड दारुण रे पिया बिनु विहरि ना जाय।' वह अपनी सहेली से चिता सजाने का आग्रह करती है क्योंकि इस दुख का दूसरा अंत नही—

सून सेज हिया सालय रे, पियारे बिन घर मोये आजि।
विनती करऊँ सहेलिन रे, मोहि देहि अगिहर साज॥

इतने पर भी राधा प्रियतम को दोष नही देती, कैसे देती भारतीय नारी की आदर्श जो ठहरी ? वह अपने भाग्य को ही कोसती है—'हमर अभाग पिया नहि दोष। कि तु कितनी वेदना है उस रमणी के हृदय मे ? उसे तो वही जान सकता है जिसने स्वय अनुभूत किया हो। 'आनक दुख आन नहि जान' को पढ़कर तो स्मरण हो आता है—'जाके पैर न फटे बिवाई, सो का जाने पीर पराई' और मर्म कराह उठता है।

राधा का रतन धन खो गया है। राधा अपने को ही कोसती है कि यह उसके ही कर्मों का फल है। कि तु विद्यापति अपनी राधा को आशा बधाते हैं। राधा आशा छोडती नही पर यह आशा कब पूर्ण होगी साच सोच कर तन-मन कराह उठता है—

लोचन धाय फेंनाएल हरि नहि आएल रे,
शिव शिव जिवयो न जाय आसे अरुझायल रे।

राधा सदेश भेजती है—'हे काले बादल कमल सूख गया, भौंरा अब नही आता। प्यासा पथिक पानी भी नही पाता। सरोवर दिन पर दिन छिछला होता जा रहा है। समय की उपेक्षा कर यदि तुम बरसे तो क्या-'क्या बरषा जब कृषी सुखाने'। अवधि के दिन गिनते गिनते राधा के नाखून घिस गये, गोकुल का नाम भूल गया पर कृष्ण नही आये। राधा अपनी सखी से कहती है—हे सखी, श्याम को जाकर समझा देना—प्रेम का बीज —अकुर रोप कर तूने इसे मरोर डाला। वह कसे बचेगी ? तेल की बूद की तरह तुम्हारा अनुराग फैलता जा रहा है और रेत मे पडे जल की बूद की

कृष्ण के प्रेम मे डूबी राधिका अपने समस्त यौवन के रूप और भाव—सपदा को लेकर जब एक दिन अचानक ही कृष्ण से मिल जाती है तो जिह्वा मूक हो जाती है, नेत्रो से सावन की झडी लग जाती है, हृदय धक धक धडकने लग जाता है। बेचारी मुग्धा राधा को क्या पता था कि यह दर्शन विषमवेदना का कारण बन जायेगा और चितचोर एक ही दृष्टि मे सब कुछ हर लेगा।

इसके बाद तो राधा ने कृष्ण को सैकडो बार देखा—कभी उसने कुञ्ज भवन मे रास्ता रोका तो कभी पनघट पर मटकी फोडी, कभी नाव पर चढा बीच यमुना मे जाकर खडी कर दी और कभी राधा ने स्वय हठ किया—'कर धरू कर मोहे पारे क हैया'। यमुना की टेढी मेढी पगडडियों पर अनेक बार आँखें चार हुइ और वे 'नयन तरगे जनुगेलहि समाई' मानो नयन तरगो मे वे डूब गये। पर निष्ठुर सखियाँ इस बात पर विश्वास नहीं करती है। सच है—'निठुर सखी विश्वास न देई, परक वेदन पर बाँट न लेई।

प्रिय मिलन की ऐसी ही तरगो मे राधा का मन हिलोरें ले रहा था कि एक दिन सदेश मिला प्रियतम मधुपुरी जाना चाहते हैं। वियोग की आशका मे राधा का हृदय विदीण हो गया। लोक लाज छोडकर स्वय ही प्रियतम के पास गई और बोली—प्यारे सुनो यदि विदेश जाना ही चाहते हो तो मेरी बात सुनो 'यदि भौंरे गूजने लगें, कोकिल पचम तान छेड दे तो अनुमान करना की बसन्त आ गया है। वरन अपने कान मूद लेना। उस समय हे प्यारे अपना प्राण रखना और प्यासी को भी जल देना। कृष्ण ने प्रिया को सम्बोधित किया। राधिका वाहा के मुख को देख कर फूट पडी, आँखो से अश्रु की अविरल धार बहने लगी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडी। प्रियतम ने उपचार किया और कहा कि मथुरा नही जाऊगा राधा की मूर्च्छा समाप्त हुई। ऐसे प्रबोध का चित्र तो विद्यापति ही खींच सकते थे—

कानमुख हेरइते भावन रमणी, फुकरइ रोयत झरझरए नयनी।
अनुमति मागिते वरविधुवदनी, हरि हरि शब्दे मुरुछि पडे धरनी॥
आकुल कत पर बोधइ कान, अब नहिं माथुर करब पयान।

किन्तु समय आया, कृष्ण चले गये। वे राधा के विरह का अनुभव नहीं कर सके। कवि के अनुसार यदि राधा की इच्छा पूरी हो जाती और मर कर दूसरे जन्म मे राधा कृष्ण होती और कृष्ण राधा तब इस व्यथा का अनुभव कर सकते। तुलसी की सीता की भाँति राधा कह उठती हैं—'बिछुरत प्रानन कीन्ह पयाना। हृदय वड दारुण रे पिया बिनु विहरि ना जाय।' वह अपनी सहेली से चिता सजाने का आग्रह करती हैं क्योंकि इस दुख का दूसरा अंत नहीं—

सून सेज हिया सालय रे, पियारे बिन घर मोये आजि।
विनती करऊँ सहेलिन रे, मोहि दहि अगिहर साज।।

इतने पर भी राधा प्रियतम को दोष नहीं देती, कैसे देती भारतीय नारी की आदर्श जो ठहरी? वह अपने भाग्य को ही कोसती है—'हमर अभाग पिया नहि दोष। किन्तु कितनी वेदना है उस रमणी के हृदय म? उसे तो वही जान सकता है जिसने स्वयं अनुभूत किया हो। 'आनक दुख आन नहि जान' को पढकर तो स्मरण हो आता है—'जाके पैर न फटे बिवाई, सो का जाने पीर पराई' और मर्म कराह उठता है।

राधा का रतन धन खो गया है। राधा अपने को ही कोसती है कि यह उसके ही कर्मों का फल है। किन्तु विद्यापति अपनी राधा को आशा बधाते हैं। राधा आशा छोडती नहीं पर यह आशा कब पूर्ण होगी साच सोच कर तन-मन कराह उठता है—

लोचन धाय फेनाएल हरि नहि आएल रे,
शिव शिव जिवयो न जाय आसे अरुझायल रे।

राधा संदेश भेजती है—'हे काले बादल कमल सूख गया, भौंरा अब नहीं आता। प्यासा पथिक पानी भी नहीं पाता। सरोवर दिन पर दिन छिछला होता जा रहा है। समय की उपेक्षा कर यदि तुम बरसे तो क्या-'क्या बरषा जब कृषी सुखाने'। अवधि के दिन गिनते-गिनते राधा के नाखून घिस गय, गोकुल का नाम भूल गया पर कृष्ण नहीं आये। राधा अपनी सखी से कहती है—हे सखी, श्याम को जाकर समझा देना—प्रेम का बीज —अंकुर रोप कर तूने इसे मरोर डाला। वह कैसे बचेगी? तेल की बूद की तरह तुम्हारा अनुराग फैलता जा रहा है और रेत मे पडे जल की बूद की

तरह तुम्हारा दिया हुआ सुहाग गायब होता जा रहा है।

बसन्त आया, ग्रीष्म आया, वर्षा आई, शरद बीता शिशिर और हेमन्त भी बीत गये पर तुम नही आये। सखी ने जाकर कृष्ण से निवेदन किया—

लोचन नीर तटनि निरमाने, ततहि कमल मुखि करत सनाने।

हे कृष्ण, तुम्हारे विरह म राधा नयनाश्रु जल मे स्नान कर रही है। एक बार तुम्हारे रूप सुधा का पान करले तभी वह जी सकेगी। सखी ने नाना प्रकार से राधा की विरह वेदना का वर्णन किया। राधा के प्रियतम सुनकर बेहोश हो गये, जब जगे तो हृदय से प्रेमोद्गार की धारा फूट पड़ी और राधा की एक एक बात की सुधि कर रोने लगे।

सखी ने आकर सदेश दिया कृष्ण आ रहे हैं। प्रतीक्षा की छोटी घडी का काटना भी मुश्किल हो गया मिलन की तैयारी करने लगी। वह कहती है—'प्रिय ज्यो ही आगन मे आयेंगे मैं मुस्कुराकर पलट जाऊगी वे हँस कर हमारा आँचल पकड लेंगे मैं भावविभोर हो उठूगी—

आँगने आवब जब रसिया, पलट चलब हम ईषत हसिया।
रसनागर—रमनी, कतकन जुगति मनहिं अनुमानी।
आवेशे आँचर पिया धरिबे जावब हम यतन बहु करिबे।

राधा का खोया हुआ धन पुन प्राप्त हो जाता है। बसन्त का दारुण दुख प्रियतम का मुख देखकर दूर हो जाता है। हृदय की साध मिट जाती है। आलिगन से शरीर पुलकित हो जाता है। अधर सुधा के पान से विरह की पीड़ा शान्त हो जाती है। समुचित औषधि प्राप्त होने से जसे व्याधि मिट जाती है। उसी प्रकार प्रियतम के मिल जाने से विरह का विषम ज्वर समाप्त हो जाता है। वह रात राधा के सौभाग्य की रात है। राधा का जीवन और यौवन दोनों सफल होते हैं। उल्लसित राधा कह उठती है—

आजरजनि हम भाग गवावल पेखल पियमुख चन्दा।
जीवन-यौवन सफल करिमानल दस दिसि भेल निरदन्दा।

सखी जब अनुभव पूछती है तो राधा कहती है—

सखि कि पूछसि अनुभव मोय,
से ही पिरीत अनुराग बखानत, तिलतिल नूतन होय।

वही प्रीति है, वही अनुराग है जो क्षण क्षण नूतन हो, जिसमें बासीपन या अरुचि का कहीं नाम न हो। वह कहती है मैंने सारे जीवन उस रूप को देखा उसके वचन को सुना पर वे नित ही नवीन लगते हैं। ऐसी अनुभूति किसने की? यही तो प्रेम की सार्थकता है, प्रेम का सर्वस्व है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों मे— विद्यापति की राधिका आरम्भ से अन्त तक मुग्धा किशोरी है। क्या पूर्वानुराग, क्या मान, क्या मिलन, क्या वियोग सवत्र उनकी शिकायत है कि कोई उनके प्रेम को पतियाता नही, कोई उनके दुख को बाँट नही लेता। हालाँकि राह, घाट, गली, कूचे सर्वत्र उन्ही के प्रेम की चर्चा चल रही है। इस राधिका म प्रेम का वह रूप शुद्ध भाव से फूट पडा है जो प्रेम-पात्र के अतिरिक्त किसी और को नही देखता। विद्यापति ने राधिका की जिस प्रेममयी मूर्ति की कल्पना की है, उसमे विलास कलावती का रूप स्पष्ट ही प्रधान है पर उस विलास के पीछे सवत्र यह भावना छिपी हुई है कि प्रिय इससे प्रसन्न हो। राधिका का रूप भगवान के लिये है, यौवन भगवान के लिये है, प्रेम भगवान के लिय है, विलास भी भगवान के लिये है—एक शब्द म उन्होंने भगवान की सतुष्टि के लिये ही विलास कलावती का रूप धारण किया है।

साराश यह है कि विद्यापति की राधा रूप गुण की खान और सौन्दर्य की सजीव प्रतिमा है, एकनिष्ठ प्रेम की अधिष्ठात्री देवी है और केलि कलावती प्रेम के अवतार कृष्ण की आह्लादिनी प्रिया है। उनकी केलि मे कुतूहल है यौवन उद्दाम, शृगार की लहरें तरगायित होती हैं। इनका कोमल कलेवर जितना ही सुन्दर और मासल है प्रेम की ज्वाला मे जलकर मन भी उतना ही निमल हो गया है। निस्सदेह ये विशुद्ध शृगार की मानवी देवी हैं। ये रूप से पदिमनी, हृदय से पदम और पूर्णतया अपने नागर कृष्ण के अनुकूल हैं। धन्य हैं विद्यापति जिन्होने सौन्दय की देवी और देव रत्न का अनुपम काव्य चित्र खीच कर रसिको और भक्तो का मन मोह लिया है और साहित्यप्रेमियो को रसराज के प्रशान्त सागर मे गोते लगाने का अवसर प्रदान किया है।

इस सदभ मे राधा-कृष्ण सम्बन्ध को व्याख्यायित करने वाली वैष्णव परम्परा पर भी सक्षेप मे विचार कर लेना अनावश्यक न होगा। कृष्ण

दास कविराज ने चैतन्य के समान ही राधा तत्व का निरूपण किया है। कृष्ण की तीन शक्तियाँ हैं उनमे से एक आह्लादिनी है। यह शक्ति कृष्ण के प्रणय की विकार है। इस शक्ति का सार प्रेम है। प्रेम का सार भाव है और भाव की पराकाष्ठा को महाभाव कहते हैं। राधा महाभाव स्वरूपा हैं, सर्वगुण सम्पन्न है और कृष्ण-कान्ताओं मे शिरोमणि है।[1] राधा का काय कृष्ण की सकल वांछाओ को पूरा करना है। इसी को वे आराधना कहती हैं इसीलिये उनका नाम राधिका है। कृष्ण के अवतार के साथ अधिनी राधा भी अपने तीन गुणों का विस्तार करती हैं—लक्ष्मी गण महिषी गण और कान्ता गण। प्रथम मे उनका वैभव है, द्वितीय म प्रभाव है और तृतीय मे व्रज देवियाँ हैं। राधा इन्ही की सहायता से कृष्ण को रस का आस्वादन कराती हैं। राधा गोविन्द को आन द प्रदान करने वाली गोविन्द मोहिनी हैं। कृष्ण के अतिरिक्त इनके लिये जीवन और जगत में कुछ भी नही है। ये जगतमाता हैं, कृष्ण जगत मोहन हैं। राधा इन्हें भी मोहित करती हैं अत वे श्रेष्ठ हैं। ये पूण शक्ति हैं और कृष्ण पूण शक्ति मान। इन दोनो मे मृगमद और उसकी गध की तरह अभिन्न सम्बन्ध है। ये दोनो एक ही स्वरूप हैं। ये केवल लीला रस के आस्वादन के लिये दो रूप धारण किये हैं। यह समस्त ससार राधा का धाम है और समस्त शक्तियाँ उनकी दासियाँ। राधा के गुणो और सौभाग्य की आकाक्षा सत्य भामा करती है। गोपियाँ इनसे व्रजकलायें सीखती हैं। लक्ष्मी इनके सौन्दय की वांछा करती हैं, अरुधती पतिव्रत सीखती है और कृष्ण भी इनके अधीन हैं। ऐसी परम श्री राधा का गुण गान शब्दो की शक्तियो से परे है।

हिन्दी वैष्णव साहित्य म कृष्ण सहचरी राधा की भावना इसी प्रकार

---

1 ह्लादिनी सार प्रेम, प्रेम सार भाव
भावेर परमाकाष्ठा नाम महाभाव।
महाभाव स्वरूपा श्रीराधा ठकुरानी,
सवगुण खान कृष्णकान्ता शिरोमणि।
—चैतन्य चरणामृत परि० 4 पृ० 24

की है। राधा रूप की राशि, सुख की खान, आनन्द की धाम तथा शील और गुणों की पुण्य सलिला हैं। जगनायक जगदीश की प्रिय, जगत की माता और जगरानी हैं। पुरुषोत्तम ही राधा कृष्ण दो रूप बना कर आये हैं। विद्यापति इनके चरणो पर शत शत लक्ष्मी और कामदेव को न्यौछावर करते हैं। गौडीय भक्तो की राधा परकीया हैं और ब्रज भक्तो की स्वकीया। विद्यापति ने कृष्ण और राधा की काव्य सम्पदा को सीधे जयदेव से लिया है। जयदेव ने राधा-कृष्ण के प्रेम को परकीया भाव से उपस्थित किया है। किन्तु प्रेम के अबाध प्रवाह के कारण यह भाव प्राय लुप्त हो गया है। जयदेव की राधा प्रगल्भा है और कृष्ण बहुवल्लभ। वे गोपियो के साथ रमण करते हैं फिर भी राधा उन्ही को पाने के लिये विकल रहती है और वे भी राधा के विरह मे यमुना के तट पर धूल मे लोटते दीख पडते हैं। 'गीत गोविन्द के प्रारम्भ मे ही जयदेव ने अपने काव्य भाव को स्पष्ट कर दिया है—

यदि हरिस्मरणे सरसे मनो,
यदि विलास कलासु कुतुहलम।
मधुर कोमल कान्त पदावली,
शृणुतदा जयदेव सरस्वतीम।

जयदेव ने राधा कृष्ण के प्रेम मे भक्ति और शृगार की मिश्र धारा प्रवाहित की है जिसमे निश्चित ही मांसल सौन्दय और मानवी अनुभूति का वेग प्रखर है। राधा और कृष्ण की इसी मिश्र परम्परा को ग्रहण किया और अपनी प्रतिभा के बल पर अभिनव राधा कृष्ण का सजन कर साहित्य जगत को कृतार्थ कर दिया।

विद्यापति के राधा और कृष्ण इसी सुदीर्घ वेदोत्तर एवं वैष्णवी परम्परा की उपज हैं। इनमे गगन की दिव्यता और पृथ्वी की मांसलता को भाव जगत के अनुराग से कवि ने ऐसा घोल दिया है कि वे गगा यमुना मे सगम की तरह कुछ दूर तक तो दो दिखाई देते हैं किन्तु उसके बाद गगा यमुना को अलग करना सभव नही है। इसीलिये विद्यापति के कृष्ण लौकिक हैं अथवा अलौकिक, उनका प्रेम दिव्य है उनका मिलन एक महाशक्ति से उत्पन्न दो शक्तियों का f

प्रेम की प्रकृति और वेग के कारण दो रूप एक भाव हो गये हैं, यह निर्णय करना कठिन है। बस इतना ही कहा जा सकता है कि सौन्दर्य और प्रेम की अद्भुत जोड़ी पारम्परिक दिव्य मान्यताओं के होते हुए भी सामान्य जन के लिये सौन्दर्य और प्रेम के आनन्द और आह्लादक स्वरूप हैं। वे भिन्न होते हुए भी अभिन्न हैं और हृदयों की अभिन्नता का ही संकेत देते हैं।

गीति परम्परा और विद्यापति पदावली

जीवन के विराट शृंग से हर्ष और विषाद के संगीत स्रोत निरन्तर झरते रहते हैं। प्रस्फुरण के इसी तत्व को सघनतम अनुभूति के साथ ग्रहण कर प्रथम चेता ने अपनी पूर्ण तन्मयता की स्थिति में इसे भाषा का कलेवर दे छन्द विधान के सहज परिधान से सँवारा तो गीति काव्य की प्रथम रश्मि से धरा पुलकित हो उठी होगी। यही कारण है कि साहित्य और संगीत की सम्बन्ध-परंपरा अनादि काल से अनवरत प्रवाहित होती आ रही है। युग बोध के अनुकूल इसके स्वरूप और विधान में परिवर्तन अवश्य हुए हैं किन्तु इसकी आन्तरिक एकता कभी नष्ट नहीं हुई। काव्य-क्षेत्र में यह धारा दो रूपों में प्रवाहित हुई है—साहित्यिक स्वरूप और लोकरूप में। अपनी रुचि और क्षमता के अनुसार कुछ कवियों ने साहित्यिक गीति परम्परा के प्रवाह को निरन्तरता प्रदान की तो कुछ ने लोक-गीतों की परम्परा को, किन्तु कुछ महान कवि ऐसे हुए हैं जिन्होंने इन दोनों स्वरूपों को अपनी विशाल बाहुओं में समेटा है और उनके उदार हृदय से दोनों ही धाराएं विपुल वेग के साथ प्रवाहित हो विद्वत मंडली और लोक जीवन दोनों को रससिक्त किया है। विद्यापति उन महान कवियों में हैं जिन्होंने अपनी प्रतिभा और जीवन के व्यापक अनुभव से इन दोनों गीति धाराओं को अभूतपूर्व शक्ति प्रदान की है।

वैदिक युग के आचार्यों ने जो कुछ भी अनुभव किया उसे भावमय संगीत में व्यक्त किया है। उन्हीं का कथन है देवताओं का आश्रय न तो ऋग था न यजुस, देवताओं का आश्रय केवल 'सामा था' अर्थात् संगीत।

प्रार्थना करते हुए वे कामना करते हैं कि—'मुझमें संगीत हो, कविता हो, यश हो, विद्या हो।' इसी भाव से आचार्य गौड ने 'गीति काव्य को काव्य अर्द्धनारीश्वर कहा है। नाट्य शास्त्र में गीति और काव्य की अभेद स्थिति बताई गई है और कहा गया है कि कोई भी शब्द छंदहीन या छंद शब्दहीन नहीं होता। 'संगीत रत्नाकर' में तो एक गीत का नाम 'गद्य' भी है। तात्पर्य यह है कि भाषा और संगीत का सहज सम्बन्ध है, खासकर कविता की भाषा का प्राण तो राग है।

सहृदय और चेतन की यही संगीतमयी अभिव्यक्ति स्वर साधकों में संगीत, लोक जीवन में गीत और काव्य के क्षेत्र में गीति के नाम से अभिहित हुआ। काव्य चिंतन की विकासावस्था में काव्य दो धाराओं में विभक्त हो गया—विषय प्रधान (आबजेक्टिव) और व्यक्ति प्रधान (सब्जेक्टिव)। पाश्चात्य धारणा से प्रभावित कुछ विद्वान व्यक्ति प्रधान काव्य में गीति तत्व की उपस्थिति स्वीकार करते हैं, विषय प्रधान काव्य में नहीं। किंतु यह धारणा भ्रामक है। इसे व्यक्तिवादी मनोविज्ञान ने शक्ति प्रदान की है। इस धारणा के अनुसार तो सूर तुलसी जैसे महान कवियों की अधिकांश काव्य सम्पदा गीति के क्षेत्र से बहिष्कृत हो जायेगी किन्तु गीति तत्वों के आधार पर यह सम्भव नहीं है। कोई भी कविता न पूर्णतया वस्तु प्रधान होती है न व्यक्ति प्रधान। प्रो० वात्स्यायन का कथन है कि दोनों ही काव्य स्थितियों में कवि तटस्थ होता है प्रथम में उसकी तटस्थता वस्तु के प्रति होती है और द्वितीय में व्यक्ति के प्रति वस्तु प्रधान काव्यकार का 'स्व इतना विराट होता है उसमें सम्पूर्ण विश्व का स्व समा जाता है। तुलसी का 'स्वांत सुखाय' विद्यापति, सूर तथा अन्य महान कवियों के काव्य में लोक जीवन की अपरिमित व्याप्ति इस तदाकार व्यापार का अकाट्य प्रमाण है।[1] जहाँ

1 There is the poetry in which the poet goes out himself, mingles with the passion and action of the world without and deals with what he discovers there with little reference to his own individuality

—An Int to the study of Lit page 96

स्वर है वहा सगीत, जहाँ भाव है वहाँ गीति, इन्हे अलग नही किया जा सकता।

आनन्द और अश्रु की तीव्र अनुभूतियाँ जो स्फुरण के लिए विकल थीं उन्ही से गीति का जन्म हुआ। आदिकवि के हृदय से वह 'मा निषाद' बनकर फूट पडा। पन्त ने पहले वियोगी कवि के हृदय से अनजान बहते हुए उसे देखा। महादेवी जी के शब्दो मे—सम्भव है जिस प्रकार प्रभात की सुनहली रश्मियो को छूकर चिडिया आनन्द से चहक उठती है, जिस प्रकार मेघ को घुमडता हुआ देख कर मयूर नाच उठता है, उसी प्रकार मनुष्य ने भी पहले पहल अपने भावो का प्रकाशन ध्वनि और गति के द्वारा किया होगा। यूरोपीय विद्वान एच० टी० पक का भी यही मत है कि—गीति-काव्य कविता का सर्वाधिक सहज प्रकार होने के कारण निश्चित रूप से सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ। काव्य के अन्य चेष्टाजन्य रूप इसके बाद उत्पन्न हुए होंगे।

साहित्य की गीति-परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। वैदिक साहित्य मे 'ऋक' और 'गाथा' इसके दो रूप मिलते हैं। 'ऋक' देवी देवताओ की स्तुति से सम्बन्धित है और गाथा मानवीय सुचष्टाओ की अभिव्यक्ति से। सामवेद तो गीतो का आदि सरोवर है। इस सरोवर की परम्परा परवर्ती सस्कृत साहित्य मे जयदेव के पूर्व लुप्त क्यो और कैसे रही विचारणीय प्रश्न है। सभवत आभीरो के आगमन के साथ ऐहिक भावना मे लीन अन्य जातियाँ भी भारत मे आयीं। उनकी अति शृगारिक एव मासल अभिव्यक्तियो के कारण सस्कृत गीति साहित्य का पुनीत अचल उनसे छूट गया जिस पुन पकडकर सगीत की अजस्र धारा प्रवाहित करने का श्रेय जयदेव के गीत गोविन्द को मिला। बौद्धो की थेर गाथाओ मे भी गीति तत्व वर्तमान है। प्राकृत और अपभ्रश साहित्य मे भी गीतो की परम्परा अविच्छिन्न है। युद्ध और प्रेम ही इन गीतो के प्रमुख विषय हैं साथ ही इनमे बौद्धो, जनियो और नाथो की सम्प्रदाय सम्पदा भी अक्षुण है।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल चारण गीतो, जिन्हें प्रबन्ध गीतो की सज्ञा दी जा सकती है, से परिपूर्ण हैं। रासो काव्य तथा आल्ह खण्ड आदि शृगार और वीर परम्परा मे श्रेष्ठ गीति-काव्य हैं। इस युग की सान्ध्य वेला

मे मिथिला की सघन अमराइयो मे कवि कोकिल विद्यापति के गीत गूज उठे जिनकी स्वर लहरी मे समस्त उत्तर भारत आप्लावित हो गया। इन्हीं के प्रभाव से गीति साधको की साधना, भक्तो का भाव तत्व और उपासको की उपासना पद्धति बन गई। गीति काव्य की यह मिश्र धारा भक्तिकाल, रीतिकाल से प्रवाहित होती हुई आधुनिक काल मे छायावाद को अनुप्राणित करती हुई नव गीतवाद के कवियो के मानस को उद्वेलित किया। मानव हृदय म जब तक रागात्मक प्रवृत्ति जीवित रहेगी साहित्य मे गीति-काव्य की धारा निरन्तर प्रवाहित होती रहेगी।

विद्यापति के बाद तो गीतो का ऐसा स्रोत प्रवाहित हुआ कि सम्पूर्ण हिंदी साहित्य गीतो से भर उठा। कबीर, तुलसी, सूर और मीरा के पद लोकमानस मे गूजने लगे। भक्तिकाल मे रहस्य और लीला गीता की प्रधानता रही। रीतिकाल में गीति काव्य का मानक बदला। लौकिक शृगार से राज दरबार और जन जीवन की धडकनें पुलकित होने लगी। इस युग मे रीति मुक्त कवियो को छोडकर भाव प्रधान एव ममस्पर्शी गीतो का प्राय अभाव रहा। कला और प्रदशन का बोलबाला रहा। काव्य की आत्मा उपेक्षित रही। आधुनिक काल मे बदलती हुई मनो वृत्तियो, बाह्य प्रभावो के फलस्वरूप गीति काव्य का चरम विकास हुआ। कवि सम्मेलनो का युग आया और गीतिकारो को सुनने के लिए कवि मचो का विकास हुआ। किंतु स्वरलहरी की प्रधानता के कारण धीरे धीरे कविता की गुणात्मक वृत्ति घटने लगी। वतमान स्थिति म तो ऐसा लगने लगता है कि इन मचीय कवियो ने राजनीतिक बाना पहन लिया है और कविता की मूल प्राणवत्ता समाप्त होती जा रही है। वतमान काल के सिने गीतो मे भी गीति-तत्व का अच्छा विकास हुआ है और इनकी लोकप्रियता भी बढ़ी है। गद्य के युग म आज गीतों का बोलबाला है। व्यावसायिक विज्ञापन तक के लिए सुरीली तानों और प्रभावशाली गीत-टुकडो का प्रयोग हो रहा है। प्रतीत होता है कि पूर्ण चक्कर लगाकर गीतों का आदि युग प्रत्यावर्तित हो रहा है।

इन गीतो का वर्गीकरण अनेक दृष्टियों से किया जा सकता है—

1 कालक्रम की दृष्टि से—इ०डब्ल्यू० हाकिन्स ने भारतीय गीतों को

चार भागों मे विभक्त किया है—

(क) वैदिक गीत (ई० पू० आठवी शताब्दी से चौथी शताब्दी तक)।

(ख) भक्ति गीत—(ई० पू० चौथी शताब्दी से पहली शताब्दी तक)।

(ग) प्रेमगीत—मिलन और विरह की अनुभूतियो से युक्त।

(घ) मिश्र गीत आध्यात्मिक, रहस्य, शृ गारिक तथा वासनात्मक।

2 विकास की अवस्था के अनुसार—

(i) सगीत प्रधान तथा काव्य के आग्रह का अभाव।

(ii) सगीत-काव्य मे भेद और अलग अलग अस्तित्व।

(iii) विषय तथा विधान का एकीकरण कता का अभूतपूर्व विकास।

3 अभिव्यजना के आधार पर—अभिव्यजना की दृष्टि से इसके दो रूप विकसित हुए, (i) साहित्यिक गीत तथा (ii) लोकगीत। साहित्यिक गीतों म भाव भाषा शैली आदि का स्वरूप सुघड एव परिमार्जित होता है। जबकि लोकगीतो का रूप अनगढ, सरल, सहज और स्वाभाविक होता है। यह जीवन के समग्र भाव स्वफुरित अभिव्यक्ति होता है, उसमे भावना की मादता होती है, उमडन होती है और इसमे जीवन की ताजी सोधी सुगध होती है और होता है निश्छल निर्द्व द प्रवाह जबकि साहित्यिक गीतो को कला की पैनी छेनी के अनेक प्रहार सहना होता है और औप चारिक सौन्दय की सीमाओ मे सिमट कर उसे चलना होता है और कवि की सॉचाओ मे ढलना पडता है। लोकगीत उस बीहड वन और अनन्त पारावार की तरह है जहाँ अभिव्यक्ति, विराटता और मौलिकता पर कोई अकुश नही होता, जहाँ सुरूपता और कुरूपता एक ही पालने मे झूलते हैं और माँ प्रकृति उन्हें स्नेह से झुलाती है। पर साहित्यिक गीत उस आनन्द उपवन की तरह हैं जहाँ माली कवि सीमोलघन करने वाली डालियों को मान्य सुरुचि की सीमा मे बाँधने के लिए निरकुश होकर काट देता है। लोकगीत वस्तुत उस मानव सस्कृति और समाज के प्रतिनिधि हैं

जो नागरिक वातावरण और आरोपित कलात्मक साहित्यिकता से मुक्त और दूर हैं, और मूलत प्रकृति के विशाल प्रागण मे निवास करते हैं। यही कारण है कि लोकगीत किसी भी देश की जन संस्कृति, विचारधारा चिंतन पद्धति तथा जीवन शैली की जानकारी मे साहित्यिक गीतो की अपेक्षा अधिक सहायक होते हैं। लोकगीतो की श्रेष्ठता भावनाओ के सहज उद्रेक म होती है उनमे कला की कृत्रिमता नहीं होती जबकि साहित्यिक गीतों म भाव कला का श्रेष्ठ समन्वय होता है, भाषा का परिमार्जित स्वरूप होता है और काव्य विधान का प्रयत्नज अनुसरण। एक का स्वरूप ग्रामीण है प्रकृत है जबकि दूसरे का स्वरूप कलात्मक और नागर।

4 विषय के अनुसार—पाश्चात्य विद्वानो ने विषय के अनुसार गीति काव्य को निम्नलिखित रूपो मे विभक्त किया है—

1 स्तुतिपरक (Hymns)
2 नीति या उपदेशपरक (Soloman songs)
3 राष्ट्रीय (Patriotic)
4 प्रणय गीति (Love Lyries)
5 नृत्य गीति (Ballads)
6 शोक सम्ब धी (Elegy)
7 गौरव-गीति (Ode)
8 उत्सव सम्बन्धी (Convival Lyries)
9 चतुष्पदी (Sonnets)
10 सामयिक (Occasional Songs)

लोकगीतों का वर्गीकरण—डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकगीतो को —सास्कारिक, रसानुभूतिक, ऋतु प्रधान, जाति प्रधानुसार तथा श्रम या कृषि काय के आधार पर विभाजित किया है। डॉ० रामनरेश त्रिपाठी ने भारतीय लोकगीतो को सस्कार सम्ब धी, ऋतु सम्बन्धी, भिखमगो के गीत, मेला गीत जाति गीत, गीत कथायें तथा अनुभव के गीत आदि अनेक भागो म विभक्त किया है। डॉ० परमार ने भारतीय लोकगीतो को सामान्य और वैज्ञानिक दो भागो म विभक्त किया है। सामान्य मे जातियो, सस्कारों, प्रथाओ, धार्मिक विश्वासो, काय सम्बन्धो तथा रस सम्बन्धी

गीतो को उन्होंने लिया है और वैज्ञानिक मे मुक्तक, प्रबन्ध तथा ऐतिहासिक आदि गीतो को।

कहने की आवश्यकता नही कि लोकगीतो की परिधि अत्यन्त व्यापक है। वे हमारे जीवन की हर श्वास मे बसे हुए हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक के प्रत्येक सस्कार, भावना और प्रयास मे उनकी परिव्याप्ति है। समाज के रुधिर और प्राणो की उनमे गति है।

मैथिली गीतो का वर्गीकरण डॉ० तेज नारायण लाल ने जीवन के मुख्य पाँच आदर्शों के आधार पर किया है। यही वर्गीकरण विद्यापति के गीतो पर भी लागू होता है। वे आधार हैं—

1 धार्मिक—तत्र मत्र, जादू टोना, शिव, शक्ति, विष्णु की उपासना तथा नदी वृक्ष आदि प्रकृति तत्वो की उपासना से सम्बन्धित।

2 पारिवारिक—दाम्पत्य जीवन तथा जन्म से मृत्यु तक होने वाले सस्कारो से सम्बन्धित गीत।

3 राजनैतिक—उत्तम शासन व्यवस्था, राष्ट्रीय चेतना, वीरोपासना आदि से सम्बद्ध।

4 रहन सहन के आदर्श—कर्तव्य परायणता, सादा जीवन, श्रेष्ठ विचार तथा रीति-नीति आदि से सम्बद्ध।

मिथिला म लोकगीतो की प्रचलित परम्परा म जिन गीतो की प्रथा अब भी प्रचलित है उनका सक्षिप्त परिचय इस सन्दर्भ म आवश्यक है—

सस्कार सम्बन्धी गीत—सोहर या सोयर—जो जन्मोत्सव पर गाया जाता है। सोहर शब्द सूतिका का ही अपभ्रश है। इसम ललना होरिलवा आदि का टेक होता है। इन गीतो के साथ नवजात शिशु के कल्याणार्थ दवी आदि के गीतो का भी प्रचलन है। सम्मरि—यह शब्द स्वयवर का विकृत रूप है। इसमे सीता, लक्ष्मी, उमा, रुक्मिणी, राम, जगन्नाथ आदि के नामो का उल्लेख होता है। लग्न गीत—विवाह से सम्बन्धित होते हैं। योग—वर-कन्या का प्रेम सूत्र म बाँधने के लिए गाया जाता है। उचीती—भोजन के समय वर के स्वागत मे गाया जाता है। समदाउन—सवाद या सम्बोधन का स्वरूप है—बेटी के विदाई के अवसर पर इन करुण गीतो का प्रयोग होता है। तिरहुती—मिथिला के विशेष गीत हैं

जिसमे प्रेम की प्रगल्भता, सरलता और सहजता की अभिव्यक्ति होती है। मटौती—मृत्यु गीत इसमे विधवा का करुण विलाप, दीन दशा तथा मृत्यु के अवसर, शोक सवेदना के करुण प्रसग होते हैं। मिथिला मे इन गीतो की रचना कम हुई है। बटगमनी—मेला बाजार हाट या तीर्थाटन आदि पर जाते समय स्त्रियाँ इन गीतो को गाती है। इसके प्रवर्त्तक विद्यापति हैं।

इन गीतो के प्रमुख लोक कवि हैं मँगनी राम, विद्यापति, उमापति, हरिनाथ, भानुनाथ रमापति, वशीधर, चन्द्रनाथ, धँरजपति, हर्षनाथ, दुखभजन, यदुनाथ, सहस्र राम तथा बबुजन आदि।

धार्मिक गीत—धार्मिक गीतो म छठ के गीत, भगवती गीत, महेशबानी, विष्णुपद तथा नदी के गीत आते हैं। इनमे महेशबानी जिनमे शिव पार्वती के जीवन प्रसग हैं मिथिला मे बहुत प्रचलित हैं। इन गीतो के प्रमुख रचयिता हैं विद्यापति, हर्षनाथ तथा चन्दा झा इत्यादि। इन गीतो के अतिरिक्त बिसहरी, जगरनथुआ, ब्रह्म, देवास, झिझिया, गया, कालीबन्दी, डाइन चक्र झरनी तथा जादू टोना के गीत भी मिथिला मे प्रचलित हैं और वर्त्तमान वैज्ञानिक प्रगति और विकास के बावजूद भी जन जीवन का उनमें अटूट विश्वास है।

पेशो के आधार पर प्रचलित गीतो मे चाचर, जँत सार, रोपनी, खोदा पाडनी, पचौनी, दसौनी पँवरिया आदि के गीत प्रचलित हैं। ऋतुओ से सम्बन्धित फाग चैतावर, बसन्त, मधुमावनी, बरमाइत, पावस, मल्हार, साँझ, प्रभाती तथा बारहमासा आदि गीत प्रचलित हैं। सामाजिक आर्थिक आधार पर नाचारी, कोशी की बाढ अकाल प्रगतिवाद, सत्याग्रह पचायत राज, रामराज अग्रेजो की विदाई तथा अन्य जागरण गीतों का प्रचलन है। नाच के गीतो म झूमर जट्ट जट्टिन, श्यामा चकेवा, रास, नटुआ तथा विपदा के नाच गीत आदि आते हैं। अन्य गीतो के अन्तर्गत—शिशु गीत, लोरी, बिरहा, निर्गुण, कीर्तन, उदासी, ग्वालियर, नवान्ह, तुलसी उद्यापन तथा प्रबन्ध गीत—लोरिक, सलहेस, दीनाभद्री रन्नू सरदार आदि आते हैं।

स्पष्ट है कि लोकगीतो की दृष्टि से मिथिला के जन मानस की भूमि

अत्यन्त उर्वक रही है। विद्यापति के पूव से लोकगीतो की सम्पन्नता की धारा प्रवाहित थी किन्तु विद्यापति ने इस परम्परा मे अपना योगदान कर इसे सुन्दर, भावनिष्ट और कलात्मक बनाया तथा लोक भावना से सम्पन्न गीतो की एक नई धारा प्रवाहित की जो उनकी लोकप्रियता के कारण है।

सामान्यतया गीति काव्य का स्वरूप अत्यन्त व्यापक एव सूक्ष्म है। इसे परिभाषा की परिधि मे सीमित करने का काय सरल नही है। प्राचीन भारतीय साहित्य मे तो काव्य से अलग इसके अस्तित्व की कल्पना ही नही थी पर पश्चिमी प्रभाव के कारण जब से इसके अलग अस्तित्व की सभावना बनी है। तब से विद्वानो तथा कला मर्मज्ञो ने इसे परिभाषित करने का प्रयास किया है यही आकार व्यक्तिगत अनुभूति और आत्माभिव्यजना के गीति काव्य का आवश्यक तत्व मान लिया गया किन्तु परिभाषा के लिए तो समग्र दृष्टि की आवश्यकता होती है। हम कुछ विद्वानो की परिभाषाओ पर विचार कर किसी सामान्य निष्कप पर पहुँच सकते हैं—

1 गीति काव्य वह कविता है जो लायर बाजे के साथ गाई जा सके।[1]
2 गीति काव्य अचेतन की सहज अभिव्यक्ति है।[2]
3 गीति काव्य कल्पना की एक गति है जिससे ससीम की आत्मा असीम से मिलन का प्रयास करती है।[3]
4 गीति काव्य ही वास्तव मे कविता है। कृति मे जितनी ही अधिक

---

1 A poem to be sung to the Lyre—Shepley's Dictionary of world Literary form
2 Natural product of an Unconscious Art अंग्रेजी विश्वकोश—14 वाँ स०
3 The lyric—a movement of fancy by which the spirit Strives to life itself from tunited to the universal H Lonze outlines of Aesthetics, Page, 99

काव्यात्मकता होती है, उसमे गीति तत्व उतना ही अधिक होता है।[4]

5 गीति काव्य कवि जगत के सारे तत्वो को अपने मे समाहित करता है। अपने व्यक्तिगत भावो के प्रभाव से उसे पूर्णतया आत्मसात करता है और इस आत्मानुभूति को गीतात्मक शैली म अभिव्यक्त करता है।[5]

6 गीति एक लिरिकल अथवा रोमाची कविता का नाम है। वह कृति विशेष जिसके शब्द पूर्व निर्दिष्ट सगीत के अनुरूप गढे जाते हैं अथवा जो सगीत के अनुरूप बन सके।[6]

7 लिरिक अथवा गीति काव्य से प्रयोजन उन कविताओ से है जिसमें कवि ने अन्तर्वादी शैली अपनाकर अपने अन्तर्मन की भावनाओं का परिचय दिया हो।[7]

8 साधारणतया गीति व्यक्तिगत सीमा म तीव्र सुख-दुखात्मक अनुभूतियो का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता म गेय हो सके।[8]

---

4 Pure poetry is that which has essencially poetic quality is lyric poetry
Every Composition becomes in evasingly lyrical as it becomes more poetee
—Method and materials of lit Criticism Page 5

5 That lyrical poetry is really nothing more than another name for Poetry itself, that it encludes all the personal and enthusiastic part of what lives and breathes in the art of verse
—Encyclopaedia Britanica 14th Ed Article lyrical Poetry by Heagel

6 वेब्स्टर कोष—1934

7 डा॰ वी॰ शर्मा—काव्य की परख

8 श्रीमती महादेवी व[illegible]

9 श्रीमती सरोजिनी नायडू का कथन है—कवि केवल स्वप्नद्रष्टा नही होता है उसका हृदय विश्व भाव का मुकुर होता है। उसके उल्लास गीतो मे विश्वात्मा के मुखरित आनन्द की प्रतिध्वनि होती है और उसके विषाद-गीतो मे मानवता के अश्रु अभिव्यजित होते हैं।[9]

इन परिभाषाओ म गीति तत्व का सम्बन्ध क्रमश लायर बाजे, कल्पना की विश्वात्मोन्मुखी गति, काव्यात्मकता, कवि जगत के समस्त तत्व, सगीतानुरूप रोमाची कविता, अन्तमन भावनाओ की अन्तवादी शैली, सुख-दुख अभिव्यजनात्मक ध्वनि प्रधान शब्दरूप तथा कविभाव को विश्वभाव मे स्थापित किया गया है। इन परिभाषाओ मे चाल्स, हीगेल, महादेवी एव नायडू की अभिव्यक्तियो मे अपेक्षाकृत स्पष्टता तथा व्यापकता ह और इनमे गीति तत्व के लक्षणो का सकेत मिल जाता है। इनका साराश यह निकलता है कि गीतिकाव्य वह कविता है जिसमे लोक या परलोक की भावानुभूति की सघनता, अभिव्यक्ति की तरलता मे गति एव अनुकूल ध्वन्यात्मकता हो। कविता भाव म सबके भाव का अन्तर्भाव हो चाहे वह कवि की व्यक्तिगत अनुभूति हो अथवा वस्तुगत।'

व्यक्त मतो एव विचार-मथन के फलस्वरूप गीति-काव्य के तीन प्रमुख तत्व निर्धारित होते हैं—(क) ध्वनि तत्व, (ख) बिम्ब अथवा अभिव्यक्ति तत्व तथा (ग) रस अथवा रागात्मक अनुभूति तत्व। इन्ही तत्वो के आधार पर विद्यापति के गीतो की समीक्षा अपेक्षित है। उनके गीतो मे इन तत्वो का कहाँ तक समावेश है और उन्हें कितनी सफलता मिली है, यही प्रतिपाद्य है।

---

9 'A poet is not only a dreamer of dreams, his heart is the mirror of the world's emotions, his songs of gladness are the echoes of the world's laughter, his song of sorrow reflect the tears of humanity'

—Sarojine Naidu Quoted by Rambriksh Benipuri Vidypati प० 96

(ख) बाजत द्रिगि द्रिगि धोद्रिम द्रिमिया ।
नटति कलावति भाति श्याम सग, कर करताल प्रबधक ध्वनिया ।।
डम डम डफ डिमिक डिम मादल, रुनु-झुनु मजिर बोल ।
किंकिन रन रनि बलआ कनकनि, निधुवन रास तुमुल उतरोल ।।
बीन रबाब मुरज स्वर मडल, सारिगम पधनिसा बहुविधि भाव ।
घटिता घटिता धुनि मृदग गरजनि, चचल स्वर मडल करु राव ।।
स्रम भर गलित लुलित कबरी युत मालति माल विथारल मोति ।
समय बसन्त रास रस वर्णन, विद्यापति मति छोभित होति ।।
(—रास, बसन्त 184)

उदधृत पक्तियो मे स्वर का प्रवाह तथा शब्दो की ध्वनि अनुपम है। यह सौन्दय रीतिकालीन कवियो की तरह शब्दो की सचेष्ट कसरत मात्र नहीं है। लय एव नाद सौन्दय के पीछे भावाभिव्यक्ति और अभिव्यजना का भी सुन्दर समावेश है। नन्दकनन्दन मे कृष्ण की आनन्द विधायिनी मूर्ति है तो साथ ही प्रतीक्षा की घडियो मे धडकता हुआ उत्सुक एव भीरु हृदय भी। द्वितीय पद मे लय के साथ अलकार की छटा है तो ततीय पद मे नायक का सौन्दय और चतुथ पद मे बसन्त का नवल स्वरूप।

नाद सौन्दय की दृष्टि से देवी वन्दना का गीत अत्यन्त भव्य है। शब्दो मे नाद का सौन्दय, क्रुद्ध काली का रौद्र रूप और साथी विरोधी रसों का अनुपम समन्वय है। दूसरा गीत तो सभवत साहित्य मे अपने जोड का अकेला होगा। गीत, नृत्य और सहयोगी वाद्यो का समवेत स्वर शब्दो के प्रयोग मात्र से उपस्थित कर देना विद्यापति की ही कला की विशेषता है। इसे यदि सस्वर पढा जाय तो नत्य, गीत और वाद्य का सामूहिक आर्केस्ट्रा बजने सा लगता है।

विद्यापति शब्दो के चयन मे इतने पटु थे कि इनके गीतो का प्रत्येक शब्द वाछित प्रभाव डालता है। भाव भाषा और गीति की मानो यौवन-चोली और दामन का सम्बन्ध हो। प्रेम के मनोहर स्वप्नो की भाँति पद विन्यास मनोहर और मधुर है। वातावरण एव भाव के अनुकूल ही गीतो का छन्द एव शब्द विधान है। मनोदशा के अनुकूल सगीत की लहरियाँ विद्यापति के इशारे पर थिरकती प्रतीत होती हैं। पदावली के सभी पद

राग रागिनियों की कसौटी पर खरे उतरते हैं। राजा शिवसिंह के दरबार म कलाव त नामक गायक इन गीतों की स्वर साधना करता था और उन्हें रागों म ढाल कर दरबार मे सुनाया करता था। डा० सुभद्र झा ने अपने 'विद्यापति गीत सग्रह' मे रागों के अनुसार पदों का सपादन किया है और उनकी सूची भी प्रस्तुत की है मालव राग—1 से 56 पद सख्या तक, धनछी 57 से 130 तक, असावरी 131 से 135 तक, मलाकी 136 146 तक, सामरी 147, अहिरानी-148 154 तक, केदार 155-157 तक, कानडा 158-162 तक, कोला-163-194 तक, सारगी 196-202 तक तथा गूजरी-203 से 207 तक। इसके अतिरिक्त बस त, विभास, नाट राग, ललित, उरली आदि का भी सकेत है।

गीति काव्य का दूसरा मुख्य तत्व है बिम्ब। कवि अनजान विधायक होता है। भाषा-भाव और अलकारों की सहज योजना से वह एक नवीन सृष्टि करता है। वह अपनी सूक्ष्म एव सजग कल्पना के माध्यम से पाठक के मानस पटल पर एक ऐसा सजीव भाव चित्र प्रस्तुत करता है कि उस भाव का बिम्बात्मक स्वरूप पाठक के हृदय मे घर कर जाता है। भाव की यह बिम्बात्मकता या अनुभूति की साकारता ही काव्य शिल्प की चरम उपलब्धि है। विद्यापति मे इस उपलब्धि के दो रूप मिलते हैं—रूपचित्रण तथा भावविम्बन। रूपचित्रण मे वातावरण पकृति अथवा मूत सौन्दय की साकार अभिव्यक्ति मिलती है और भाव चित्रण मे प्रेम प्रसग की मिलन एव विरह सम्बन्धी अनेक अनुभूतिया जो नायक नायिका की परिस्थिति-जन्य मनोदशाओं का उद्घाटन करती हैं। यथा—

वातावरण—क—'निसि निसिचर मय भीम भुअगम, जलधर बिजुरि अँजोर।'

इस पद म भादो की भयानक रात्रि का अनुपम चित्र है। भयानक काली रात निशिचरों का आवागमन, विषधरों का पैर मे लिपट जाना। बादलों की गडगडाहट बिजली की चमक, उफनती हुई नदी का प्रवाह और ऊपर स घनघोर वर्षा। ऐसी भयानक रात मे भी कृष्णाभिसारिका अभिसार के लिए सकेत स्थल पर जा रही है। भित्ति पर अकित सप को भी देखकर डरने वाली नायिका सप की मणि को हाथ से ढक लेती है, विघ्न-बाधाओं

की परवाह नहीं करती—कितनी आसक्ति है, कैसा अटूट प्रेम है, कैसी भयकर मिलनोत्कठा है, कैसी वासना है और कितना साहस है? वस्तुत वातावरण एव मनोवृत्ति के चित्र का विद्यापति का यह पद अनूठा है।

दूसरा पद देखिये—'मानिनि आब उचित नहि मान।' इस पद में पूर्णिमा और भ्रमर विलास का चित्र है। 'जूडि रमनि चकमक करि चानन' —शीतल रात्रि, च द्रमा की चमकती हुई चाँदनी, 'रभसि रभसि अलि विलसि विलसि कर'—उसपर भ्रमरो का उ मुक्त विहार—इस प्रकार के मादक और उद्दीप्त वातावरण मे सोया हुआ कामदेव भी जागने को विवश हो जाता है। भला ऐसे वातावरण मे मानिनी का मान कैसे टिक सकता है? सखी का यह वचन 'आव उचित नाही मान'। कितना सार्थक है। विद्यापति की पदावली मे ऐसे अनेक पद हैं जो मनोदशा के अनुकूल वातावरण के सजन मे समथ हैं, जैसे नायक नायिका की मनादशाओ, बसन्त तथा रास आदि के पद।

2 **रूप चित्रण**—(क) अम्बर विघटु अकामिक कामिनि करे कुच झाँपि सुछन्दा।

(ख) सुधा मुखि के बिहि निरमल बाला।

(ग) कामिनि करए सनाने, हेरतहि हृदय हने पचबाने।

इन पदो मे नारी सौन्दर्य का अति आकपक चित्र अकित है। 'क' मे नायिका का अचल वक्ष से खिसक जाता है, लाजवश शीघ्रता मे वह उसे अपने हाथों से ढक लेती है। देखिये इसमे नारी के हाव भाव तथा सहज चेष्टाओं का कैसा सु दर चित्र है। 'ख' में नायिका के नख शिख का परम्परित कि तु मौलिक उद्भावनाओ से युक्त मनोहारी वणन है। नाभि से उरोजो की ओर जाती हुई रोमावलि रूपी सर्पिणी का नि श्वास मलय के लोभ में ऊपर चढना और नासिका रूपी गरुण के भय से कुच गिरि के सधि स्थल मे छिप जाना कितना सकारण एव यथाथ चित्र है। ग' मे सद्य-स्नाता का गीला सौन्दय कितना मादक है? वस्त्रो का अगो म वियोग क भय स चिपक जाना और अश्रु-वर्षा करना, मुख रूपी शशि के डर स केश

जाने से रोकने के लिये हाथों को पलट कर वक्षस्थल पर रखना, सचमुच ही नूतन सौंदर्य की सृष्टि करता है। पदावली तो इस प्रकार के सौन्दर्य रत्नो की अद्भुत खान है। वय सन्धि की अवस्था से लेकर यौवन के पूर्ण विराम तक नारी-पुरुष सम्बन्धी ऐसा कोई सौंदर्य-चित्रण नहीं है जो विद्यापति की काव्य-तूलिका से अछूता रह गया हो। विद्यापति के काव्य का रूप और भाव जगत नि सन्देह साहित्य मे अप्रतिभ है।

रसात्मक अनुभूति रीति काव्य का तृतीय प्रमुख तत्व है। भाव अमूर्त होता है। प्रतिक्रिया, प्रभाव, परिणाम और अनुभाव के द्वारा ही वह मूर्त बनता है। भाव की प्रवणता ही रीति काव्य का प्राण है। कवि अपनी सान्द्र अनुभूति को प्रकट करने के लिये विकल हो उठता है। इसी विकलता का ज्वार उसकी कविता मे पात्रो के माध्यम से फूट पड़ता है। विद्यापति का यह ज्वार राधा कृष्ण तथा अपने आश्रयदाता राजा-रानियों की पात्रता म प्रस्फुटित हुआ है। इसमे नारी पात्रों का स्थान ही प्रमुख है। भावदशा के अनेक सुखद एव दुखपूर्ण प्रसगो मे विशेषकर शृगार तथा अन्य रसो का उद्रेक हुआ है। शृगार के उभय पक्षों का विद्यापति के काव्य मे उन्मत्त प्रवाह है जिसमे भक्तो और रसिको दोनों की नौकायें डगमगा कर डूबने लगती हैं।

प्रिय से प्रथम मिलन के लिए जाती हुई स्वकीया का चित्र देखिये— 'सुन्दरि चलिलहु पहु घर ना, जइतहु लाज परम डरना' भय मिश्रित सकोच के अवगुंठन मे उत्कण्ठा का यह चित्र अनुपम है। 'ससन परस खसि आँचर रे, चलि धनि देह दवामा के स्पर्श से प्रिया का आँचल खिसक गया और बिजली की तरह येष्टि छवि चमक उठी। मिलन प्रसग का यह अनूठा चित्र रसिकों के हृदय का हार है। 'कर सुन्दरि न कर व्याज'—म कृष्णाभिसारिका के मनोभावों का मूर्त रूप चित्रित हुआ है। गुरुजनों की दृष्टि बचाकर बार बार पश्चिम दिशा की ओर देखना, नेत्र बन्द कर घर म अकारण आना-जाना तथा अनायास ही रह रह कर मुसकुरा उठना आदि व्यापारों म सूर्यास्त की आतुरता म प्रतीक्षा, मिलनोत्कण्ठा, अँधेरे म चलने का अभ्यास या स्मृति म मिलन सुख की अनुभूति आदि प्रकट होती
।

वियोग पक्ष मे भी ये पंक्तियाँ विद्यापति के वियोग शृंगार वर्णन-कला की परिचायिका हैं—'कुसुमित कानन हेरि कमलमुखी'—में विरह-विदग्धा राधा अत्यन्त क्षीण हो गई है। धरती का सहारा लेकर उठती है, उठ नहीं पाती। कातर दृष्टि से सखियों के सहारा की अपेक्षा करती है। चन्द्रमा को लज्जित कर देने वाला मुख शशि की धूमिल रेखा मात्र बनकर रह गया है। 'लोचन नीर तटनि निरमान'—मे अश्रुओ से उसने नदी का निर्माण कर दिया है और उसी में निमग्न हो गई है। 'सखि मोर पिया, अबहु न आवल कुलिस हिया' अवधि के दिनो की गणना करते करते नाखून घिस गये किन्तु कुलिस हृदय पिया अब तक नही आया। इन पंक्तियो मे केवल राधा का वियोगिनी रूप ही नही, बल्कि बिम्ब रूप मे उनके विरह पूर्व समृद्ध यौवन और मरण आशंका भी व्यक्त होती है।

कहने की आवश्यकता नही कि विद्यापति के गीतो में भाव तत्व का उन्मुक्त प्रवाह है। यहाँ कोई बाधा नहीं। यही कारण है कि विद्यापति के गीतों का स्रोत अजस्र है, उनकी अभिव्यक्ति अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। हिन्दी साहित्य में घनानन्द भावों के उत्कृष्ट कवि माने जाते हैं, विद्यापति में भी अनुभूति की सान्द्रता और तीव्रता कम नही है। घनानन्द के नायक नायिका के बीच मिलन प्रसंग में 'हार पहार' सा प्रतीत होता है किन्तु विद्यापति में तो रोमांच ही पहाड सा प्रतीत होता है। स्पष्ट है कि गीति काव्य के सभी तत्वो का व्यापक एवं अनुभूति प्रधान उपयोग विद्यापति के काव्य में हुआ है। उनके काव्य की ध्वनि संपदा अद्भुत है रसानुभूति अत्यन्त सान्द्र और सघन है, उसमे तन्मयता का अनुपम योग है और बिम्ब चित्रण के लिये तो यह प्रचलित उक्ति ही पर्याप्त है—'सब ढक साहत नहो, उघरे हात कुवम, अधढक छवि ल्स है, कवि अच्छर कुच केश।' वस्तुत विद्यापति साहित्य जगत मे गीतो के सम्राट हैं।

विद्यापति के काव्य मे लोकगीत—विद्यापति पदावली साहित्यिक या कलात्मक गीतो का ही अजस्र स्रोत नही है बल्कि वह लोकगीता का भी अक्षय भण्डार है। मिथिला में लोक गीतो की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है फिर भी विद्यापति लोक गीतो के जन्मदाता और उन्नायक दोना हैं। इनके पूर्व लोक गीतों का प्रचलन अवश्य था किन्तु उन्हे व्यापकता और

साहित्यिक गरिमा प्रदान करने का श्रेय विद्यापति को ही है। यदि विद्यापति को लोक गीतो का सम्राट कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी।

लोक गीतो के स्वभाव के सम्बन्ध मे फ्रासिस बी० गूमर का कथन अत्यन्त सटीक है—लोक गीतो का महत्व केवल इसी बात मे नही है कि उनमे अकृत्रिम काव्य भावना उपलब्ध होती है। वे परम्परा की भाषा मे ही अपनी अभिव्यक्ति नही करते बल्कि जन समूह की वाणी द्वारा उसका प्रकाशन करते हैं। उनमे किसी प्रकार की गोपनीयता नही होती। जो वस्तु जसी है उसका यथातथ्य वर्णन होता है। वे स्वतन्त्र हैं तथा खुली हवा की भांति ताजे हैं। वायु और सूय का प्रकाश उनमे क्रीडा करता है।[1]

डॉ० गूमर के कथन मे लोक गीत के तत्व सन्निहित हैं। लोक गीत के प्रमुख तत्व हैं—स्वाभाविक अभिव्यजना, स्वतन्त्र अभिव्यक्ति, अकुश विहीन चित्रण शास्त्रीय बन्धनो से मुक्ति तथा सूय के प्रकाश और वायु की तरह स्फूर्ति और उल्लास। विद्यापति के लोक गीत इन सभी तत्वो से ओत प्रोत हैं। उनके गीत लोक जीवन की व्यापक अनुभूति से स्फुटित हैं तथा लोक जीवन के आदश भावनाओ के पोषक और जीवन पथ के पाथेय हैं। सभी वर्गों धर्मों, सप्रदायो के लोगो की इनमे सामान्य रुचि है और पर्याप्त आदर भी।

मिथिला मे प्रचलित लोक गीतो का परिचय दिया जा चुका है। विद्यापति के लोक गीतो मे विशेष प्रचलित हैं—महेशबानी, नाचारी,

1 The abiding value of the ballad is that they give a hint of premitive and unspoiled poetic sensation They speak not only in the language of tradition but also with voice of multitude There is nothing Subtle in their working and they appeal to the things as they are From one voice & modern literature they are free They are fresh with the open air Wind and sun shire play through them

डॉ० देशराज भाटी—विद्यापति पदावली पृ० 103

उचीती, योग, बटगमनी तथा वसन्त आदि। ये लोक गीत लोक हृदय के स्पन्दन बन गये हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं—(रामवृक्ष बनीपुरी पदावली से)

1 कुज भवन से निकसलि रे रोकल गिरधारी।
एकहि नगर बसि माधव रे जनि कर बटमारी। (पद०स० 59)

2 नाव डोलाव अहीरे, जीवइतन पाओब तीरे, खरनीरे लो।
(प० स० 61)

3 सुन्दरि चलिलहु पहुँ घरना, जइतहु लागु परम डर ना।
(प०स० 72)

4 सामरि हे भामर तोरि देह। (प०स० 91)

ये कुछ ऐसे मनोहारी गीत हैं जो साहित्यिक वैभव से भी सम्पन्न हैं और उनकी आत्मा मे लोक गीतों के गुण निवास करते हैं। इनमे प्रथम मे कृष्ण की प्रेममयी छेड छाड, दूसरे मे हाथ पकडकर खरधार वाली यमुना को पार कराने का मधुर आग्रह, तीसरे म कोहबर जाते समय नव वधू को सखियो का सम्बोधन और चौथे मे मिलन के पश्चात नायिका की अस्त व्यस्त वेश भूषा और सूखे हुए गात की ओर सकेत है। साहित्यिक कलेवर मे लिपटे लोक गीतो की आत्मा की पहचान रसिक समुदाय कर सकता है।

विशुद्ध अथवा खाँटी लोक गीतो के भी कुछ उदाहरण लिये जा सकते हैं—

1 मोरा रे अँगनवा चनन केर गछिया, ता चढि कुररए काग रे।
(प०स० 222)

2 के पतिया लेए जाएत रे, मोरा पियतम पास। (प०स० 203)

3 फुटल कुसुम नव कुज कुटिर बन, कोकिल पचम गाव रे।
(प०स० 201)

4 कौतुक चललि भवन कए सजनिगे
सग दस चौदसि नारी। (प०स० 73)

5 पियर मोर बालक हम तरुनी। (प०स० 263)

इन लोक गीतो मे लोक जीवन अपनी पूर्ण गरिमा और वैभव के साथ

साकार हो उठा है। 'प्रेम लपेटे अटपटे' बचनों स टपकती हुई माधुरी देखने योग्य है। नायिका आगन मे च दन गाँठ पर बोलते हुए कागा की बोली सन परम्परा के अनुरूप प्रिय आगमन की आशा से प्रसन्न होती है और संदेश वाहक, कौए को कटोरे मे दूध भात देने और उसके चोंच को सोने से मढ़ाने का वायदा करती है, यदि उसके प्रियतम आ जाएँ। दूसरे गीत में वियोगिनी प्रियतम को पाती भेजने के लिए लालायित दिखती है। तीसरे गीत मे बसन्त का आगमन है और चौथे म सखियाँ चाँचर गाती हैं। पाँचवें गीत म लोक प्रचलित बालविवाह की वेदना है—तरुणी अपने बालक पति के कारण पश्चाताप कर रही है। इन गीतों मे लोक जीवन की अदभुत झाँकी है जो कवि की चेतना को लोक जीवन से जोडती है।

विद्यापति के कुछ गीत तो अपन व्यापक प्रभाव के कारण लोकोक्ति का रूप ग्रहण कर लिये हैं। यथा मित्र मजूमदार—पदावली से

1 जाइल ब्राह्मण तेजए सनान, जाइल मानिनि तेजए मान। (प०स० 215)

2 आरति गाहक महँग बेसाह। (प०स० 6)

3 अपन बचन अपने निरवाह। (प०स० 7)

4 कूप न आवे पथिक क पास। (प०स० 134)

ये उक्तियाँ कवि के मानव प्रकृति ज्ञान, लोक व्यवहार तथा लोक जीवन के विविध प्रसगों के ज्ञान की साक्षी हैं। ऐसी उक्तियों से विद्यापति की पदावली भरी पडी हैं।

कवि के भक्ति सम्बन्धी गीतों, महेशबानियों, नाचारियों और स्तुतियों का भी धर्म प्राण मिथिला निवासियों मे व्यापक प्रचार है। ये गीत यहाँ की धार्मिक प्रवृत्ति वाली उदार जनता के प्राणों के स्पन्दन हैं और गले का हार। उदाहरणार्थ—रामवृक्ष बेनीपुरी—पदावली स—

1 महेश बानी—करथन हरब दुख मोर हे भोला नाथ। (प०स० 243)

2 नाचारी—आज नाथ माहि यत एक सुख लागत हो। (प०स० 24-)

3 स्तुति—(क) विदिता देवी विदिता हो, अविरल केस सोहन्ति।
(प०स० 229)
(ख) जय जय शकर जय त्रिपुरारि।
जय अध पुरुष जयति अधनार (प०स० 231)
(ग) बड सुख सार पाओल तुअ तीरे।(प०स० 250)
4 भक्ति वैराग्य—तातल सैकत वारि वि दु सम, सुतवित रमनि ममाज। (प०स० 254)

विद्यापति के इन गीतो का मिथिला पर कितना व्यापक प्रभाव है इसका अन्दाज श्री राम खेलावन पाण्डेय के इस कथन से लगाया जा सकता है—'कोई मिथिला मे जाकर तमाशा देखे। एक शिव-पुजारी डमरू हाथ मे लिये त्रिपुण्ड रमाये जिस प्रकार—'करबन हरब दुख मोर हे भोला नाथ' गाते-गाते तन्मय हो जाता है, उसी प्रकार नव वधू को कोहबर म ले जाती हुई कलकंठी कामिनियाँ 'सुन्दरि चललिहु पहुँ घरना' नव वर वधू के हृदयो को एक अव्यक्त आनन्द स्रोत मे डुबो देती हैं। जिस प्रकार एक नवयुवक 'ससन परस खमु अम्बर रे 'देखिल धनि देह' पढता हुआ एक मधुर कल्पना से रोमाचित हो उठता है उसी प्रकार एक वद्ध 'तातल सैकत वारि विन्दुसम सुतवित रमनि समाज तथा 'माधव हम परिनाम निराशा गाता हुआ अपनी धूमिल नयनो से शत शत अश्रु बिन्दु गिराने लगता है।' ग्रियर्सन महोदय ने भी स्पष्ट कहा है कि विद्यापति पदावली के गीतो की लोकप्रियता कमनाशा नदी से लेकर नेपाल तक उसी प्रकार है—जैसे उत्तर भारत मे तुलसी का रामचरितमानस अथवा इसाई जगत म बाइबिल के उपदेश।

सच है इन गीतो मे आबाल वृद्ध, नर नारी सभी के हृदयो को भाव-विभोर कर देने की अद्भुत क्षमता है। जनमानस के जीवन पर विद्यापति के इन गीतों का अखण्ड साम्राज्य है और विद्यापति उनके एकमात्र अधिपति हैं। निसदेह विद्यापति के साहित्यिक एव लोक गीत हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। यह गीति सपदा विश्व साहित्य के किसी भी समृद्ध भाषा के गीतो के साथ गौरव पूर्वक खडी हो सकती है और गर्व-पूर्वक कह सकती है कि हम हिन्दी के आदिकवि मैथिल कोकिल विद्यापति

की काकली हैं।

गीतों की सापेक्षिक श्रेष्ठता—गीतों के सम्राट जयदेव की रचना 'गीत-गोबिन्द' अपनी कोमल कान्त पदावली के लिये साहित्य में अपने किस्म का अनोखा माना जाता है। विद्यापति इन्हीं से सर्वाधिक प्रभावित भी हैं किन्तु कुछ क्षेत्रों में वे जयदेव से आगे हैं—जयदेव में एक ओर जहाँ वर्णन का विशेष आग्रह है, वहाँ विद्यापति में रागात्मक आवेश की अभिव्यक्ति। अतः विद्यापति के गीत गीतिकाव्य के अधिक समीप हैं।

हिन्दी के क्षेत्र में कबीर में भावों की तीव्रता और अभिव्यक्ति की अखण्डता तो अवश्य है किन्तु सहज साहित्यिकता का अभाव है, वे समाज सुधारक पहले थे कवि बाद में। तुलसी के गीति-काव्य में भावुकता, हृदय की विशालता और सूक्ष्म दृष्टि के होते हुए भी, उनमें दर्शन, नीति और नैतिकता का भार है। सूर के गीत कवि की सूक्ष्म दृष्टि भावुकता और चित्रमयता के कारण अत्यन्त सरस हैं किन्तु उनमें प्रत्यक्ष अनुभूति का अभाव है। मीरा के उद्गारों में निश्छलता, एकनिष्ठता, प्रेम की पीर और मिलन की उत्कंठा है और आत्म विस्मृति भी किन्तु भाषा का अनगढ़पन गीतों के सहज प्रवाह में बाधक है रीतिकालीन कवियों में रीति मुक्त कवियों को छोड़कर कला का आग्रह इतना अधिक है कि उनके गीत चमत्कारों के अधिक निकट हैं। गुप्तजी ने भी गीति शैली अपनाई है किन्तु उनकी प्रतिभा अपेक्षाकृत प्रबन्धात्मक और वर्णनात्मक है। प्रसाद के गीतों में भावात्मकता, चित्रमयता और संगीतात्मकता तो है किन्तु छायावादी शैली के कारण वे सहज बोधगम्य नहीं हैं। महादेवी जी के गीत आँसू से गीले तो अवश्य हैं किन्तु छायावादी शैली और गहरी रहस्यात्मक वृत्ति और प्रतीकों की गूढ़ता के कारण उनके सीधे सामान्य हृदय पर चोट करने की क्षमता नहीं है। बच्चन, नीरज नरेन्द्र शर्मा आदि के गीत भी प्रभावशाली हैं अपने युग की निधि हैं किन्तु उनकी लोकप्रियता स्वर संधान के साथ अनुबन्धित है। सिने गीतों में भी साहित्यिक तथा लोक गीतों का पुट मिलता है किन्तु इनका प्रभाव पानी पर खिंचे लकीर की तरह क्षणिक है। ये अधिकांशतः परिस्थितिजन्य प्रभावोत्पादकता और सस्ती लोकप्रियता के गुलाम हैं। किन्तु विद्यापति के गीत लोक एवं साहित्य दोनों ही निकषों

पर खरे उतरते हैं। इनमे ध्वनि, अभिव्यक्ति, रस, लोक भाव एव सहजता तदाकार हो गये हैं। यदि जयदेव गीतो के सम्राट हैं तो विद्यापति अभिनव जयदेव। जयदेव के गीतो को गाते-गाते जैसे चैतन्य महाप्रभु तन्मय होकर नाचने लगते थे वसे ही विद्यापति के गीत तिरहुतवासियों को तन्मय कर देते हैं। विद्यापति के गीतो को विश्वसाहित्य के गीतो की प्रथम पक्ति मे आदर और गव के साथ स्थान दिया जा सकता है।

विद्यापति की भक्ति-भावना का स्वरूप

भक्ति की व्याख्या—भक्ति के मूल मे भय, क्रिया मे आसक्ति और फल मे आनन्द है और जगत तथा जीवन दोनो के मूल मे काम है।[1] गीता के तीसरे अध्याय मे कहा गया है 'स्थूल भूतों मे निर्मित शरीर से इन्द्रियाँ परे हैं इन्द्रियो से परे मन, मन से परे बुद्धि और बुद्धि से परे काम है।' जो जिसका पूर्वज है, जनक है वह अपनी सतति मे आश्रय पाता है। काम भी सबका मूल होकर सब मे समाया हुआ है, सर्वत्र व्याप्त है। इसी परिव्याप्ति के कारण इसका प्रभविष्णु रूप प्रकट होता है।

काम को ईक्षण कहते हैं प्रकृति के सम्पर्क मे आते ही यह काम बन जाता है जो मन तक पहुँच कर तीन रूप धारण कर लेता है—जानने की इच्छा 'मनीषा' कहलाती है, सवेदन क्षेत्र मे इसे 'जूति' और क्रिया क्षेत्र में 'व्रत' कहते हैं। इन तीनो का एकीकरण बुद्धि मे होता है। काम की प्रशसा म मनु लिखते हैं—'वेद का ज्ञान और वैदिक कर्म योग का अनुष्ठान कामना के योग्य है। काम समस्त सकल्पो का मूल है।' कविवर प्रसाद के शब्दो म—'काम का मूल रूप मगण मण्डित और श्रेयस्कर है किन्तु जगत प्रपच मे पडकर काम के प्रिय और अप्रिय दो रूप हो जाते हैं।' इसलिए मनुष्य यदि आनन्द चाहता है तो उसे मन को बाह्य जाल से निकाल कर परमात्मा मे केन्द्रित करना होगा क्योकि वही आनन्द का धाम है और यही कामना का ऊर्जस्वीकरण।

1 कामस्तदग्रे समवर्ताधि मनसोरेत प्रथम यदासीत। ऋक् 8 7 87 (नारदीय सूत्र)।

भारतीय मनीषियों ने इस समस्या का निराकरण ज्ञान, कर्म और भक्ति के साधनों के द्वारा किया है। ज्ञान से जानना, कर्म से प्राप्त करने का प्रयास करना और भक्ति से उसमें लीन हो जाने का सुयोग मिलता है। आचार्य सोम के शब्दों में—'साधनों का साधन, अवलम्बों का अवलंबन, आश्रयों का आश्रय एक मात्र आनन्द स्वरूप ईश्वर है। इसी के साथ रहना, इसी के गुण गाना, इसी में तल्लीन और मग्न होकर विचरण करना आनन्द है। यही भक्ति मार्ग है।'[1]

काम मनोविज्ञान के क्षेत्र में भाव कहलाता है। रचना क्रम में परमात्मा से भाव, भाव से ज्ञान तथा कर्म प्रकट होते हैं। विलीनीकरण में यही क्रम पलट जाता है। भक्त अपनी चित्तवृत्तियों को नाम रूप के सहारे भाव में और भाव के सहारे परमात्मा में लीन कर देता है। इसी भाव पद्धति का दूसरा नाम भक्ति योग है। कोषों के आधार पर भी यही क्रम सिद्ध होता है—अन्नमय कोष प्राणमय कोष में, प्राणमय कोष मनोमय-कोष में, मनोमय कोष विज्ञान कोष में और विज्ञान कोष आत्म तत्व में लीन हो जाता है। इसी को श्रद्धा या भक्ति भावना कहते हैं।

भक्ति का सौन्दर्य से अटूट सम्बन्ध है। परमात्मा परम सुन्दर ही उसकी रचना में भी सौन्दर्य है। उस सौन्दर्य को हम अपने मन मुकुर के अनुकूल ग्रहण कर पाते हैं इसलिए वास्तविक सौन्दर्य को प्राप्त करने के लिए हमें अपने मन मुकुर को ज्ञान से माँजना पड़ता है। प्लेटो ने श्रेष्ठता क्रम में चार प्रकार के ज्ञान का उल्लेख किया है—आभास ज्ञान, कल्पना ज्ञान, विचार ज्ञान तथा तत्व ज्ञान। इनमें प्रथम तीन साध्य हैं और अंतिम साधन निरपेक्ष। कठोपनिषद् में भी इसी प्रकार के ज्ञान का उल्लेख है—'साधारण मनुष्य मन के दर्पण के अनुसार जैसा वह आभासित होता है सत्य के स्वरूप को देखता है, आदर्शवादी व्यक्ति उसे अपनी कल्पना के अनुरूप देखता है, गंधर्व या कलाकार की कोटि में आनेवाला मनुष्य उसे जल में पड़ती हुई परछाइं के रूप में देखता है और तत्व ज्ञानी उसे तत्व,

---

1 डॉ० मुंशीराम शर्मा 'सोम'—भक्ति का विकास, पृ० 72

वस्तु या साक्षात् रूप में देखता है।"[1]

सौन्दय को विद्वानों ने आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ दो रूपो में देखने का प्रयास किया है किन्तु आत्म विस्तार के साथ यह भेद समाप्त हो जाता है और सम्पूर्ण जगत के साथ सौन्दय का तदाकार हो जाता है जिसे ब्रह्म का सौन्दर्य कहते हैं। वह सौन्दर्य है तो पारावार की तरह किन्तु कवि या भक्त अपनी सीमा म बिन्दु मे सौन्दय देखने का अभ्यासी होता है इसलिए उसी सौन्दर्य को हम अपनी पात्रता या पात्र के अनुसार देखते हैं। यही भक्त या कवि के अन्त करण की पुकार होती है। सुन्दर ही उसके लिए सत्य है और सत्य ही सुदर।[2] इस प्रकार पितरो का आदशवाद, कलाकारो की सौन्दर्योपासना और तत्व ज्ञानियो का अन्तिम सत्य—तीनों अपने अतीव निमल रूप को लेकर भक्ति मे समन्वित हो जाते हैं।

भक्ति के कुछ अग भी होते हैं—गीता के अनुसार मनुष्य श्रद्धा का ही बना हुआ है, वह जिसमे श्रद्धा रखता है वैसा ही बन जाता है। डॉ० सोम के अनुसार—भक्ति के रूप हैं—श्रद्धा, त्याग, यज्ञानुष्ठान, व्यवहार, वैयक्तिक विकास तथा पूण पवित्रता एव समरसता की अवस्था। जिस प्रकार शृग से बहती हुई जलधारा सागरसे मिलकर परम सुख का अनुभव करती है, उसी प्रकार जीव भी ब्रह्म से अलग होकर नाना योनि जगत व्याधियो को झेलता हुआ भक्ति माग से पूण पवित्रता और समरसता की स्थिति मे पहुँचता है तो उसे परम शाति मिलती है और वह परमानन्द की अनुभूति करता है।

नन्ददास ने दस प्रकारकी तथा गोस्वामी तुलसीदास ने सबरी प्रसग मे नौ प्रकारकी भक्ति का उल्लेख राम मुख से करवाया है, सतो का सग राम

---

1 यथाऽऽदर्शे तथात्मनि, यथा स्वप्ने तथा पितलोके।
यथा इप्सु परीव ददृशे, तथा गन्धर्व लोके छाया तपयोरिव।
—(कठोपनिषद, तीसरी वल्ली श्लोक, 5)

2 Beauty is truth and Truth, beauty
That is all we know and we aught to know
—John—Keats

कथा मे रति, गुरु पद सेवा, राम गुणगान, मन्त्राजाप, सांसारिक कर्मों से विरक्ति, सम्पूर्ण ससार को राम रूप मे देखना, यथालाभ सन्तोष, छल-विहीन होकर ईश्वर मे दृढ विश्वास। इन नौ मे से एक भक्ति भी जिसके पास हो वह प्रभु को अत्य त प्रिय होता है। इनके अतिरिक्त दास्य और सखा भक्ति की भी चर्चा की गई है। वस्तुत भक्ति तो घी का लड्डू है टेढा हो या सीधा। 'प्रेम लपेटे अटपटे' केवट की भक्ति इसका सबसे सुदर प्रमाण है। भक्ति के अनेक प्रकारो मे पाँच गुणा का समावेश होने के कारण मधुरा भक्ति को सवश्रेष्ठ माना गया है।

भक्ति के चार फल बताये गये हैं—स्वाधीनता, पवित्रता, विश्व बन्धुत्व और प्रभु प्राप्ति। मानव को ही वह सुविधा प्राप्त है कि वह नीचे भी गिर सकता है और ऊपर भी उठ सकता है इसीलिए उसका जीवन सघष सकुल है। अधो मुख होने से उसका पतन होता है, ऊ वमुख होने से उसकी प्रगति होती है। पराधीनताज य इस विनास से बचने के लिए एक ही उपाय है कि मनुष्य अपने उच्चतर ससार अवस्थित प्रभु के सामने आत्मसमपण कर दे। ईश्वर सेवा ही वास्तविक भक्ति है और मुक्ति का माग है।

भारतीय साहित्य मे ईश्वर और जीव सम्ब ध के दोनो रूप मिलते हैं। कहीं भक्त पति है तो भगवान पत्नी, या भक्त पत्नी है तो भगवान पति। कबीर और जायसी इसके उदाहरण हैं। वात्सल्य सम्ब ध का रूप मे हि दी साहित्य म मिलता है—सूर तो वात्सल्य के सागर ही कहे गए हैं। रूप चाहे जो भी हो कि तु दोनों का समतुल्य आकषण ही उसे पवित्र और प्रभावशाली बनाता है जैसा उदू के शायर ने कहा है—

उल्फत का मजा तब है जब दोनो हो बेकरार,
दोनो तरफ हो आग, बराबर लगी हुई॥

वष्णव धम की अपनी विशेषता भक्ति भावना ही है। यही भावना उसे अ य धर्मों से अलग करती है। गौडीय वैष्णव समाज और ब्रज-वष्णव समाज दानो ही भक्ति की महत्ता, आवश्यकता और श्रेष्ठता की मुक्त कठ स प्रशसा करते हैं और उस ज्ञान की अपेक्षा श्रेष्ठ बताते हैं जिसका पोषण सगुणोपासक कवियो ने अपने काव्य स किया है।

विद्यापति की भक्ति भावना—विद्यापति मूलत कवि थे। सन्दायी साधु नहीं। कवि की भाँति उनका हृदय उदार और विशाल था। यही कारण है कि उनके काव्य मे तत्कालीन समस्त सम्प्रदायो की झलक मिल जाती है जिसके कारण आलोचक भ्रम मे पडकर उन्हें सम्प्रदाय की सीमा रेखाओ मे घेरने का प्रयास करने लगते हैं। किन्तु उन्हें किसी सम्प्रदाय क झण्डे के नीचे खडा करना उनके साथ न्याय नहीं होगा। कवि तो मधु सग्रही की भाँति सभी पुष्पो का सार सचयन कर सुधाकोष को सजन करता है। फूल विशेष की अनुरक्ति मे वह बन्दी नहीं होता।

विद्यापति की भक्ति भावना या सम्प्रदाय पर विचार करते समय साहित्य ममज्ञ एव आलोचक रस्किन के एक कथन की याद आती है—'शेक्सपियर मिल्टन की अपेक्षा कहीं ऊँचे कवि हैं, अत उनके धार्मिक सिद्धान्त अधिक सुगमता से समझ मे आ जाते हैं। शेक्सपियर उस ऊँचाई से बोलता था कि वहाँ धार्मिक मतो को विभाजित करने वाली दीवारें छोटी मालूम पडती थीं अथवा वहाँ से वे रेखायें दिखाई ही नहीं पडती थी जो एक मत को दूसरे मत से विभाजित करती हैं। विद्यापति भी हम ऐसी ही ऊँचाई से बोलते प्रतीत होते हैं और इसलिए उनके काव्य मे शैव, वैष्णव, शाक्त आदि मतो को विभाजित करनेवाली रेखायें या तो दिखाई ही नहीं पडती और यदि दिखाई भी पडती हैं तो अत्यन्त अस्पष्ट एव धुधली।'[1]

स्पष्ट सीमा रखा के अभाव मे विद्वानो ने विद्यापति को अपनी रुचि, आदर्श उपलब्ध ज्ञान धारणा एव प्रमाणो के आधार पर वष्णव, पच दवोपासक, एकश्वरवादी, शाक्त तथा शैव आदि अनेक रूपो मे देखा है। और अपने मत को उचित सिद्ध करने का प्रयास किया है। किसी सवमान्य निणय पर पहुँचना या विद्यापति को एक ही सम्प्रदाय सीमा के अन्दर बाँध देना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव भी है क्योकि जो सत्य है न ही उसे तर्कों मे अस्तित्व मे नहीं लाया जा सकता कहा भी गया है कि तक से सत्य के सिवा सब कुछ पाया जा सकता है।

---

[1] विद्यापति वैभव—डा० गुणानन्द जुमाल, प० 20

वैष्णव—विद्यापति को वैष्णव मानने वालो मे डॉ० ग्रियसन, बाबू ब्रजनंदन सहाय, डॉ० श्यामसुन्दर दास, प्रो० विपिन विहारी मजूमदार एव डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि के नाम उल्लेख्य हैं। ग्रियसन के अनुसार विद्यापति के सभी पद प्रार्थनायें या भजन हैं और ईसाइयों में जैसे सालमन के गीत गाये जाते हैं उसी प्रकार श्रद्धा के साथ मिथिला मे विद्यापति के गीत हिन्दू भक्तो द्वारा गाये जाते हैं। बाबू ब्रजनन्दन सहाय तो इन्हे वैष्णव कवि चूडामणि कहते हैं। डॉ० श्यामसुन्दर दास विद्यापति को वैष्णव आचार्य निम्बार्क और विष्णु स्वामी से प्रभावित मानते हैं। राधा कृष्ण का यह रूप विद्यापति को इन्हीं आचार्यों स मिला है। प्रो० मजूमदार इन्हें वैष्णव इसलिए मानते हैं कि उन्होने अपने हाथ से भागवत पुराण जो वैष्णव भक्ति का मूलाधार है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि—'जो लोग विद्यापति के बारे मे कहा करते हैं कि वे शैव थे अतएव वैष्णव भक्त नही हो सकते, वे इस काल की उस मन स्थिति को नही जानते। समूचा उत्तर भारत प्रधान रूप से स्मार्त था, शिव के प्रति उसकी अखण्ड भक्ति बनी हुई थी, किन्तु उसमे अपूर्व सहनशीलता का विकास हुआ था और विष्णु को भी वह उतना ही महत्वपूर्ण देवता मानता था। शिव सिद्धिदाता थे और विष्णु भक्ति के आश्रय।[1] धन हरि धन हर धन तव कला, खन पीत बसन खनहि मृग छाला' गीत इसी मिश्र रूप का साक्षी है।

पदावली के माधव सम्बोधित कुछ पद तथा चैतन्य महाप्रभु के द्वारा विद्यापति के गीतो का गाकर मुर्च्छित हो जाना आदि प्रसग विद्यापति को वैष्णव सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। बगाल म अति प्रचलित सहजिया सम्प्रदाय के लोग इन्हें 'सातवां रसिक भक्त' मानते हैं और विद्यापति की महानता का आधार वे इसी वैष्णव भक्ति को मानते हैं। इनके अनुसार स्त्री प्रेम ही ईश्वर प्रेम है और विद्यापति के पदो मे स्त्री प्रेम का सागोपांग वर्णन है। इस सम्बन्ध मे एक और बात ध्यान देने योग्य है—डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी विद्यापति के गीतों पर कर्नाट प्रभाव भी मानते हैं

1 डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी—साहित्य का आदि काल, पृ० 39

जो मिथिला के राजा नान्य देव के साथ यहाँ आया। अत सम्भव है कि यह वैष्णव भावना दक्षिण से रामानन्द के पूर्व ही मिथिला में आ गई हो। 'भक्ति द्राविण उपजी लाये रामानन्द' की बात तो सर्वमान्य है ही।

गौडीय वैष्णव परम्परा मे रागानुगा—मधुरा भक्ति को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है जिसमे शृंगार भाव, राधा भाव या गोपी भाव को मधुरतम माना गया है क्योंकि इसमे हृदय के साथ शरीर—समर्पण की भी व्यवस्था है। इस दृष्टि से विद्यापति पदावली मे अंकित प्रेम विधान इसी परम्परा के अन्तर्गत आता है। पदावली मे विद्यापति ने जो प्रारम्भ मे ही राधा कृष्ण की वन्दना की है उसमें सख्य भाव का मधुर रूप ही व्यक्त होता है। वन्दना मे वर्णित कृष्ण का स्वरूप राधा के प्रेम मे अनुरक्त और विह्वल है। राधा सौन्दर्य की खान है। कवि की अभिलाषा उनके चरणों को गोद मे अगोर कर रखने की होती है, उन चरणो पर शीश रख कर भक्ति भाव से लोटने की नहीं, इस प्रसग मे विशेष रूप से ध्यातव्य है। विद्यापति के हृदय की भक्ति भावना जो दुर्गा या गगा की स्तुति मे पायी जाती है—वह इसमे कहाँ है?

वैष्णव पक्ष मे दिये गये तथ्यो मे केवल डॉ० श्यामसुदर दास के मत मे ऐतिहासिक भूल प्रतीत होती है पर अन्य तर्कों मे आंशिक सत्य का अभाव नही है। किन्तु इनके आधार पर विद्यापति को निरपेक्ष रूप से वैष्णव कहना तो सत्य को अस्वीकार करना होगा किन्तु पदावली से निःसृत वैष्णव भावना को अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता है। पर स्मरण रखना होगा कि यह भावना कवि की स्वीकृत साहित्यिक परम्परा है जो जयदेव से अभिनय जयदेव को मिली थी और उसमे कवि आस्था के अनुकूल सामयिक धारायें भी समायी हुई हैं।

तत्रवाद और सहजवाद का प्रभाव भी ... मे देखने योग्य है।
तन्त्र ग्रथो के अनुसार तन्त्र ... ग्रह ... करता है।
आत्मा देश और काल ... के इसी
रूप को देश काल से सी... है
के रस से उसे ... । ८ ९

भागवत सम्प्रदाय पर भी पड़ा। राधा और गोपियों के रूप में तन्त्र शास्त्र का उक्त अंग भी इसमें सुलभ हो गया और उत्तर काल में राधा का स्थान कृष्ण से भी बढ़कर हो गया। वैष्णवों ने राधा और कृष्ण के रूप में शक्ति-उपासना को ग्रहण करके उसे एक शुद्ध मर्यादा के भीतर कर दिया। तन्त्र साधना में स्त्री अनुष्ठान का साधन मात्र थी वैष्णव मत में वह परम-पुरुष को पूर्ण करने वाली समझी जाने लगी। तन्त्र की परकीया एक यान्त्रिक साधना थी किन्तु वैष्णव परकीया प्रेम का साधन थी। स्वकीया में परकीया का स्थान ऊँचा है क्योंकि उसमें प्रेम का वेग सहज और तीव्र रहता है। यह वेग विद्यापति के राधा कृष्ण में भी कितना अधिक है, पाठक या आलोचक से छिपा हुआ नहीं है।

पंचदेवोपासक के रूप में—इस विचार के प्रमुख पोषक हैं महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री। ये इन्हें क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर के पंच देवताओं—शिव, विष्णु, सूर्य, गणेश तथा दुर्गा के उपासक मानते हैं। कीर्तिलता के कपिल तन्त्र में शास्त्री जी ने लिखा है—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्च महेश्वरो

वायो सूर्य क्षितेरी शो जीवनस्य गणाधिप।

तदनुसार पंचदेवों की उपासना ही ब्रह्म की उपासना है। किन्तु सूर्य और गणेश की उपासना विद्यापति में कहीं भी नहीं मिलती। अन्य तीन देवों की उपासना विद्यापति ने मिथिला में प्रचलन के आधार पर किया है। अतः इन्हें पंचदेवोपासक कहना ठीक नहीं।

एकेश्वरवादी के रूप में—प्रो० जनार्दन मिश्र इन्हें एकेश्वरवादी मानते हैं। इनका कथन है कि—'हिन्दू देवी देवताओं के यथार्थ रूप से परिचित होने के कारण किसी विशेष रूप की ओर उनका भेदभाव या पक्षपात नहीं था। उसी भाव में इन्होंने शंकर और विष्णु के मिश्र रूप का और मातृ रूप में ब्रह्म का वर्णन किया है—'भल हर भल हरि भल तुअ कला तथा विदिता देवी विदिता हो अविरल केश सोहन्ति' शिव, विष्णु और दुर्गा की स्तुतियाँ के प्रमाण हैं।'

मिश्रजी के अनुसार 'विशुद्ध वैदिक धर्म का सच्चा स्वरूप यहाँ सदैव वर्तमान रहा है। इसमें सम्प्रदाय या फिरका कभी पैदा नहीं हुआ। यहीं

कारण है कि मिथिला समाज म देव देवियों के भेद से किसी प्रकार की कटटरता का प्रचार नही हुआ। यह मनोवृत्ति मिथिलावासियो के स्वभाव का अग बन गई है।

शाक्त के रूप मे—प० भागवत शुक्ल पयोद ने विद्यापति को शाक्त सिद्ध करने का प्रयास किया है। इनका तक है कि 'पुरुष-परीक्षा' के मगलाचरण मे शक्ति को शिव की पूज्या, विष्णु की ध्येया और ब्रह्मा की प्रणम्या बताया है।[1] वन्दना के पदो में दुर्गा के प्रति कवि की अपारनिष्ठा प्रकट होती है। उ होने—'हरि विरचि—महेश शेखर चुम्ब्य मान पदे' आदि कहकर दुर्गा का स्तवन किया है। मिथिला के विद्वानों मे शाक्त होने की प्राचीन परम्परा है। अत विद्यापति का शाक्त होना अत्यन्त स्वाभाविक प्रतीत होता है। उन्होने गाया भी है —'जय शिव शकर जय त्रिपुरारि, जय अधपुरुष जयति अधनार।'

शैव के रूप मे —विद्यापति को शैव मानने वालों मे रामवक्ष बेनीपुरी, प० शिवनन्दन ठाकुर और आचाय रामचद्र शुक्ल का नाम प्रमुख है। बेनीपुरी जी के तर्क इस सम्ब ध मे निम्नलिखित हैं —

1 शिव की उपासना से पुत्र रत्न की प्राप्ति, ऐसी जनश्रुति है।

2 इनका एक पद शिव के प्रति अटूट निष्ठा को व्यक्त करता है—

आन चान गन हरि कमलासन सब परि हरि हम देवा।
भक्त बछल प्रभु बान महेसर, जानि कएलि तुअ सेवा।

कोई चन्द्र की पूजा करता है कोई विष्णु की किन्तु मैंने सबको छोड कर हे बान महेश्वर भक्तवत्सल जानकर तुम्हारी ही सेवा की है। ये बाणेश्वर महादेव बिसपी से उत्तर मेहवा नामक ग्राम मे आज भी वतमान हैं।

3 इनके रचे शिव गीत, महेशबानी और नाचारियों का प्रचलन बहुत अधिक है। तीर्थस्थानों को जाते हुए स्त्री पुरुषों के कठ से इनके गीत प्रवाहित होकर जन मानस को भाव-विभोर करते हैं।

---

1 माधुरी 1936—पयोद का लेख—शीषक विद्यापति का निजी मत या सम्प्रदाय।

4 स्वय महादेव जी इनकी भक्ति पर मुग्ध थे। 'उगना' नाम से इनके यहाँ सेवक के रूप मे वे काम करते थे। निजन स्थान मे गगा जल पाकर जब विद्यापति ने बहुत आग्रह किया तो उगना के रूप मे महादेव ने कहा—'देखो तुम मेरे पूर्ण भक्त हो, मैं तुम से अलग नही रहना चाहता, किन्तु प्रतिज्ञा करो कि यह भेद तुम किसी से भी प्रकट नही करोगे।' किंतु एक दिन जब इनकी पत्नी ने इन पर जलती हुई लकडी से प्रहार किया तो विद्यापति बोल उठे, 'अरे साक्षात शिव पर प्रहार' उगना गायब हो गया और विद्यापति पागल होकर गाने लगे—'उगना रे मोर कतए गेला, कतए गेला शिव की दहु भेला।'

प० शिवनन्दन ठाकुर के प्रमाण इस सन्दर्भ मे निम्नलिखित हैं—उगना की किंवदन्ति, बाण महेश्वर की स्थापना, पूवजो का शैव होना, कवि की चिता पर शिव मन्दिर की स्थापना, आश्रयदाता राजाओ का शैव होना, पुरुष परीक्षा मे रत्नागद से शिवोपासना की प्रतिज्ञा कराना, महेश बानियो और नाचारियो का प्रचलन तथा कवि का गौरी-शकर को अपना इष्टदव मानना—"लोढब कुसुम तोड़ब बेलपात, पुजब सदा शिव गौरीक सात।"

दुर्गा, गगा और शिव की उपासना मे जैसी अनुरक्ति, तल्लीनता और एकात्म भाव कवि के पदो मे मिलता है वैसी अनुरक्ति तथा भाव अन्य देवी-देवताओं के प्रति लिखे पदो मे नही है। अत शिव के प्रति कवि की निष्ठा अपेक्षाकृत अधिक प्रतीत होती है। कवि का व्यक्तिगत निष्ठा और उपासना मे शैव होना अधिक तकसगत प्रतीत होता है किन्तु उनका शैव होना उनकी सकीणता नही। जिस प्रकार तुलसी परम राम भक्त थे किन्तु शिवोपासना मे भी उनकी रुचि थी। इतना ही नही उन्होंने तो लोक दृष्टि से राम और शिव भक्ति का समन्वय किया 'शिव द्रोही मम दास कहावे, सो नर सपनेहु मोहि न भावे' उन्होने अपने इष्टदेव राम के मुख से कहलाया है। इसी प्रकार विद्यापति भी शिव के परम भक्त थे, दुर्गा और गगा की भक्ति तो शिव के साथ अविच्छिन्न रूप से जुडी हुई है, किन्तु विष्णु के प्रति भी वे उदासीन नही थे। लोक कवि के रूप मे उन्होंने भी सभी धार्मिक मान्यताओ का समाहार किया है। वस्तुत उन्होंने साहित्य परपरा

मे वैष्णव विचारधारा को ही राधा कृष्ण के मधुमती भूमिका वाले रूप को ग्रहण किया था और बीच बीच मे प्राय भावो और उपमानों आदि में जो शिव का विशिष्ट रूप प्राप्त हो जाता है, वह उनकी व्यक्तिगतनिष्ठा का भाव हिलोर है। आचाय द्विवेदी का यह कथन नितात सत्य प्रतीत होता है कि—शिवसिद्धि दाता थे और विष्णु भक्ति का आश्रय। इस सम्ब ध मे आचाय विश्वनाथ प्रसाद का मत भी दृष्टव्य है 'विद्यापति शव थे पर इ होने वैष्णव और शाक्त सम्प्रदायो के प्रति अनुदारता का परिचय नही दिया। प्रत्युत भक्ति के जिस उ मेष मे उ होने शिव की स्तुति की है उसी उ मेष मे शक्ति और विष्णु की।' रामवृक्ष बेनीपुरी का भी ऐसा ही अभिमत है—आधुनिक मथिलो की तरह ये शिव, विष्णु और चण्डी तीनो को मानते थे। मथिलो के सिर पर लगे तिलक से यह बात और स्पष्ट हो जायेगी—वे एक ही साथ भस्म, त्रिपुड श्रीखण्ड चदन और सिंदूर बिंदु धारण करते हैं। तीनो देवताओ की य निशानियाँ हैं। ये तीनो को समान आदर की दृष्टि स देखते थे पर किसी एक सम्प्रदाय के नही थे।

विद्यापति के व्यापक व्यक्तित्व, समन्वयकारी प्रतिभा, उदार धार्मिक भावना और लोक सग्रही कवि स्वरूप को देखते हुए उ हें किसी सम्प्रदाय विशेष की परिवृत्त म घेरा नही जा सकता। धार्मिक आस्था के साथ कल्पना क सरस लोक में विहार करने वाले विद्यापति प्रेम और सौंदय के अनुभव सिद्ध कवि हैं। सभी धर्मों के विचारों के सारभूत सत्य को ग्रहण करते हुए वे किसी के भी अधभक्त नही थे। यही है उनके उदार भक्ति भावना की विशेषता। वे साहित्य परम्परा मे गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय के निकट हैं और व्यक्तिगत धमनिष्ठा मे परम शैव।

निष्कर्ष रूप म प० शिव प्रसाद सिंह के सटीक वक्तव्य का उल्लेख किया जा सकता है—'विद्यापति का व्यक्तित्व नाना प्रकार की विरोधी भावनाओं का स्तबक है। इस व्यक्तित्व मे इस प्रकार का परस्पर विरोध सम्भवत उस युग का परिणाम है जिसमे विभिन्न प्रकार की देशी विदेशी विचारधारायें सघषरत थी। विद्यापति वस्तुत सक्रमण काल के कवि हैं। वे दरबारी होते हुए भी जनकवि हैं, शृगारिक होते हुए भी भक्त हैं, शैव, शाक्त, वैष्णव सब कुछ होते हुए भी धमनिरपेक्ष हैं, सरकारी ब्राह्मण का

में उत्पन्न होने पर भी विवेक सन्त्रस्त या मर्यादावादी नहीं हैं।'[1]

वस्तुत विद्यापति प्रमुख धर्मी कवि हैं और इनके व्यापक कवि व्यक्तित्व मे धम समा गया है, सम्प्रदाय तो प्राय लुप्त से हो गए हैं। इनके काव्य के अछोर जलधि मे भक्ति भावना की विभिन्न लहरियो का सौदय और आकषण तो देखा जा सकता है किंतु उनके प्रति आग्रही वत्ति कहीं नहीं है। उनके स्थिर अस्तित्व की व्याख्या भी नहीं की जा सकती है। तुलसी के 'स्वान्त सुखाय' की तरह 'नाना पुराण निगमागम' और लोक रुचि तथा लोक प्रचलन विद्यापति के व्यापक कवि स्व मे समा कर काव्य की सरस धार मे रूपातरित हो गया है। अत वे धम अथवा सम्प्रदाय के घेरे मे नहीं हैं—धम और सम्प्रदाय उनमे आत्मसात हो गए हैं।

1 शिव प्रसाद सिंह—विद्यापति, पृ० 4

विद्यापति के काव्य में प्रेम तथा सौन्दर्य विधान

ईश्वर को सत्य, सौंदय और प्रेम का स्वरूप माना गया है। अखिल विश्व भी ईश्वर के इन्हीं गुणों की अभिव्यक्ति है। यही कारण है कि प्रेम और सौंदर्य की दो धारायें प्रवाहित होती हैं दिव्य एव लौकिक जो अनुभूत तो हैं पर अनिवचनीय हैं। नेत्रो, कपोलो और मस्तक की भाषा की तरह इनकी भाषा भी शब्द रहित है। सरदार पूर्णसिंह ने जो बात 'आचरण की सभ्यता' के लिए कही है वह प्रेम और सौंदर्य के लिए भी सत्य है—'न काला न नीला, न पीला, न सफेद, न पूर्वी, न पश्चिमी, न उत्तरी, न दक्षिणी, वे निशान, बे मकान विशाल आत्मा के आचरण से मौन रूपिणी सुगन्धि सदा प्रसारित हुआ करती है। इसके मौन से प्रसूत प्रेम, सौंदय, पवित्रता, धम तथा सारे जगत का कल्याण कर विस्तत होते हैं। इसकी उपस्थिति से मन और हृदय की ऋतु बदल जाती है। तीक्ष्ण गर्मी से जले भुने व्यक्ति आचरण के बादलो की बूदा बूदी से शीतल हो जाते हैं। मानसोत्पन्न शरद ऋतु से क्लेशातुर प्राणी इसकी सुगन्धमय सरस बसन्त ऋतु के आनन्द का पान करते हैं।

सौंदय सहज होता है कृत्रिम नहीं। यह रूपात्मक भी होता है और गुणात्मक भी। दिव्य भी होता है और मानवीय भी। प्रकति का विशाल प्रांगण तो सौंदय के विविध रूपो का भडार है। इसकी विशेषता को घनानन्द के शब्दों मे ही व्यक्त किया जा सकता है—जेते निहारिये नेरे ह्वै नैननि तेते खरी निकसे वा निकाई।'

गधहीन प्रेम की जय मनायी जाती है। उनकी दृष्टि मे कृष्ण के साथ प्रम प्रेम है और अ य के साथ काम। जो कुछ भी हो प्रेम हृदय का रागात्मक सबध है जो दो हृदयो को जोड़ता है और आन द की सृष्टि करता है और प्रेम का कारण होता है सौंदय। प्रेम और सौन्य काव्य के मुख्य वण्य हैं जो रसराज शृगार की ज्योत्सना के अक्षय उत्स हैं।

साहित्य मे प्रेम के स्वरूप का विकास—साहित्य के प्रवाह मे प्रम सौदय के विकास का इतिहास अत्य त मनोरजक है। ऋग्वेद म यह दो रूपों मे मिलता है यम-यमी से सवाद मे, जिसमे यमी अपने भाई से प्रणय का निवेदन करती है तथा उवशी और पुरुरवा के सवाद म। प्रथम मुक्त यौन सबध की सबलता की गाथा है और द्वितीय विवाहोपरा त प्रणय सम्ब ध का सु दर चित्र। इसके बाद रूप, गुण और धम पर आधारित प्रम वाल्मीकि रामायण मे मिलता है, राम और सीता क प्रसग मे। महाभारत काल म प्रेम का स्वरूप पलट गया है और प्राचीन आदश धूल चाटत दीख रहे हैं। पेम को भाव एव कल्पना लोक म ले जाने का श्रेय महाकवि कालिदास और भवभूति को है। पाँचवें प्रकरण मे आते आते प्रेम खेत खलिहान और प्रकृति की गोद मे उतर आया है और गाँव की गँवार तथा अल्हड़ युवतियो का शृगार करने लगा है। स्वकीया के स्थान पर परकीया प्रम को महत्व दिया जाने लगा है। यह आभीर सस्कृति की देन थी।

बारहवी शताब्दी क साहित्य मे प्रेम क एक छत्र सम्राट जयदेव का प्रादुर्भाव हुआ। भक्ति और शृगार की मिश्र धारा जयदेव की इस घोषणा के साथ बह चली—

यदि हरि स्मरणे सरसमनो यदि विलास कलासु कुतूहलम
मधुर कोमल का त पदावली, शृणु तद जयदव सरस्वतीम।

वज्रयानी सिद्धो के वामाचार ने इसके लिए पृष्ठभूमि तैयार कर रखी थी। वज्र शब्द लिंग का प्रतीक है। वज्रयानी सिद्धो द्वारा धर्म का झीना आवरण डालकर कामाचार का खुला प्रचार किया जा रहा था।' वज्रयान, सहजिया और कौल साधना के दुराचार से रक्षा करने के लिए भागवतकार ने गोपी-कृष्ण प्रेम का चित्रण कर प्रेम और सौन्य को वासना सागर म डूबने से बचाने का प्रयास किया था। किन्तु परवर्ती कवि अपनी

शृंगार प्रियता के कारण उसे ले डूब। जयदेव के सबध मे श्री जे० सी० घोष का यह कथन विचारणीय है—'जयदेव के 'गीत गोविंद' को भारतीय गीतो का गीत कहा गया है। कृष्ण-राधा के प्रेम विहार का चित्रण इसमे ऐसी उद्दाम मासलता के साथ किया गया है जिसकी बराबरी करने वाली दूसरी रचना दुनिया मे शायद ही मिले। फिर भी यह एक जीण गुलाब है अपने सौरभ के अति से जीर्ण।' विद्यापति ने अपने गीतो के लिए जयदेव स सीधा प्रभाव ग्रहण किया किन्तु उन्होने मासल सौंदर्य के साथ वैष्णव भाव का मिश्रण कर उसे जीण हान से बचा लिया।

विद्यापति के काव्य मे प्रेम विधान—प्रेम परमात्मा का स्वरूप और मानव जीवन का सार है। इसकी चरम परिणति शृगार मे होती है। शृगार को त्रिभुवन सार कहा गया है। इस 'त्रिभुवन सार' के परम मर्मी कवि हैं सहृदय शिरोमणि, मथिल कोकिल, अभिनव जयदेव विद्यापति। उनके काव्य मे प्रेम और सौंदर्य का अदभुत सगम है। इनके गीतो मे सुषमा का भाल प्रेम के सौभाग्य चिह्न से अरुणिम हो उठा है। विद्यापति की पदावली तो प्रेम की अदभुत पोथी है। जिस ढाई आखर को पढकर कबीर पडित हो गए उसी ढाई आखर ने जयदेव को अभिनव जयदव बना दिया। पदावली के अक्षर अक्षर से सहृदय आस्वाद्य प्रेम रस की बूदें ऐसी टपकती हैं जैस वसन्त की बौरायी आम्र मजरियो से सुरभि-सीकर। पदावलियेतर रचनाओ मे कथा वृन्त पर लटकते हुए प्रेम और सौदय के ओस कण मणि मालाओ की तरह सुशोभित होती हैं।

विद्यापति के काव्य मे वर्णित प्रेम के तीन स्वरूप हैं—स्वकीया प्रेम, परकीया प्रेम तथा सामान्या या गणिका प्रेम। स्वकीया प्रेम में दाम्पत्य जीवन की मर्यादाओ से अभिमडित वैवाहिक जीवन का मनोरम चित्र है। प्रेम के इसी स्वरूप को विद्यापति ने आदश रूप मे स्वीकार किया है और उसकी प्रतिष्ठा की है। परकीया प्रेम जिसमे नायक बहुवल्लभ होता है और अनेक रमणियो के साथ रमण करता है। इस प्रकार का चित्र विलास और भोग का चित्र है। इस चित्र पर राधा कृष्ण के नाम का झीना सा परदा है पर कही कही तो यह परदा भी लुप्तप्राय है। सामान्या या गणिका के प्रेम का चित्रण विद्यापति ने बहुत अधिक तो नही किया है। जौनपुर

की वेश्याओं का चित्रण करते समय यह चित्र अधिक मांसल और सजीव हो उठा है।

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि विद्यापति स्वकीया प्रेम को श्रेष्ठ मानते थे तो अन्य प्रकार के प्रेम का चित्रण क्यों किया। कवि भारतीय संस्कृति में पले मर्यादावादी ब्राह्मण था। अतः स्वकीया प्रेम तो उसका धर्म था और उसकी श्रेष्ठता उसकी अंतरात्मा की आवाज। किंतु कवि मनोभव जगत का विचरणशील प्राणी होता है। उसके कण कण से उसका परिचय होता है अतः कवि-कर्म के नाते उसने प्रेम के सभी स्वरूपों का चित्र उपस्थित किया है। इसके अभाव में समाज का दर्पण अधूरा चित्र ही दे पाता। तथापि मर्यादा की स्थापना के लिए उसने स्थान-स्थान पर इस प्रकार के प्रेम की भर्त्सना की है और आदर्श दाम्पत्य, सामाजिक मर्यादा तथा मनोवैज्ञानिक सत्यों की प्रतिष्ठा की है।

पदावली तो प्रेम और सौंदय का तीर्थ धाम है ही कवि ने पुरुष परीक्षा कीर्तिलता, कीर्तिपताका और गोरक्ष विजय नाटक में भी प्रेम का चित्रण किया है। 'पुरुष परीक्षा' के काम प्रकरण में अनुकूल, दक्षिण तथा धस्मर नायक और उनके प्रेम की कहानी है। इसमें धर्म शृंगार की प्रतिष्ठा है और राम सीता के प्रेम की भूरि भूरि प्रशंसा की गई है। दक्षिण नायक लक्ष्मण सेन अपनी पत्नी रत्नप्रभा को लक्ष्मी मानते हुए भी बहुवल्लभ हैं। वे अन्य रमणियों को पान फूल मानते हैं। धस्मर नायक हैं काशीश्वर जयचन्द। इस कथा में स्त्री के वश में रहने वाले नायक की दुर्गति का चित्र है। इस प्रकार कीर्तिलता में प्रेम के ये तीनों स्वरूप चित्रित हुए हैं जिनसे स्वकीया प्रेम की श्रेष्ठता का स्वर मुखरित होता है।

वीर काव्य कीर्तिलता में 'जोनापुर नगर की वारवनिताओं का चित्रण है। राजमार्ग पर अपार जन समूह और दोनों तरफ बैठी हुई वणिक कामिनियाँ। भीड़ इतनी अधिक है कि धक्के के कारण स्त्रियों की चूड़ियाँ फूट जाती हैं और वेश्याओं का पीन पयोधरों में टकराकर संन्यासी भी अपना संयम खो बैठते हैं। यहाँ के पुरुष भी अत्यन्त रसिक हैं। जोनापुर रूप का बाजार प्रतीत होता है जहाँ मध्या और प्रौढ़ा तो हैं ही मुग्धा भी चोरी चोरी प्यार करना सीख रही हैं। कीर्तिपताका के पंद्रह पृष्ठों में कवि

ने घोर मर्यादा रहित मुक्त कामाचार का वर्णन किया है और इस वणन के औचित्य के लिए राम और कृष्ण को भी इसमे घसीटा है। कवि का कथन है कि त्रेता मे राम और सीता के मर्यादापूर्ण जीवन को कारण विलास-भोग के सुख से वचित रहना पडा। इसी सुख को प्राप्त करने के लिए उन्हे द्वापर मे रसिक शिरोमणि कृष्ण के रूप मे अवतरित होना पडा। गोरक्ष विजय म कुछ शृगार-प्रसगो की चर्चा है जिससे कवि के शृगार सबधी दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। सासारिक सुखो की सारहीनता ही 'गोरक्ष विजय' का सदेश है।

इस प्रकार विद्यापति ने पुरुष-परीक्षा मे धर्म शृगार का पोषण किया है। कीर्तिलता मे जौनापुर के यौवन का रसमय चित्र उपस्थित किया है, कीर्तिपताका मे उत्तान शृगार का मर्यादा रहित चित्र है और गोरक्ष विजय मे रमणी विलास शृगार की वीभत्सता को प्रस्तुत करते हुए ससार सुख भोग की असारता पर प्रकाश डालते हुए गोरखनाथ के शब्दो म जागरण और चेतना का सदेश दिया है।

विद्यापति-पदावली तो प्रेम की पोथी है। इसमे वर्णित प्रेम का स्वरूप कवि के ही शब्दों मे—

> सपहुँ सुनारि सिनेह, चाँद कुमुद समरेह।
> दिवसे दिवसे धरि-जोति, सोना मेलावलि मोति।

यह सुपुरुष और सुनारि का प्रेम है। चन्द्रमा और कुमुद इस प्रेम के आदश हैं। इस आदश प्रेम मे पवित्रता, गभीरता, सजीवता, एकरूपता और पारस्परिकता भाव स्वत मुखर हो उठा। सच्चा प्रेम नित्य प्रति बढता जाता है। जिस प्रकार स्वर्णाभूषण मे मोतियो के जडने से सौदय की अभिवृद्धि हो जाती है उसी प्रकार स्त्री पुरुष का पारस्परिक प्रेम तन्मयता और पवित्रता के योग मे परस्पर उसके जीवन मे श्री और सुख की सम्पदा बिखेरता रहता है। यह परस्पर आत्म समर्पणकारी एव लिप्त प्रेम ही विद्यापति की पदावली का आदश है।

पदावली मे प्रेम चित्रण के प्रमुख माध्यम चार हैं—(क) राधा कृष्ण का नायक नायिका स्वरूप जिसमे वैष्णव साहित्यिक परम्परा के प्रेम का निरूपण हुआ है। किन्तु इन पदो मे राधा-कृष्ण नाम का भीमा ।

है जिससे भीतर से भक्ति कम और शृगार अधिक झाकता हुआ प्रतीत होता है। (ख) शिवसिंह, लखिमा देवी तथा अन्य राजा रानियो आदि से सबधित पद जिनमे इनके मनोरजन के लिए भोग विलास और सौन्दर्य के चित्र हैं। (ग) सामान्य नायक-नायिका के प्रेम गीत। इन गीतो मे राधा कृष्ण या किसी राजा रानी के नाम नही है। ये गीत विद्यापति के हृदय के स्वतत्र उदगार हैं जो यौवन और शृगार के प्रवाह से अनुप्राणित है। (घ) शकर पार्वती और अन्य देवी-देवताओ से सबधित पद। इन गीतों में भक्ति भावना, हास्य, मनोरजन तथा शिव के पारिवारिक जीवन की सरस आत्मीय एव सुन्दर व्यजना है।

पदावली के अधिकाश पदो में राधा कृष्ण का ही नाम प्रत्यक्ष अथवा प्रकारान्तर से आया है। ये पद शृगार के उभय पक्षो के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। कुछ पदो मे रहस्यात्मक सकेत भी मिलते हैं और राधा कृष्ण का वैष्णव प्रेम भी। विद्यापति के प्रणय गीत मुक्तक गीति काव्य के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। उनमे रसिक हृदय को समझने के लिए विशेष सामग्री है। कला और भाव दोनो दृष्टियो से ये प्रेम गीत सदैव ताजे और सुरभित बने रहेगे। इनकी सोधी सोधी गध कभी मद न होगी।

विद्यापति के प्रेम चित्रण मे प्रथम दर्शन मे प्रेम का सुन्दर उदाहरण है। राधा और कृष्ण के उन्मत्त यौवन का सौन्दर्य एक दूसरे को आकृष्ट करता है। प्रथम दृष्टि मिलन मे ही वे एक दूसरे के हो जाते हैं। राधा कृष्ण दर्शन के लिये व्याकुल हैं और कृष्ण की आँखो म नीद नही। यदि नींद आती भी है तो वे बार-बार राधा का नाम लेकर जग जाते हैं। राधा जब कृष्ण का प्रथम दर्शन करती है तो लाख प्रयत्न करने पर भी अपनी दृष्टि कृष्ण के रूप पान से विमुख नही कर पाती हैं। राधा की दशा दयनीय हो जाती है। विप्रलभ परम्परा मे दसो दिशाओ का चित्र कवि खीचता है। राधा कभी अपने नेत्रो को कोसती हैं तो कभी वशी की स्वर लहरी को। वह तो अपने रूप, यौवन, जीवन आदि सभी को कृष्ण के अभाव मे व्यर्थ मानती हैं—'की मोरा यौवने, की मोरा जीवने, की मोरा चतुरपने।' वह वल्लभकान्त की ठुकराई हुई प्रिया का अहेतुक मगलकारी और एकनिष्ठ प्रेम का चित्र भी देखने योग्य है—सहसे रमनि, रमनि रवे पशु मोराह

दहिक आस, केतने जतने गौरि माँगिय स्वामि सोहाग।' इस सोहाग की कामना मे कौन ऐसी भारतीय नारी है जो अपने को धन्य नही समझती है।

प्रोषित पतिकाओ के वर्णन मे विद्यापति ने गोपिकाओं के सामूहिक विरह का वर्णन नही किया है किन्तु राधा के विरह के तो अनेक उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं। प्रवत्स्यपतिका का यह चित्र कितना मार्मिक है—गाढ़ी नीद मे सोई हुई नायिका को जगाकर नायक विदेश जाने की बात कहता है। नायिका यह सुनते ही चकित और चिन्तातुर हो उठती है। मुख विवर्ण हो जाता है और शीघ्रता मे उसका व्यवहार भी अस्त व्यस्त हो जाता है। नायिका के आसन्न विरह का चित्र देखिये—

उठ उठ सुन्दरि हम जाइये विदस,
सपनहु रूप नहि मिलत उदेस।
से सुनि सुन्दरि उठलि चेहाय,
पहुँक वचन सुनि बैसल झमाय।
उठइत उठलि बैसलि मन मारि,
विरह कमातलि खसल हिय हारि।
एक हाथ उबटन एक हाथ तेल,
पिय के नमनआ सुन्दरि चलि देल।

सयोग शृ गार के चित्रों मे नायक नायिका प्रेम का उत्कृष्ट रूप देखने का मिलता है। सयोग शृगार का तो अक्षय भडार है विद्यापति की पदावली। अभिसार प्रसग मे 'दुवर जमुनक तीर' को पार कर आने वाली नायिका का साहस और मिलन उत्कठा देखने योग्य है। साथ ही अन्य शृ गार चित्रो मे 'सुन्दरि चलिलहु पहुँ घरना', 'झाँपल कुच दरसाओल आध', जसे हरपग 'पउनाव नीर, तइसे काँपे धनिक शरीर', कुजभवन ते निकसल रे रोकल गिरधारी, नाव डोलाव अहीरे, 'कर धर कर मोहि पारे क हैया' आदि अत्यन्त सरस प्रसग हैं। चोरी चोरी प्रेम के भी अनेक चित्र मिलते हैं—'जाहि लागि गेलिए ताहि कहो लाइलहे', तापत वैरी पितु काँहा' आदि अनेक उदाहरण हैं।

लोक जीवन के सदर्भ मे प्रेम का व्यावहारिक पक्ष भी प्रचुर मात्रा मे

अभिव्यक्त हुआ है। रूप और यौवन के रहने पर तो नायक दास बना ही रहता है किन्तु बाद की स्थिति मे भी नायिका नायक को बस म कसे करे इसका भी सुन्दर चित्रण है। यथा—

प्रथमहि सुन्दरि कुटिल कटाख,
जिव जोख नागर दे दस लाख।
केओ दे हास सुधा समनीक,
अइसन पर हो कि तइसन बीक।

इत्यादि 'यौवन रूप अछल दिन चारि से देखि आदर कएल मुरारि' की दवा विद्यापति ने ऊपर वाले पद मे कितना सटीक बताया है। विद्यापति के श्याम रमन-रतन हैं और राधा रमनी रत्न। इनके सयोग से रस सिन्धु उमड पडता है—'रस मातल दुहु बसन खसाल रे विद्यापति रस सिन्धु उछलल रे।' फिर राधा के प्रेम का अनुभव क्या कहना—'सखि की अनुभव पूछसि मोय'—उनका अनुराग तो 'तिल तिल नूतन होय' है और इनका प्राण—मन जुड गया है क्योकि उन्हें लाखो मे एक मिल गया है। जो राधा की तप्ति की बात है वही प्रत्येक रमणी के लिये जिसका प्रियतम उससे अगाध प्रेम करता है।

विद्यापति की महेशबानियो और नाचारियो म दाम्पत्य प्रेम का अभिनव रूप मिलता है। शिव और पावती की भक्ति इन गीतो की आत्मा है कि तु इन गीतो मे शिव-पावती के दाम्पत्य जीवन की अनूठी झाँकी है। कही पावती जी शिव के रूप पर मुग्ध होती हैं तो कही उनकी गृहस्थी पर उपालम्भ करती हैं—बूढा बैल, डमरू और मृगछाला यही तो उनकी सपत्ति है। कभी शिव रूठते हैं तो पावती उन्हें जगल जगल ढूढती फिरती हैं और कभी स्वय रूठकर मायके जाने की धमकी देती हैं। कहा पति-पत्नी का विनोद भी अपने परिवार—गणेश कार्तिकेय को लेकर चलता है। शिव के प्रति विद्यापति की भक्ति ऐसी प्रगाढ है कि उ होने शिव पावती को मिथिला क जीवन म उतार दिया है और शिव पावती दिव्य होते हुए भी उनके अपने आत्मीय हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(क) एपथ देखल कहि बूढ़ बटोही।

(मित्र-मजूमदार—पद स० 791)

(ख) गौरी हर लए मेल बताही।

(रामवृक्ष बेनीपुरी—प०स० 237)

(ग) कतए गेला मोरा बुढ़वा जती। (वही—पद स० 247)

(घ) आज नाथ एक वत मोहि सुख लागल हे।
तोहे सिव धरि नट वेष की डमरू बजाएल हे।
भलन कहल गउरा रउरा आज सुनायन हे।
सदा सोच मोहि होत कवन विधि बाँचब हे।
जे जे सोच मोहि होत कहा समुभाएल हे।
रउरा जगत के नाथ कवन सोच ला गए हे।
नाग ससरि भूमि खसत पुहुमि लोटायत हे।
कार्तिक पोसल मयूर से हो धरि खायत हे।
अमिय चूय भूमि खसत बघम्बर जागत हे।
होत बघम्बर बाघ बसह धरि खायत हे।
टूटि खसत रुद्रास मसान जगावत हे।
गौरी कँह दुख हो न विद्यापति गावत हे।

विद्यापति के पदो मे समृद्ध लौकिक प्रेम, पारलौकिक प्रेम और भागवत प्रेम का व्यापक समन्वय है। राधा कृष्ण वन्दना मे भक्ति शृंगार का मिश्र रूप दुर्गा, गगा, शिव के पदो मे विशुद्ध भक्ति और माधव सम्बोधित पदो मे वद्धावस्था का ससार भोगजनित पश्चाताप का स्वर अत्यन्त प्रखर है। और उनमे कातरता, विह्वलता और निराशाजन्य अधकार मे भी अटूट विश्वास की एक किरण है। सख्या मे कम होते हुए भी ये पद अति प्रभावशाली हैं और भक्ति भावना मे तुलसी सूर के निकट हैं।

विद्यापति के प्रेम स्रोत के सम्बन्ध मे मिथिला का लोकमुख कुछ कहता है और गौडीय वैष्णवों का भी अपना विश्वास है। जिस प्रकार गीत गोविन्दकार जयदेव की काव्य प्रेरणा स्रोत उत्कल कन्या नेवन्मसी पद्मावती थी, चण्डीदास की रजकिनी 'रामी' थी उसी प्रकार विद्यापति की भी आराध्या अपूव सुन्दरी 'लखिमा देवी' थी। ऐतिहासिक प्रमाणो के अभाव मे भी सहसा इसपर अविश्वास करने का जी नही चाहता क्योकि

पदावली में व्यक्त लसिमा देवी के प्रति अवगुंठित अनुरक्ति इस विश्वास का आधार है। मेरा विश्वास है कि जिस प्रकार प्रखर तीर के चुभे बिना हृदय से रक्त की धारा प्रवाहित नहीं होती उसी प्रकार जब तक कवि का हृदय पुष्पबाण से छलनी नहीं हो जाता तब तक कविता की प्रेम स्रोतस्विनी उसके हृदय-शृंग से नहीं बहती। इस पीर में स्वानुभूति का पोत जितना ही गाढ़ा होता है गीत उतना ही मधुर और मर्मस्पर्शी होता है। विद्यापति के गीतों में व्यक्त प्रेम की अनुभूति प्रधान सान्द्रता का सत्य लूट कर इस चिर सत्य को कौन सहृदय अस्वीकार करेगा? तात्पर्य यह है कि विद्यापति के काव्य में प्रेम का पारावार हिलोर लेता है। उनमें उद्दाम यौवन और शृंगार का जल है तथा तल में भक्ति भाव की सुन्दर सीपियाँ हैं। ये लहरें जब भी मर्यादा भंग करने का प्रयास करती हैं कवि समुद्र देवता की भाँति हाथ के इशारे से शान्त कर उन्हें लोक मर्यादा की सीमा में डाल देता है।

विद्यापति के काव्य में सौन्दर्य विधान—सौन्दर्य क्या है इसे व्यक्त करना अत्यन्त कठिन है। दार्शनिकों ने इस ओर उलझा दिया है। दर्शन के दर्पण में सौन्दर्य की समग्र झलक नहीं मिल पाती है। सौन्दर्य की प्रकृति को समझने के लिये सौन्दर्य सम्बन्धी तीन तथ्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है—(क) सौन्दर्य न मूर्त सत्ता है न अमूर्त, (ख) न वह वस्तु का गुण है न गुणों का अन्तसम्बन्ध, (ग) सौन्दर्य पर जगत की कोई सत्ता नहीं है। सौन्दर्य को केवल वास्तविक जगत के अनुभवों से समझा जा सकता है।

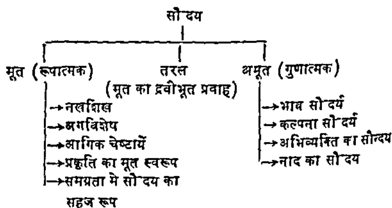
सौन्दर्य सम्बन्धी जितनी भी व्याख्यायें अब तक की गई हैं, वे सभी सौन्दर्य के अनुपात में छोटी हैं। उनमें सौन्दर्य के किसी तत्व विशेष की ही झलक मिल पाई है सम्पूर्ण सौन्दर्य की नहीं। सौन्दर्य को सत्य और शिव के साथ जोड़ कर इसकी व्याख्या को उलझा दिया गया है। सौन्दर्य न शिव है न सत्य। वह शिव और सत्य की तरह निर्विकार, अतीन्द्रिय, चिरन्तन, अद्वय देशातीत तथा कालातीत है। किन्तु सौन्दर्य में इन्द्रियों के माध्यम से 'अपने' आपको व्यक्त करने की प्रबल क्षमता है। सत्य और शिव इस दृष्टि से पंगु हैं, उन्हें अपने आपको व्यक्त करने के लिये सौन्दर्य

का ही सहारा लेना पडता है।

रूपात्मक विशिष्टताओं जैसे सामजस्य, सतुलन, अनुपात समानरूपता तथा प्रतिकूलता आदि के आधार पर सौन्दर्य की व्याख्या का प्रयास किया गया है किन्तु प्राकृतिक सौन्दय के अनेक अवयवो मे इस तत्व का अभाव है किन्तु वे सुन्दर हैं। हीगेल ने प्रकृति को जड बता कर उसे सुन्दरता के क्षेत्र से विलग कर दिया है। क्रोचे के अनुसार मनुष्य प्रकृति मे व्यक्त अपने ही सौन्दय को देखकर मुग्ध होता है, किन्तु जब वस्तु और चेतना का तादात्म्य होता है तो दर्पण और चेतना का भेद कहाँ रहता है? प्रत्ययवादी मन को प्राथमिकता देते है और यथार्थवादी इन्द्रियो की क्षमता को। सत्य तो यह है कि सौन्दय एक भ्रामक शब्द है और भ्रम की गहनता पर ही इसका अस्तित्व आधारित है।

सौन्दय को समझने के लिए हमे अपने अनुभवो पर अधिक विश्वास करना चाहिये। जिस प्रकार सौन्दय के साथ सत्य और शिव का गठबन्धन अनुचित है उसी प्रकार सौन्दय के कलात्मक पक्ष पर नैतिकता का आरोपित बन्धन भी उचित नही है। प्रकृति सौन्दय का कोई नतिक उद्देश्य भी हो सकता है समझना कठिन है। इसी प्रकार सौन्दर्य के साथ अलौकिक सत्ता सम्बन्ध जोडकर हम जगत के वास्तविक सौन्दय से हाथ धो बठते हैं। मन और वस्तु की रति क्रीडा से हम सौन्दय की अनुभूति करते हैं। यह सौन्दर्यानुभूति केवल आनन्दप्रद ही नही पीडाजनक भी होती है वस्तुत सौन्दय एक भावात्मक तत्व है, वह गुण नही है बल्कि सम्बन्ध तन्त्र है। वस्तुयें मन से सम्बन्ध स्थापित करते ही कुछ रुचिकर मवेगो या इच्छाओ को प्रेरित करती हैं, कभी-कभी व कामोद्दीपक भी होती हैं। जब हम किसी वस्तु या गुण को सुन्दर कहते है तो निश्चित ही उसके धरातल म गुप्त तीव्र कामना या प्रेम की अभिव्यक्ति होती है। इसके पीछे काम भावना की उपस्थिति को भी अस्वीकार नही किया जा सकता।

सौन्दय के इस दार्शनिक और अनुभूति प्रधान स्वरूप की अभिव्यक्ति के सदभ म हम विद्यापति के काव्य मे चित्रित सौन्दय की समीक्षा करेंगे। इसके काव्यगत रूप को समझने के लिये प्रस्तुत सरणी सहायक होगी —



नखशिख वणन में विद्यापति ने परम्परा का ही पालन किया है। चन्द्र, भ्रमर, पिक, दाडिम, नागिन, कमल, सिंह आदि परम्परित उपमानों को ही ग्रहण किया है किन्तु अपनी मौलिक प्रतिभा से इसमे नवीनता अवश्य ला दी है। इन्होने नखशिख—शिखनख के साथ एक नई परम्परा जोडी है जिसमें नायिका वणन 'पीन पयोधर' से या जहाँ दृष्टि पड जाय वही से प्रारम्भ हो जाता है। नखशिख वणन की दृष्टि राधा और कृष्ण के वणन का एक एक नमूना लीजिए—

राधा—माधव कि कहबि सुन्दरि रूपे

कतक जतन विधि आन सवाँरल, देखल नयन स्वरूपे।
पल्लव राज चरन जुग सोभित, गति गजराजक भाने।
कनक कदलि पर सिंह सभारल, तापर मेरू समाने।
मेरू उपर दुइ कमल फुलायल, नालबिना रुचि पाई।
मनिमय हार धार बहु सुरसरि, तओ नहि कमल सुखाई।

(बेरीपुरी प०स० 12)

'अद्‌भुत एक अनुपम बाग' शीर्षक सूरदास का एक प्रसिद्ध पद है। साहित्य जगत मे उसकी सवमान्य प्रतिष्ठा है। सूरदास से 150 वष पहले रची गई यह कविता पढकर पाठक विद्यापति की प्रतिभा का अदाज लगा सकते हैं। पल्लव राज, कनक कदलि, नालविहीन कमल और हार की

सुरसरि की कल्पना के कारण यह पद सूर की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट हो गया है।

कृष्ण का स्वरूप भी राधा से कम आकर्षक नहीं है। कृष्ण के सौन्दर्य को देखकर राधा की सुधि-बुधि खो जाती है। 'कमल जुगल पर चाँदक माला' और उसपर तरुण तमाल का वृक्ष कृष्ण के शरीर से कैसा अद्भुत साम्य है—

कृष्ण का स्वरूप—कमलजुगल पर चाँदक माला,
तापर उपजल तरुनत माला।
तापर बेठलि विजुरी लता,
कालिन्दी तट धिरे धलि जता।
साखा सिखर सुधाकर पाँति,
ताहि नव पल्लव अरुणक भाँति।
विमल बिम्ब फल जुगलविकास,
तापर कीर थीर करु वास।
तापर चचल खञ्जन जोर,
तापर साँपिन झाँपल मोर।
ए सखि रंगिनि कहाव निसान,
हेरइत पुनि मोर हरल गियान।

(वही पृ०सं० 36)

पीन पयोधर से प्रारम्भ होने वाला नखशिख चित्रण नायिका के सौन्दर्य का अद्वितीय चित्र है। नायिका क्या है स्वरूप की लता है उरोज सुमेरु पर्वत के समान उत्तुंग और पीन हैं। नारी सुलभ कोमलता में, 'पद्मिनी' का चित्र साकार हो उठा है। रीतिकालीन कवि की तरह वह 'कनक छरी' नहीं 'कनक लता' है, लता में छडी की अपेक्षा लोच और सुकुमारता अधिक होती है—

पीन पयोधर दूबरि गता, मेरु उपजल कनक लता।
ए कान्हु, ए कान्हु तोर दोहाई, अति अपूरब देखल साँई।
मुख मनोहर मधुर रसे, फलल मधुरी कमल सगे।
लोचन जुगल भृंग आकारे, मधुक मातल उड़ए न पारे॥

मुखरूपी कमल में लाल लाल होठ मधुरी हैं और लोचनों की उपमा, 'मधु क मातल' मृ ग से देकर दीघ और प्रेम मे विभोर अधखुली आँखों का अत्यन्त मनोहारी चित्र कवि ने खींच दिया है।

अन्य प्रकार के रूपात्मक सौन्दर्य—अगविशेष, आंगिक चेष्टायें गत्यात्मक सौंदय, सहज सौंदय, तरल सौंदय तथा प्रकति सौंदय के भी कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(क) पहिल बदर सम पुनि नवरग,
दिन दिन बाढ़ए पीडए अग।
से पुनि भए गेल बीजक पोर,
अब कुच बाढल सिरिफल जोर।
(वही, प०स० 8)

(ख) हरिन इन्दु अरविन्द करिनि हम,
पिक दूभल अनुमानी।
नयन वदन परिमल गति तन रुचि
अओ अति सुललित बानी।
(वही, प०स० 11)

(ग) गेलि कामिनि गजहु गामिनि, विहसि पलट निहारि।
इन्द्रजालक कुसुम-सायक, कुहुकि भेल वरनारि।
जोरि भुज जुग मोरि वेढलि, ततहि बदन सुछद।
दाम चम्पक काम पूजल, जइसे सरद चन्द।
उरहि अचल झाँपि चचल, आध पयोधर हेरु।
पौन पराभव सरद घन जनि वेकत कएल सुमेरु।
(वही, प०स० 32)

प्रथम पद म कवि ने यौवन विकास का सरस इतिहास केवल चार शब्दों—बदर नवरग, बीजक पोर और सिरिफल स प्रस्तुत कर दिया है। इसी प्रकार पद्मिनी के नयन, वदन, परिमल, गति, तन रुचि और स्वर को कितने प्रयत्न लाघव के साथ हरिन, इन्दु, अरविन्द, करिनि, हेम और पिक म व्यक्त कर दिया है। तीसर पद म नायिका की कामिनी-चेष्टाओं का सुन्दर चित्र है। गजगामिनि 'मुर मुसकाय' चल दती है

फिर क्या है कुसुम सायक का इन्द्रजाल फैल जाता है। भुजाओ को मोडकर, मुख से बाल हटाना, शरदचन्द्र का उदित होना, खिसकते हुए अचल से चचलता के साथ उरोजा को ढँक लेना आदि नायिका की मनोहारी चेष्टायें हैं। इनसे आगिक चेष्टाओ से उत्पन्न तरल सौन्दर्य की सम्पन्न झाँकी मिलती है। सौन्दय का इतना श्लिष्ट और मादक चित्रण विद्यापति की ही लेखनी से सभव हो सकता है।

गुणात्मक सौन्दय के चित्रण मे भी विद्यापति सिद्धहस्त हैं। रूप के साथ गुण का समन्वय राधा और कृष्ण दोनो म ही है। साथ ही अन्य पात्रो म भी इसका अभाव नही है। राधा कृष्ण एक दूसरे के रूप पर ही नही गुण पर भी मोहित हैं। कृष्ण बहु वल्लभ है किन्तु राधा को इसकी चिन्ता नही वे तो अपने सुहाग की कामना करती हैं। उनकी मगल-कामना का उदघोष कितना सुन्दर है—कृष्ण चाहे जहाँ भी रहे सुखी और सानन्द रह। कृष्ण भी राधा के प्यार मे अनुरक्त हैं। मथुरा प्रवास मे खाने पीने, उठने-बैठने सभी चेष्टाओ मे उन्हें राधा की याद आती है। तात्पय है कि कृष्ण और राधा का सौन्दय कागज का फूल नही बल्कि उद्यान का गुलाब है, शरद सरोवर का कमल है जिसम रूप भी है गुण भी, सौन्दय भी है सुगन्ध भी। देखिये एक दूसरे के वियोग मे दोनों की क्या स्थिति है—

राधा की स्थिति—लोटई धरनि धरनि धरि सोइ,
खने खने साँस खने खन गेइ।
खने खन मुरछई कठ परान,
इथि पर की गति दैव से जान।
हे हरि पेखलो से वरनारि,
न जिवई बिन्दु कर परस तोहार।
(वही, पृ०स० 54)

कृष्ण की स्थिति—आज हम पेखल कालिन्दी कूले,
तुअ बिनु माधव विलुठए धूले।
कत सत रमनि मनहि नहि आने,
किए विपदाह—समय जल दाने।

मदन भुजगम देसल कान,
विनहि अमिय रस कि करब आन ।
(वही, प०स० 48)

राधा और कृष्ण दोनो के हृदय मे प्रेम की समान अग्नि जल रही है । राधा के प्राण आकठ हैं तो कृष्ण भी धूल मे लोट रहे हैं। राधा-कृष्ण के कर स्पश बिना जीवित नही हो सकती तो कृष्ण को सप ने डँस लिया है और बिना अमत के उनका भी जीना कठिन है। ऐसा समतुल्य प्रेम भारतीय दाम्पत्य जीवन की आदश झाँकी है।

कल्पना का तो अक्षय कोष कवि के पास है। मौलिक कल्पनाओं और उद्भावनाओ से काव्य सौ दय, रूप सौ दय और भाव सौ दर्य को तो कवि निखारता ही है साथ ही शिव सम्बन्धी उद्भावना मे तो विद्यापति के शृगार चित्रो मे स्वण मे सुगध की कथा चरितार्थ कर देते हैं। यथा—

(क) गिरिवर गरुअ पयोधर पर सित, गिमि गजमोतिक हारा।
काम कम्बु भरि कनक शम्भु पर ढारत सुरसरि धारा।
(वही, प०स० 18)

(ख) मेरु उपर दुइ कमल फुलायल, नाल विना रुचि पाई।
मनिमय हार धार बह सुरसरि, तओनहि कमल सुखाई।
(वही, प०स० 12)

(ग) उर हिल्लालित चाँचर केस, चौंमर-झाँपल कनक महेस।
(वही, प०स० 8)

(घ) मनमथ तोहे की कहब अनेक।
दिठि अपराध परान पए पीडसि, ते तुअ कौन विवेक।
(वही, प०स० 43)

(ङ) चिकुर गरए जल धारा, जनु मुख ससि डर रोअए अधारा।
(वही, प०स० 23)

इस प्रकार की सुदर कल्पनायुक्त उदभावनायें पाठक के मन की बन्द आँखो को खोल देती हैं। ये विपुल काव्य चित्र विद्यापति के काव्य वैभव के रत्न हैं जिन्हें पाठक अपने हृदय की भाव सम्पत्ति बनाकर आज-तक अपनाये हुए हैं।

विद्यापति का सौन्दर्य चित्रण सद्य स्नाता और सहज समग्रचित्र के उल्लेख के बिना अधूरा रह जायेगा। सद्य स्नाता के चित्रो पर तो मिथिला की अपनी छाप है। संस्कृत-कवियो की परम्परा को अपनाकर विद्यापति अपनी प्रतिभा से उनसे भी आगे हो गये हैं। हिन्दी साहित्य मे इस प्रकार के चित्रो का नितान्त अभाव है। सहज सौन्दर्य को समग्रता के साथ प्रस्तुत करने मे तो विद्यापति इतने सिद्धहस्त हैं कि आँख मूद कर बिना किसी अलकरण के ऐसे भव्य चित्र खीच देते हैं कि मन मत्र मुग्ध होकर रह जाता है—

सद्य स्नाता—जाइत पेखल नहाइल गोरी,
कति सग रूप धनि आनल चोरी।
केस निगरइत बह जल धारा,
चमर गरए जनु मोतिम हारा।
अलकहि तीतल तैं अति सोभा,
अलि कुल कमल बेढल मधु लोभा।
नीर निरजन लोचन राता,
सिदुर मडित जनु पंकज पाता।
सजल चीर रह पयोधर सीमा,
कनक बेल जनि पडिगेल हेमा।
ओ नुकि करतहि चाहि किए देहा,
अबति छोडब मोहि तेजब नेहा।
ए सनि रस नहि पाओल आरा,
इथे लागि रोए गरए जल धारा।
(वही, प०स० 25)

स्नान कर गीले वस्त्रो मे निकलती हुई गोरी का समस्त रूप साकार हो उठा है। रूपराशि की कोष अपूर्व सुन्दरी बालो को निगारती है, गीले वस्त्रो मे व्यक्त वदन पर भौरे लालायित हैं। आँखें अजन के बिना लाल हैं। गीला वस्त्र उरोजो पर सिमट कर रह गया है। इसी प्रकार का एक देव का पद है—'पीत रग साडी गोरे अग मिलि गई देव'। विद्यापति के इस पद मे रूप की मादकता तो है ही, जड की चेतनता भी

अदमुत है। वस्त्र भी वदन को वियोग की आशका में छोडना नही चाहता क्योकि ऐसा रस उस पुन नही प्राप्त होगा। नवीन कल्पना और मौलिक उदभावना से आपूर इस प्रकार के अनेक पद पदावली मे उपलब्ध हैं।

सहज समग्र सौन्दय के भी एक-दो उदाहरण देकर इस प्रसग को विराम दिया जाता है—

(क) चाँद सार लै मुख घटना करु, लोचन चकित चकोरे।
अमिय धोय आँचर धनि पोछए, दहदिसि भेल अजोरे।
(वही, प०स० 14)

(ख) सुधा मुखि के विहि निहि निरमिल बाला।
अपरूव रूप मनोभव मगल, त्रिभुवन विजय माला।
(वही, प०स० 15)

(ग) देख-देख राधा रूप अपार।
वे विहि अपरूब रूप समारल छिति तल लावनि सार।
(वही, प०स० 1)

(घ) सहजहि आनन सुन्दर रे भौंह सुरेखलि आख।
पकज मधुपिन मधुकर रे उडए पसारल पाँख।
(वही, प०म० 3")

इस प्रकार कही कवि चाँद का सार लेकर नायिका के रूप की रचना करता है और उसके मुख काति से जगत मे प्रकाश फैला देता है, तो कही बूढे ब्रह्मा की त्रिभुवन विजयी माला पर आश्चय करता है, कही राधा के अपार तरल रूप को देखकर चकित होता है तो कही श्वासा के स्पश से यौवनाक बादलों के बीच चचल चपला सा चमक जाता है तो कही स्वभावत प्रकृतम्य ही सुन्दर चेहरे पर सुशोभित रतनारी आँखो की उपमा मधुमाते भ्रमर के पाँख पसारने मे देता है। भ्रमर के पखो और नायिका के पलकों का गतिशील साम्य अदमुत है, अनोखा है।

सारांश यह है कि विद्यापति सौन्दर्य के विविध रूपों के चतुर चितेरे है। शृगार और सौन्दर्य का जो अद्वितीय समन्वय है, उसे विद्यापति ने पूर्ण कलात्मक कौशल एव सरसता के साथ व्यक्त किया है। वस्तुत इनके सौन्दय चित्रण की तुलना उस अमर सौन्दय वाटिका से की जा सकती है

जिसकी ताजगी कभी समाप्त नही होती और जो सौन्दर्य सुरभि का अक्षय कोष सदैव लुटाया करती है।

विद्यापति की प्रेम भावना भागवत या लौकिक ?

भक्ति और श्रृंगार दोनो ही रति की सतानें है। भक्ति भगवान्नो मुख होन के कारण श्रेय हो गई है और शृ गार लोको-मुख होने के कारण प्रेम। भारतीय विचारो को वश-परम्परा मे भक्ति के प्रति अधी अनुरक्ति मिली है और शृ गार के प्रति विरक्ति। इसीलिए आलोचक जब इस परम्परित अनुरक्ति और विरक्ति का चश्मा लगाकर किसी कवि की समीक्षा करता है तो जमीन-आसमान एक कर श्रृगार को भक्ति और लौकिक को अलौकिक सिद्ध करने का प्रयास करता है। शायद वह भूल जाता है कि श्रृगार और भक्ति मे मौलिक भेद नही है। श्रृगार के कधे पर ही चढकर भक्ति मुक्ति और मोक्ष के कोठे पर पहुँचती है और सौंदय के प्रति आकषण श्रृगार का के द्र बिन्दु है। भक्ति भी इस धम को अस्वीकार नही कर सकती है। मेरा विनम्र विचार है कि विशुद्ध श्रृगार भी उतना ही श्रेष्ठ है जितनी विशुद्ध भक्ति। अत किसी कवि या कलाकार की श्रेष्ठता उसके भक्त या शृ गारी होने मे नही बल्कि कवि या कलाकार होने मे है। उसकी श्रेष्ठता की कसौटी है ममस्पर्शी स्थलो की पहचान तथा उनकी प्रभावशाली अभिव्यक्ति।

फिर भी विद्यापति का प्रेम भागवत है या लौकिक इस सबध मे विद्वानो की दो टोलियाँ बन गई हैं। एक उन्हें प्राण-पण से भागवत सिद्ध करने का प्रयास करती है तो दूसरी भागवत प्रेम के लिए विद्यापति के काव्य का कपाट ही बद कर देती है और उसे शृ गार के अतिरिक्त और कुछ दिखाई ही नही देता। इस सबध मे डॉ० ग्रियर्सन, डा० केये, शारदा चरण मिश्र, महमहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री, श्रीकुमार स्वामी, खगेन्द्रनाथ मित्र, डॉ० जनार्दन प्रसाद, डॉ० उमेश मिश्र, प० शिवनन्दन ठाकुर, आचाय रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा डॉ० रामकुमार वर्मा आदि ने तर्कों तथा युक्तियो के साथ अपने-अपने अभिमत व्यक्त किये हैं।

भागवत होने के पक्ष मे विद्वानों के तर्क—विद्यापति का प्रेम भागवत है, इसका श्रीगणेश डॉ० ग्रियसन ने किया। इनके अनुसार विद्यापति के पदों की महत्ता उसकी प्रतीकात्मकता के कारण है।[1] राधा कृष्ण वस्तुत प्रतीक हैं। राधा जीवात्मा और कृष्ण परमात्मा का। जीवात्मा परमात्मा मे मिलने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है। जीव माया के प्रपच मे फमा हुआ है। उसे ईश्वरोन्मुख करने के लिए गुरु उपदेश की आवश्यकता होती है। दूती ही गुरु है जो उसे अभिसार हेतु प्रेरित करती है और मार्गदर्शन भी करती है। एफ० एफ० केये ने भी इसका अक्षरश समर्थन किया है।[2] नगेन्द्र नाथ गुप्त ने भी राधा कृष्ण पदावली का यही सारांश बताया है और 'रयनि काजर बम भीम भुजगम' कृष्णाभिसारिका वाले पद को लेकर जीव ब्रह्म और माया के प्रतीक को सार्थक किया है। इसमे कृष्ण ब्रह्म, राधा जीव तथा वर्षा और भयानक रात्रि माया के प्रतीक हैं और दूती गुरु। डॉ० जनार्दन मिश्र के अनुसार भी विद्यापति ने स्त्री और पुरुष के रूप मे जीवात्मा और परमात्मा की उपासना की जो धारा उस समय उमडी थी, उसमे अपने को बहा दिया। इनके समय मे रहस्यवाद मत जोरो

---

1 But his chief glory consists in the mathili dealect dealing allegorically with the relation of soul to God under the form of love which Radha born to Krishna
—Modelrn Vernacuar literature of Hinduism, page 9-10

2 VidyaPati Thakur is of the most famous Vaishnava Poets of eastern India His chief fame however, rests on his sonnets in the Mathili dealect of Bihar In these he uses the story of love which Radha bore to Krishna
(F F Keay, A History of Hinduism Literature, page 28

पर था उसके प्रभाव से बचकर निकलना तुलसी की तरह विद्यापति के लिए भी मुश्किल था। कुमार स्वामी भी विद्यापति के काव्य मे रहस्यभाव की ही स्थापना करते हैं, उनका कथन है—'विद्यापति का काव्य गुलाबो का काव्य है। चारो ओर से गुलाबों से परिवृत्त यह आनन्द कुज है। यहा हमे स्वग का दशन होता है। व दावन की कृष्ण लीला शाश्वत है। व दावन मनुष्य का हृदय प्रदेश है, यमुना का किनारा इस ससार का प्रतीक है जो राधा और कृष्ण अर्थात् जीव और ब्रह्म की लीलाभूमि है। वशी की ध्वनि अदृश्य सत्ता का स्वर है, यह जीव को परमात्मा की ओर अग्रसर होने का आह्वान है।

बाबू ब्रजन दन सहाय और डॉ० श्याम सुदर दास विद्यापति पदावली को वैष्णव भाव का प्रतीक मानते हैं। डॉ० श्याम सुदर दास तो इन पर निम्बाक और विष्णु स्वामी का प्रभाव मानते हैं क्योकि राधा का उल्लेख प्रथम बार विष्णु स्वामी तथा निम्बाक सप्रदाय मे ही हुआ है। विद्यापति के प्रेम को वैष्णव मानने वाले कुछ प्रमाण प्रस्तुत करते हैं जैसे विद्यापति और चडीदास की भेंट, चैत य महाप्रभु का इन पदो को गाते गाते भाव-विभोर होना, गौडीय सप्रदाय मे कीर्त्तन रूप मे इनका प्रचलन, ब्रजबुल्लि का प्रभाव, बग, काम, उत्कल आदि मे पदो का प्रचलन, राधा कष्ण नाम के प्रतीकात्मक प्रयोग तथा व दावन, गोकुल, कदम्ब, यमुना तट आदि का प्रयोग, लोकोत्तर प्रेम की व्यजना, जयदेव का प्रत्यक्ष प्रभाव, पचगौड के अ तगत मिथिला का होना तथा विनय के पदो मे माधव के प्रति आस्था और ससार से मुक्त करने की याचना आदि।

लौकिक होने के पक्ष मे विद्वानो के तक—प० शिवन दन ठाकुर तथा अ य विद्वानो ने विद्यापति के प्रेम को लौकिक सिद्ध करने के लिए ये प्रमाण दिये हैं—(1) उस युग मे पति रूप मे ईश्वरोपासना का अभाव था। इसका न तो किसी आलोचना ग्र थ मे समर्थन है न सकेत, (2) तांत्रिक उपासना की भाँति इस उपासना का थोडा भी अनुकरण मिथिला मे नही मिलता, (3) पदावली की रचना श्रृंगार प्रधान गाथा सप्तशती आदि ग्र थो के आधार पर हुई है, (4) रसमय श्रृगार की शिक्षा के द्वारा नव दम्पति पर प्रेम का स्थायी प्रभाव पदावली का उद्देश्य है, (5) पूजा

आदि के अवसर पर इन पदो का गान नही होता है (6) चैतन्य देव के मूर्च्छित होने का कारण केवल राधा कृष्ण का नाम है, (7) कीर्तन की सृष्टि विद्यापति के 200 वर्षों बाद हुई, (8) सूफीमत को प्रौढता विद्यापति के पश्चात मिली थी, (9) रहस्यवादी ग्रन्थो की भांति विद्यापति ने रहस्य का उदघाटन नही किया है, (10) कीर्तिपताका म रामावतार के कारण की घोषणा, (11) वर्ण रत्नाकर मे लीला सकीर्तन की चर्चा नही है, (12) 'माधव हम परिनाम निराशा' जैसे पद मिथिला मे प्रचलित नहीं हैं, (13) पदावली को कीर्तिपताका, कीर्तिलता और गोरक्ष विजय की पृष्ठभूमि मे देखना चाहिए, (14) अनेक पदो मे चित्रित नायिकायें अपने घर, रूप यौवन तथा पति आदि की चर्चा करती हैं, (15) शिव सिंह की प्रशसा कवि ने एकादस अवतार *'नारायणो रूप नारायणो वा'* करके किया है जो वैष्णव भक्त नही कर सकता, (16) पुरुष-परीक्षा मे कवि ने राधा-कृष्ण के नही बल्कि राम सीता के प्रेम को आदर्श बताया है, (17) *विद्यापति के कृष्ण भागवत कृष्ण से भिन्न हैं*—वे मोर पख धारी नही हैं करील कुजो का उल्लेख नही है, राधा कृष्ण प्रेम विहार में अन्य किसी गोपी का वर्णन नही है, राम का वर्णन केवल तीन पदो म मिलता है जो भागवत और जयदेव दोनों से भिन्न है। विद्यापति का राम शरद पूनो का नही बसत का है, (18) प्रचलित जन श्रुतियाँ—उगना, वाजितपुर मे समाधि पर शिव मदिर, नाचारिया, शिव गीत और मत्यु प्रसग सभी उनको शैव ठहराते हैं।

ये तो हुए विद्वानो के मत। अब जरा देखिए विद्यापति की पक्तियाँ क्या कहती हैं। इनका ही प्रमाण विद्यापति के हृदय का प्रमाण माना जायेगा क्योकि ये वही से उपजी हैं—

1 कवि मँह जयदेव कवि रस मँह रस सिंगार।
त्रिपुर सिंह सुत राज मँह, तीनहुँ त्रिभुवन सार।
(कीर्तिपताका, पृ० 6)

2 रस सिंगार ससार क सारे। (मि० भा० वि० पद 100)

3 ससार सार सिंगार रस, कओनक चित्त न हरइ जुवति।
(कीर्तिपताका, पृ० 8)

4 ससाग रत्नम् मृगशावकाक्षी रत्न च, श्रृगार सो रसानाम।
(मि० म० वि० पद, 312)

5 जौवन रतन अछल दिन चारि तावेते आदर कएले मुरारि।
(रामवृक्ष बेनीपुरी, वि० 188)

6 तन विनु जौवन, जौवन विनु तन की जौवन पिय दूरे।
(मि० म०, 402)

7 वर युवति तिउपन सार (वही, 30)

८ जीवन सार यौवन रस रग। (वही, 315)

ये सारी की सारी उक्तियाँ क्या कहती हैं बताने की आवश्यकता नही। पदावली के इसी गुण को लक्ष्य करके डॉ० रामकुमार वर्मा ने कहा है—'विद्यापति के इस वाह्य ससार मे भगवत भजन का सार कहाँ? सद्य स्नाता मे ईश्वर से नाता कहाँ, अभिसार मे भक्ति का सार कहा? उनकी कविता विलास की सामग्री है, उपासना की साधना नही वे सौंदय ससार के सौंदय मे इतना खो गये हैं कि उनकी दृष्टि और किसी तरफ जाती ही नही। (हिन्दी सा० का आलोचनात्मक इतिहास, प० 509)। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी भी कहते है— विद्यापति ने राधा की जिस प्रेममयी रूप की कल्पना की है उसम विलास कलावती किशोरी का रूप स्पष्ट ही प्रधान है—(म० का० धम साधना, प० 183) आचाय शुक्ल ने तो स्पष्ट कह दिया है कि 'आध्यात्मिक रग के चश्म आजकल बहुत सस्ते हो गये हैं। (हि० सा० का इतिहास, पृ० 58)

इस तरह के पक्ष विपक्ष दोनो ही दृष्टिकोणो मे कुछ एकागिता आ गई है। 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत तिन देखी तैसी' इस प्रसग मे साथक हो गया है। वास्तविकता यह है कि इस निणय म न तो युग प्रवत्ति की उपेक्षा की जा सकती है न विद्यापति के गीतो से मुखरित मुख्य स्वर को निश्चित ही पदावली मे भक्ति के पदो की सख्या किसी प्रकार भी सौ मे अधिक नही होगी। इनमे प्रतीकात्मक पद भी शामिल हैं। शेष पदो में तो श्रृगार की अजस्र धारा प्रवाहित होती है। पदावली को तो श्रृगार का महाकाव्य कहा जा सकता है। इसमे प्रेम के प्रतीक कृष्ण और सौंदर्य

की देवी राधा नायक-नायिका हैं जो पुरुष और स्त्री के सामान्य एव सहज सम्बन्ध के भी प्रतीक हैं। फिर भी इस शृंगार सागर के भीतर भक्ति के मोतियों को नकारा नहीं जा सकता। रति के एक ही कोख से उत्पन्न शृंगार और भक्ति दोनों का प्रगाढ़ मिश्रण पदावली मे है किन्तु शृंगार का रंग अधिक चटक और जनमानस को भावविभोर करने वाला है।

विद्यापति के काव्य का शास्त्रीय विवेचन

(क) रसयोजना—साहित्य मे रस सहृदय आस्वाद्य होता है। भरत मुनि ने कहा है 'रसान आस्वादयन्ति, हर्षादींश्चाधिगच्छति' अर्थात रस का आस्वादन किया जाता है और इससे हर्ष आदि की प्राप्ति होती है। काव्य विषय के परिशीलन से प्रमाता की सवेदना आत्मा में विश्रांत हो जाती है और इस प्रकार प्रमाता अपने आत्मा के ही आनन्द का अनुभव करता है। *स्थायी भाव की आनन्दमय चेतना ही रस है। काव्य के अनुशीलन से* जब अज्ञानवली का आवरण विशीण हो जाता है तब जीवात्मा अपने स्वाभाविक आनन्दमय रूप में आ जाता है और उसी आनद को रस कहते हैं। आचाय विश्वनाथ ने रस का कारण *सत्वोद्रेक* माना है और इसका स्वरूप ब्रह्म की तरह स्व-प्रकाश, अखण्ड और चिन्मय है, साथ ही यह वेद्यान्तर स्पर्श-शून्य है।—सत्वोद्रेकादखण्ड स्वप्रकाशानन्द चिन्मय, वेद्यान्तर स्पर्श शून्यो ब्रह्मा स्वाद सहोदर। किन्तु यह सविकल्प होता है ब्रह्मानन्द की तरह निर्विकल्प नही। आचाय शुक्ल ने 'हृदय की मुक्तावस्था को रस कहा है' और डॉ० नगेन्द्र ने रस को 'आनदमयी चेतना' स्वीकार कर विषयानद और ब्रह्मानद के मध्यवर्तिनी वस्तु माना है। अब देखना यह है कि विद्यापति को अपने काव्य के माध्यम से ब्रह्मानद सहोदर का आस्वादन कराने मे कहाँ तक सफलता मिली है।

विद्यापति के काव्य मे शृगार रस—कवि भाव जगत के असीम लोक का पारखी होता है उसकी अन्तर्वीक्षणी दृष्टि मानव हृदय के गहनतम

गह्वरों मे प्रवेश कर उसके रहस्यो के उदघाटन करने क्षमता की रखती है। सुख दुख मिश्रित इन्ही अनुभूतियो की नीव पर कवि का कला सौध निर्मित होता है। कवि मानव हृदय के रहस्यो को देखता है, ग्रहण करता है और अपनी कर्यित्री प्रतिभा से काव्य माला मे पिरोकर जगत के सम्मुख भाव और रूप की रत्न राशि बिखेर देता है। उसके गीतो का आस्वादन कर सहृदय जगत क्षण भर के लिए सब कुछ भूल जाता है और एक ऐसे लोक मे पहुँच जाता है जहाँ सुख तो आनदप्रद होना ही है, पीडा का दशन भी मधुर लगता है।

विद्यापति के काव्य मे शृ गार रस ही अगी स्वरूप है, अन्य रस भी प्रसग स्वरूप आये हैं और उनकी सुदर अभिव्यक्ति हुई है किंतु 'रसराज त्रिभुवन सार' शृगार की बात कुछ और ही है। कहा गया है 'कविता करके तुलसी न लसे कविता लसी पा तुलसी की कला' उसी प्रकार विद्यापति की कला का स्पश पा शृगार स्वय सुशोभित हो उठा है। अत विद्यापति की काव्य कला शृ गार का भी शृ गार है।

विद्यापति पदावली मे सौंदय, प्रेम विनय और भक्ति के गीत हैं। गौडीय वैष्णव प्रभाव के कारण विद्यापति क वग प्रचलित गीतो में भक्ति रस का भी सचार माना गया है, उनमे कृष्णार्पित कामगधहीन प्रेम रस का पारावार है। किन्तु मिथिला प्रचलित गीता मे यह धारणा नही है। कमनाशा से लेकर नेपाल तक उनके गीता को लौकिक शृगार के रूप मे ही जन मानस ने अपनाया है। ये गीत शृगार रस मे कैसे सराबोर हैं, आइये देखें—

'विभावानुभाव सचारि सयोगात रस निष्पत्ति' भरत मुनि का यह सूत्र जितना प्राचीन है उतना ही मान्य भी। रसवाद का सिद्धात आज भी उतना ही सार्थक है, इसे वैज्ञानिक भी मानते हैं। सचमुच रस ही काव्य की आत्मा है। विभाव के दो स्वरूप हैं—आलम्बन और उद्दीपन। शृगार रस के आलम्बन विभाव हैं—नायक और नायिका। रसानुभूति के अनुसार नायक या नायिका आलम्बन या आश्रय होते हैं। विद्यापति ने नायक और नायिका दोनों को ही आलम्बन और आश्रय के रूप में चित्रित किया है क्योंकि कभी प्रणयानुभूति नायक मे होती है तो कभी नायिका म।

उद्दीपन विभाव है—भावो को उद्दीप्त करने वाले साधन जैसे वय संधि, यौवन, सौंदय, ऋतु परिवतन तथा प्रकृति के अन्य अवयव। मुस्कान, स्वेद, कप आदि अनुभाव हैं और सचारी भावो की सख्या तो तैंतीस हैं जिनमे स्मति, हष, औत्सुक्य, व्रीणा, विस्मय, सकोच आदि प्रमुख हैं। रस के इन्हीं अवयवों का प्रयोग जिस कवि मे जितना ही सफल होता है, रस की दष्टि से वह कवि उतना ही श्रेष्ठ होता है। विद्यापति का एक शृगार प्रधान पद देखिये—

अवनत आनन कए हम रहलिहु, वारल लोचन चोर,
पिया मुख रुचि पिवए धावल जनि से चाँद चकोर।
ततहुँ सए हठि हठि मोब आनल धएल चरन राखि।
मधुप मातल उडएन पारल तइअओ पसारल पाँखि।
माधव बोलति मधुर वानी से सुनि मुदु मोयँ कान।
ताहि अवसर काम वामभेल धरि धनु पच बान।
तनु पसेव पसाहति मातल पुलक तइसन जागु।
चूनि चूनि भए काँचुअ फाटलि बाहु बलया भाँगु।
भन विद्यापति कपित कर हो बोलल बोल न जाय।
राजा शिव सिंह रूपनाराएन साम सुदर काम।

नायक अकस्मात नायिका के सम्मुख पड जाता है। अनुराग विह्वल नायिका तन मन की सुधि भूल जाती है। नेत्र दौडकर रूप-पान मे अनुरक्त हो जाते हैं। नायिका उन्हे खीचकर चरणो मे लगा देती है किंतु मधुमत्त भ्रमर की तरह वे बार बार अपने पख उठाने का प्रयत्न करते हैं। इसी समय कृष्ण मधुर वाणी मे कुछ कहते हैं। कामदेव पचशर से प्रहार करता है, पसीना छूटने लगता है, तन पुलकित हो उठता है फलस्वरूप कचुकी तार-तार हो जाती है और चूडियाँ चिटक जाती हैं। आनन्दविह्वल और लाजयुक्त मध्या नायिका के मुख से कोई शब्द नही निकलता। शृगार रस प्लावित कैसा अनूठा है यह पद। अनेक कवियो की पक्तियाँ तुलना के लिए दौड पडती हैं— गिरा अलिन मुख पकज रोपी',—तुलसी 'लाज लगाम मान ही नैना मो बस नहिं'—बिहारी तथा लोकगीतो मे प्रचलित—यौवनाव जार अगिया भसक गई, बालमा' आदि अनेक पक्तियो के भाव एक साथ साकार हो उठे हैं।

नायक के सम्मुख अनुराग विह्वलनायिका खडी है। उद्दीपन विभाव स्वरूप स्वय कामदेव पचबान प्रहार कर रहे हैं। स्वेद, रोमांच, कप, पुलक आदि अनुभावों की प्रदर्शनी लगी है। व्रीणा, सकोच, औत्सुक्य, हर्ष आदि सचारी भाव हैं। रस का पारावार आदोलित हो रहा है। सबसे अधिक चमत्कार तो कचुकी के तार-तार होने और चूडी के फूट जाने में है। लगता है बाहर के बधन को तोडने के लिए भीतर के यौवन और आनन्द के ज्वार ने आदोलन कर दिया हो। कौन ऐसा हृदयहीन होगा जिसके मन का जहाज इस सागर मे डगमगा कर डूब न जाय। यह तो एक नमूना है ऐसे अनेकों पद पदावली में भरे पडे हैं।

विद्यापति के काव्य मे सयोग और वियोग दोनों ही प्रकार के श्रृगार का पारावार प्रवाहित होता है। प्राय अन्य कवियो मे सयाग की अपेक्षा वियोग चित्र अधिक व्यापक और सजीव मिलता है किन्तु विद्यापति के काव्य मे वियोग की अपेक्षा सयोग के चित्र अधिक मिलते हैं। सयोग मे सान्निध्य और सान्निध्य मे रूप वणन और श्रृगार चेष्टाओ का व्यापक व्यापार होता है। यही कारण है कि विद्यापति ने अपने सयोग वणन मे नखशिख, सद्य स्नाता, यौवन, प्रेम तथा अभिसार आदि का सुन्दर चित्र खीचा है। सूर की जैसी पहुँच वात्सल्य मे है विद्यापति की वैसी ही श्रृगार मे। यदि सूर वात्सल्य का कोना-कोना झाँक आये हैं तो विद्यापति से भी श्रृगार का कोई कोना अछूता नही बचा है।

सयोग—विद्यापति पदावली का आलम्बन राधा हैं। वय सधि की देहरी को सकोच, जिज्ञासा और विस्मय के साथ पार कर वह यौवन के भवन मे प्रवेश करती है अचानक उनकी दृष्टि 'मनमथ कोटि मथन करने वाले कृष्ण पर पडती है। फिर क्या पूछना, रूप क आकर्षण से हृदय का प्रेम ज्वार फूट पडता है। प्रथम दशन मे ही व हृदय हार बठते हैं और एक दूसरे को अपना सवस्व दे डालते हैं। मिलन के लिये आतुर होते हैं, छटपटाते हैं छिप छिप कर मिलते हैं कभी घाट पर, कभी कुज मे, कभी कर पकडकर यमुना पार कराते हैं तो कभी नाव को बीच यमुना मे रोक देते हैं। और फिर जब स्वकीया रूप से मिलते हैं—तब तो कवि ने अपनी प्रतिभा के कैमरे से मिलन की सारी चित्रावली खीचकर रख दी

है और रूप चित्रण का काव्य सौंदय फूट पड़ा है।

प्रेम का बीज वय सधि के क्षण मे अकुरित होता है। नायिका की आँखें कणस्पर्शी होने लगती हैं, वचन मे चातुरी आ जाती है, दपण देखना स्वभाव बन जाता है, आँचल बार बार खिसकने लगता है, केश खुलकर बिखरने लगते हैं, यौवनाक बदर से नवरग की सीमा पार करने लगता है, कामदव भी अपनी वाटिका की रखवाली करने लगते हैं। शैशव और यौवन मे सघप छिड जाता है, द्वद्व की स्थिति में निणय कठिन है किंतु अन्त मे यौवन की विजय होती है, कामदेव दुदुभि घोष करते हैं और नायिका रूप का ज्वार ले यौवन की देहरी मे प्रवेश करती है।

सौंदय चित्रण मे तो कवि ने यौवन का 'एक्स रे' करके रख दिया है। 'पीन पयोधर दूबरि गता कनकलता' मे वह मेरुका फल दीखता है, 'सहजहि आनन सुदर भौंह सुरेखलि आँख' मे भौंहो को मदन के काजर धनु से जोडता है, 'किआरे नवयौवन अभिरामा' मे वह छहो अनुपम को एक साथ एकत्र कर देता है और भौंह तथा सुदर नासा पुट दिखाकर भ्रमर और कीर को लज्जित कर देता है। नखशिख चित्रण म कवि परम्परित उपमानो को ग्रहण तो अवश्य करता है किंतु अपनी अनोखी प्रतिभा से उनका बासी-पन दूर कर एक नई ताजगी प्रदान करता है।

वय सधि मे भाव जागति और अग विकास, सौंदय मे अदभुत आकषण और फुटकर मिलन जैसे—'कुजभवन् ते निकसल रे रोकल गिरधारी' तथा 'नाव डोलाय अहीरे' आदि मे तो कवि ने सुदर भावो की झाँकी प्रस्तुत कर दी है, मान और अभिमान मे उसके प्रभाव को गहराई तक प्रेम की तीव्रता प्रदान की है किंतु मिलन प्रसग मे शृगार चेष्टाओं का प्रेम के रग मे भावानुभूति की कलम डुबोकर जो शाश्वत इतिहास लिखा है वह समग्र साहित्य विश्व मे अकेला है—देखिये—

सुन्दरि चलिलहु पहुँ घरना, चहुँदिशि सखि सब कर धरना।
जाइतहु लाग परम डरना, जइसे ससि काँप राहु डरना।
जाइतेहु हार टुटिए गेलना, भूखन वसन मलिन भेल ना।
रोए-रोए अजर दहाए देलना, अदकँहि सिंदुर मेटाय देलना।

भनइ विद्यापति गाओल ना, दुख सहि सहि सुख पाओलना ।

(वै० पु० प०72)

विद्यापति सर्वपकाई हुई भय कातर नायिका को प्रबोध देत हैं कि सुख प्राप्त करने के लिए दुख प्राप्त करना आवश्यक है। साथ ही प्रथम मिलन मे दुख फिर बाद मे सुख का श्रृगारिक सकेत भी है। दूसरे दौर में सखियाँ 'मुनिहुं कचित नहो धीर' वाला श्रृगार कर नील वसन पहिना राधा को कृष्ण के पास ले जाती हैं और छोड देती हैं। कृष्ण राधा का हाथ पकडते हैं, घूघट उठाकर राधा का मुख, देखते हैं, धीरे-धीरे नव रस सचरित होने लगता है और अब दोनो के मन मे हुलास उठने लगता है। समवयस्क राधा-कृष्ण एक दूसरे के प्रेम और विलास मे लीन हो जाते हैं। फिर भी अभी सुरति भय राधा के मन मे बनी हुई है—

नहि नहि करए नयन ढर लोर, काँच कमल भमरा झकझोर।
जइसे डगमग नलिन कनीर, तइसे डगमग धनिक शरीर।

(वही—74)

नायिका बार बार अपने मुख को छिपाने का प्रयास करती है, किन्तु बादलो मे शशि छिप नहीं पाता। प्रियतम बरजोरी करना प्रारम्भ करता है और 'मोहर मुदल अछि मदन भडार' को खोलनेका प्रयास करता है और 'मदन पाठ' का प्रारम्भ होता है। बात-बात मे नायिका नही-नही करती है—'नहि नहि करई नयन भरि लोर, सूति रहल रहि सयनक ओर' किंतु नायक के अनुनय विनय का प्रभाव धीरे धीरे पडने लगता है और नायिका की स्थिति अन्दर से दक्षिण और बाहर से वाम है—'भनए विद्यापति नागर रामा अन्तर दाहिन बाहर वामा', प्रथम भोग विलास की ऐसी सूक्ष्म दृष्टि और रसमय चित्र विद्यापति का ही कमाल हो सकता है—सम्पर्क और अनुभव वृद्धि के साथ नायिका मुखर होने लगी और चतुराई भरे वचन भी उसके तिर्यक मुख स निकलने लगे—'ह हरि बले यदि परमय मोय, तिरि बध पातक लागए तोय' इतना ही नही—

सुनु सुनु नागर निवि बध छोर,
गाँठित नाहि मुरत धन मोर।

सुरत क नाम सुनल हम आज,
ना जानिए सुरत करए कौन काज।
सुरत क खोज करब जहाँ पाव,
घरकि अछए नहिं सखिरे सुघाव।
वेर एक माधव सुनि मझु बानि,
सखि सँय खोज माँगि देव आनि।
विनति करए धनि मा गए परिहार,
नागरि चतुर भने कवि कठहार।
(वही, 84)

चतुर नायिका कहती है सुरति हमारी गाँठ म नही, क्यो खोलते हो ? मैं पूछूगी ढूढूगी, सखियों से माँगूगी तब तुम्हें दूगी, मुझे छोड दो मेरे पास सुरति नही है। इस क्षेत्र म तो विद्यापति सम्भोग से भी आगे बढ़ गए हैं। यथार्थ के इस चित्रण के लिए तो रसिक उन्हें दाद देंगे और सामाजिक कोसेंगे—देखिए अग दर्शन लालसा और सकोच का यह द्वद्व—

निवि ब धन हरि किए कर दूर,
एहो पय तोहर मनोरथ पूर,
हेरेन कओन सुख न बुझ विचार,
बडतुहु ढीठ बुझल बनमारि।
हमर शपथ जो हेरई मुरारि,
लहु लहु तब हम पारब गारि।
बिहरि से रहस हेरन कौन काम,
सेनहिं सहबहिं हमर परान।
कहाँ नहिं सुनिए एहन परकार,
करए विलास दीप लए जार। (वही, 83)

इस प्रकार के अनेक मिलन प्रसग के चित्र विद्यापति ने प्रस्तुत किये हैं। सच पूछा जाय तो इनका मिलन प्रसग तो मधुयामिनी की मनोहर भाव कथा है। रूप यौवन, विलास और श्रृगार का ऐसा आस्वाद्य व्यापार अन्यत्र दुलभ है। नि सदेह विद्यापति सयोग के ऐसे अकेले कवि हैं और

इनकी पदावली अकेली कृति। रीतिकालीन कवियों की लाख दुहाई दी जाय किंतु प्रेम रस का ऐसा अछोर पारावार वहाँ कहाँ, वहाँ तो रस की छीटे मात्र हैं। वियोग के बाद मिलन का यह चित्र स्वय अपनी कथा कहता है—

सखि कि पूछव अनुभव मोय
ऐहो पिरीत अनुराग बखानत तिले तिले नूतन होय।
जनम अवधि हम रूप निहाररवु, नयन न तिरपित भेल।
से हो मधुर बोल स्रवनहि सूनल, श्रुति पथ परसन गेल।

सयोग चित्रण मे प्रकृति के उद्दीपन स्वरूप का भी प्रयोग कवि ने किया है। बसन्त के उत्फुल्ल वातावरण के साथ सभोग रत रमणियो का हृदय कज तो प्रफुल्ल होकर सुरभि बिखेरता ही है, कवि ने बिना भेदभाव के सभी प्रकार की तथा सभी वय की रमणियो को रास के लिए आमत्रित किया है—

नाचहु रे तरूनी तजहु लाज,
आएल बसन्त रितु वनिक राज।
हस्तिन चित्रित पदुमनि नारि,
गोरी साँवरी बूढि-वारि।

देखिये—कृष्ण भी यौवनोन्मत्त होकर किस प्रकार विहार कर रहे हैं—

नव वृन्दाबन नव नव तरुगन, नव नव विकसित फूल।
नवल बसन्त नवल मलयानिल, मातल नव अलि कूल।
बिहरई नवल किशोर।

इसके अतिरिक्त स्वप्नमिलन तथा आकस्मिकमिलन का चित्र भी देखा जा सकता है—

सुतलि छलहुँ हम घरवा रे, गरवा मोति हार।
राति जखन भिनु सखा रे, पिया आएल हमार।
स्वप्न मिलन— कर कौशल कर छपाइत रे, हरवा उर टार।
कर पकज उर थपइत रे, मुख चद निहार।
केहनि अभागिन बैरी रे, भागलि मोरि निन्द।
भलकए नहि देख पाओल रे, गुनमय गोबिन्द।

आकस्मिक मिलन—नहाइ उठल हम कालिन्दी तीर,
अगहि लागल पातल चीर।
ते बेकत भए सकल सरीर,
तहि उपनीत समुख यदु बीर।
विपुल नितम्ब अति बेकल भेल,
पालटि तापर कुन्तल देल।
उरज उपर जब देहल दीठ,
उर मोरि बैसलि हरि कर पीठ।
हँसमुख मोरए दीठ कन्हाइ,
तन-तनु झाँपइत झापल न जाई।

प्रसग और सौन्दय (गीला) का ऐसा कामुक चित्र दुलभ है। इन दोनो पदों की तुलना हम देव के पदो से कर सकते हैं—

स्वप्न—चाहत उठोई उठ गई री निगोडी नीद,
सोइ गए भाग मेरे जागवा जगन मे।

सद्य स्नाता—पीत रग सारी गोरे अग मिल गई देव,
श्रीफल उरोज आभा आभासी अधिक सी।

+ + +

नीबी उकसाय नेकु मुख मुसकाय हँसि,
ससि मुखी विहँसी सरोवर ते निकसी।

सारांश यह है कि विद्यापति का सयोग वर्णन अत्य त उत्कृष्ट, व्यापक, सहज और रससिक्त है। इसमे भाव और कला का अद्‌भुत सम वय है। रूप के अगाध सौन्दर्य सागर के साथ साथ मानव हृदय की अ तव त्तियो का सूक्ष्म एव स्वाभाविक चित्रण है। प्रेमाकुरण से सयोगावस्था के बाह्य एव भीतरी जितने भी चित्र सभव हो सकते हैं सब का चित्रण अत्य त कौशल के साथ विद्यापति के काव्य मे हुआ है। वस्तुत विद्यापति का सयोग वर्णन अपरिमेय है।

वियोग वणन—वियोग के शृग से काव्य का निर्झर फूटता है। जिस प्रकार निझर मे वेग, प्रवाह, गति, तरलता और निमलता होती है उसी प्रकार वियोगजनित गीतो मे भावो की निर्मलता, ममस्पर्शी वेग और

प्रेम की तरलता होती है। अश्रु से गीले गीत अधिक मधुर होते हैं— 'आवर स्वीटेस्ट साग्स आर दोज दैट टेल आफ दि सैड्डेस्ट थाट'— शेली। घनीभूत पीडा ही गीत बन कर निसृत होती है। जो गीत जितना शोक सवेद्य होता है, वह उतना ही मधुर होता है। 'सुख एकातिक होता है उसमे व्यक्ति खो जाता है, दुख व्यापक होता है, उसमे विश्व लीन हो जाता है।' यही कारण है विरह विगलित गीतो मे हृदय को स्पर्श करने की क्षमता अधिक होती है। वियोगावस्था मे प्रेम भोग का अभाव राशिभूत हो जाता है। वास्तविकता यह है कि वियोग प्रेम के विस्तार के लिये बहुत बडा अवकाश निकाल लेता है और विरही की भावना कण-कण मे व्याप्त हो जाती है।

विद्यापति वियोग चित्रण मे भी अत्यत कुशल हैं। उनका एक वियोग चित्र प्रस्तुत है—

कुद कुसुम भरि सेज सुहाओन, चाद अँजोरिया राति।
तिला एक सुपहुँ समागम पाओल मास बरस भेल माति।।
हरि कइसे पलट मधुरपुर जाएब पुनि कइसे भेटव मुरारि।
चिता जाल पडल हिरनि सम, किकरति विरहिन नारि।।
एक भमर भमि बहुत कुसुमरणि, कतहुँ न ओकर व ध।
बहु बल्लभ सँ आसिनेह बढाओल, पडल हमर अपराध।।
दिवसे दिवसे बियाध अधिकाएल, दारुन भेल पचबान।
आओर बरखकत आस गमाओब ससअ परल परान।।
भनइ विद्यापति सुनु वर जौवति मन चिता कए त्याग।
अचिर मिलत हरि रहू धैरनधरि सुदिन पलटए भाग।।

(—मि०म०प० 523)

बहुवल्लभ सामती युग की नारी की हृदय व्यथा इस पद में मुखर हो उठी है। नायिका घर मे सेज सजाकर बैठी है। पूर्णचद्र अपनी रजत ज्योत्सना बिखेर रहा है। अकेली बैठी बेचारी नायिका अपने भाग्य को कोस रही है कि उसने बहुवल्लभ से प्रेम क्यो बढाया? सामती मानसिकता देखिये—क्या एक ही भ्रमर अनेक पुष्पो से रसपान नही कर सकता, इस काय मे कौन बाधा दे सकता है। चाँदनी रात उसके मन मे व्यथा भर

देती है। विद्यापति उसे धैर्य रख प्रतीक्षा करने की सलाह देते हैं कि जब सुदिन आयेगा तो उसके भाग्य पलट जायेंगे।

वियोग के अश्रु से गीत का प्रत्येक अक्षर सजल है, व्यथा साकार हो उठी है। भावगांभीर्य और परिपेक्ष्य ने इस गीत को रस की दृष्टि से अद्वितीय बना दिया है। यह पीड़ा सामन्ती युग की तमाम नारियों की है, जो बहु वल्लभों से प्रेम करती हैं। पद में नायिका आश्रय है, स्मृति, विषाद आदि संचारी हैं, चाँदनी रात उद्दीपन विभाव है। उपेक्षा और विवशता की व्यापक पृष्ठभूमि ने रसानुभूति को अधिक सान्द्र और सामान्य बना दिया है।

वियोग शृंगार की चार अवस्थाएं मानी गई हैं—पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण। प्रथम तीनों अवस्थाओं का विशद चित्रण विद्यापति के काव्य में हुआ है किन्तु करुण वियोग के चित्रण का प्रायः अभाव है। प्रथम तीन अवस्थाओं में प्रवास का चित्र अपेक्षाकृत अधिक सजीव और मर्मस्पर्शी है—

(क) पूर्वराग—

सामर सुंदर ए बाट आएल तें मोरि लागल आँखि।
आरति आचर साजन भेले सब सखि जन साखि॥
\+ \+ \+
कि मोरा जीवन, कि मोरा जौवन, कि मोरा चतुरपने।
मदन बान मुरछलि अछओं सहओं जीव अपने॥
\+ \+ \+
सुरपति पाए लोचन माँगओं गरुण माँगओं पाँखि।
नन्दक नन्दन हौं देखि आवओं, मन मनोरथ राखि॥

कृष्ण के सौन्दर्य पर रीझकर नायिका सुरपति से लोचन और गरुण से पंख माँगने की कामना करती है। पूर्व राग में मिलनोत्कंठा इस पद की विशेषता है। (रामवृक्ष बे०पु०प० 39)

(ख) मान—मान के भी चित्र पदावली में अनेक हैं। आचार्य द्विवेदी के अनुसार विद्यापति की राधा मान करना नहीं जानती, वह तो कृष्ण को देखकर भावविह्वल हो जाती है और उसका सारा मान पिघल जाता है।

फिर भी देखिये सखी कहती हैं—

राधा का मान—

मानिनि आब उचित नही मान ।
एखनुक रग एहन सग लगइछ, जागल पए पच बान ॥
जूडि रमन चकमक करु चाँदनि, एहन समय नहिं आन ॥
एहिं अवसर पिय मिलन जेहन सुख, जकरहिं होए से जान ॥
(वही, 147)

कृष्ण का मान—

राधा-माधव रतनहि मदिर निवसय सयनक सुख ।
रस रस दारुन दद उपजल कान चलल तब रूस ॥
नागर अचल कर धरि नागर, हँसि मिनती कर आधा ।
नागर हृदय पाँच सर हनलक, उरजि दरसि मन बाधा ॥

किन्तु दोनो ही पदो मे मान की प्रधानता न होकर मिलन सुख का ही स्वर प्रमुख है। दोनो का प्रेम इतना प्रबल है कि मान का भाव बीच मे ठहर नही पाता।

(ग) प्रवास—प्रवास के चित्र विद्यापति के काव्य मे अपेक्षाकृत प्रभावशाली और व्यापक हैं। राधा को प्रिय के जाने का सदेश मिलता है। वह अपनी सखी से कहती है—

सखि रे बालम जितव विदेस,
हमरा रग रभस लए जएबहे, लए बहे कौन सन्देश।

कृष्ण समझाने-बुझाने का प्रयास करते हैं कि तु राधा को धैय कहाँ ?

कानमुख हेरइते भावन रमनी फुकरइ रोयत झर झर नयनी।
अनुमति माँगिते वरविधु वदनी, हरि हरि शब्दे मुरछि परि धरनी।
आकुल कत परबोधइ कान, अवनहि माथुर करब पयान ॥

किन्तु कृष्ण चले गये। प्रथम विछोह की घडियाँ प्राण लेवा हो गई हैं, रक का धन खो गया है, सारा ससार सूना हो गया है, आशा की डोर मे प्राण बँधा हुआ है। आँखें सूजकर लाल हो गई हैं, दिन गिनते गिनते ऊँगलियाँ घिस गई हैं। राधा की मरणासन्न अवस्था देखकर सखी मथुरा जाती है और राधा की विरह दशा बताती है—

लोचन नीर तटनि निरमाने, ततहिं कलामुखी करए सिनाने।
वेरि एक माधव तुइ राइ जीवई, जओ तुअ रूप नयन भर पीवई।

प्रेम की पीर दोनो हृदयो मे समान है, दोनो वियोग की अग्नि मे जल रहे हैं। यह विद्यापति के विरह वर्णन की विशेपता है। यह सस्कृत साहित्य का प्रभाव है या अनुभव का यथाथ स्वरूप, कौन बताये ?

राधा की दशा सुन कष्ण मुच्छित होकर गिर पडते हैं और अस्फुट वाणी मे वे जो कुछ कहते हैं उसे भलाया नही जा सकता—

रामा हे से किय विसरल जाई।
करे धरे माथुर गनुमति मगइते, त तहिं पडल मुरछाई।
किछु गद गद सो लहु लहु आखरे, जे किछु कहल वर वामा।
कठिन कलेवर तेजि चलि आएल, चित्त रहल सोई ठामा॥

तुलसी वर्णित राम वियोग से इसकी तुलना की जा सकती है—'तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा, जानत प्रिया एक मन मोरा। सो मन रहत सदा तुइ पाही, जान प्रीति रस एतनेहि मोही।'

विरह जनित अनेक अनुभूतियो से कवि का भडार भरा हुआ है। कभी राधा को सूनी सेज सालती है ता कभी छाती फटती है तो कभी बिछुडी हुई चाँद चकोर की जोडी को मिलाने के लिये कनक कटोरे मे काक को खीर खाँड दी जाती है और कभी विह्वल होकर राधा कह उठती है—

सरसिज बिनु सर, सरबिनु सरसिज की सरसिज बिन सूरे।
जीवन बिनु तन, तन बिनु जौवन की जौवन पिय दूरे।

(वही—191)

परिणामत 'लोचन धाय फेनाएल हरि नहि आएल' की अभिव्यक्ति होने लगती है और राधा का हृदय पुकार उठता है—'मखि मोर पिया अबहु ना आओल कुलिस हिया', आशा की लता जो नयनो के नीर से राधा ने सीचा है वह अब तरुण हो गई है और आँचर मे समा नही रही है। ऐसी विपन्न स्थिति मे कभी तो राधा 'जीवन रूप अछलि दिन चार' का उलाहना देती है तो कभी उनके मगल की कामना करती है— जुग जुग जियथ वसथु लाख कोस, हमर अभाग हुनक नहि दोस' और जब वसन्त

आता है कोयल पचम तान छेडने लगती है तब तो विरह असह्य हो जाता है—शरद की चांदनी, फूलो की बहार, मोर की आवाज और कोयल की कुहू सभी हृदय की वेदना को बढाने लगते है—

फुटल कुसुम नव कुज कुटिर बन, कोकिल पचम गावे रे। मलयानिल हिम सिखर सिधारल पिया निज देश न आवे रे। चनन चान तन अधिक उतापए, उपवन अलि उतरोल रे। और फिर क्या पूछना है राधा के दुख का ओर छोर नही है—'सखि रे हमर दुखक नही ओर' निराश होकर वियोगिनी अपने अग लावण्य को अन्य प्रकृतिज य वस्तुओ को सौंप देती है और कामना करती है कि उसे पुन नारी जीवन न मिले और यदि मिले तो रसिक पुरुष से उसका प्रेम न हो—

जनम होअए जनु जौं पुनि होई, जुवती भय जनमए जनि कोई।
होइ जुवति जनु हो रसमति, रसओ बुझए जनु हो कुलमति।
इथन मागओ विहि एक पए तोहि थिरतादिहह अवसानहु मोहि।

इन पक्तियो मे कुलवन्ती नारी के सम्पूर्ण जीवन का वियोग निष्कर्ष मानो मुखरित हो गया है, जिसमें अनुभूत पीडा का स्वर प्रधान है।

भारतीय काव्य शास्त्र मे विरह की दस अवस्थायें मानी गई हैं—स्मरण, गुणकथन, अभिलाषा, मूर्च्छा, व्याधि, उद्वेग, प्रलाप, जडता, उन्माद और मरण। इन सभी दशाओ से होकर विद्यापति के काव्य विरहिणिया को गुजरना पडा है। वल्कि यदि ध्यान से देखा जाय तो ये सख्या दस से अधिक भी हो सकती हैं—कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(1) लोचन धाय फेनाएल हरि नहिं आयल (स्मृति) (2) सिव सिव जिवयो न जाए आस अरुझाएल रे, (मरण) (3) मन करे तहाँ उड जाय, जहाँ हरि पाइअ रे, (अभिलाषा), (4) प्रेम परस मनि जनि उर लाइअ रे (गुण कथन), (५) नहि बहे नयनक नीर मुरछि पडे तीर (मूर्च्छा), (6) किछु उपचारन माधव आन, एहि वियाध अधिक पच बान (व्याधि), (7) एखन तखन करि दिओस गमाओल छोडल जीवन आसा (उद्वेग), (8) सीसव सेन्दुर सजनि दूर कर पिय बिन सकल सिंगार (प्रलाप), (9) अनखुन माधव-माधव सुमरइत सुन्दरि भेल मधाई (उन्माद), (10) किछु गद गद सो लहु-लहु आखरे (जडता)।

वियोग वणन के लिए विद्यापति ने बारहमासा पद्धति का भी प्रयोग किया है। यह पद्धति शैली बहुलता, अधिकार तथा प्रकृति के उद्दीपन स्वरूप की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है देखिए—*मास असाढ उनत नव मेघ पिया* विसलेप रहओ निरथेघ। साओन मास बरस घन वारि पथन सूझे निसि अधियार। भादव मास बरसि घनघोर समदिसि कुहुकए दादुर मोर। चेहुक चेहुक पिया कोर समाय गुनमति सूतल अक लगाय। आसिन मास आम घर चीत, नाहनिकासन न मेलह हीत। कातिक कत दिगतर वास, पिय पथ हेरि हेरि मेलहु निरास। अगहन मास जीव के अत, अबहुन आएल निरदय कत। पूस खीन दिन दीरघ राति। पिया परदस मलिन भेल काति। माघ मास घन पडए तुसार, झिलमिल केचुआ उनत घन हार। फागुन *मास धनि जीवन उचाट विरह विखिन भेस हेरओ वाट।* चैत चतुरपन प्रिअ परवास, माली जाने कुसुम विकास। बसाख तपे खर मरन समान कामिनि कत हनए पचबान। जेठ मास अजर नवरग, कत चहए खलु कामिनि सग। इसमें सदेह नही कि इस प्रकार के प्रयोग परम्परा पालन तथा कौशल प्रदशन के लिए किये जाते हैं। इनमे गणित की प्रधानता के कारण हृदय की वह तन्मयता और रसप्लावन नही मिलता है जैसा अन्य पदो मे है।

लोकभाव, लोकवाणी और लोकगीतो के रूप मे हृदय को छूने वाले विरह गीतो का भी पदावली मे अभाव नही है ये गीत लोक हृदय से निकलने के कारण अधिक प्रभावशाली और ममस्पर्शी हैं।

(क) विपत अपत तरु पाओल रे। पुन नव नव पात
विरहिन नयन विहल विहि रे, अविरल बरसात।

(ख) आएल उन्मद समय बसन्त, दारुन मदन निदारुन कन्त।

(ग) के पतिया लएजायत रे मोरा पियतम पास।

(घ) मोरा रे अगनवा चनन कर गछिया, तो चढ कुररए काग र।

आदि

विद्यापति पदावली म ऐसे विरह चित्रो की भरमार है जो विभिन्न मनोदशाओ का रसमय एव कलात्मक चित्र खीचकर पाठक को भाव विभोर कर देते हैं। रीतिकालीन और उर्दू के कवियो की भाँति विद्यापती

का वियोग शृंगार ऊहात्मक या मात्र चमत्कारिक नही है। देखिये बिहारी की नायिका साँसा की डोर पर झूला झूलती है। उर्दू का कवि कहता है—इन्तहाए लागरी मेज बन जा आया न मैं, हँस के फरमाने लगे बिस्तर को झाडा चाहिये। इस प्रकार की अभिव्यक्तियों म क्षणिक चमत्कार तो अवश्य है पर विश्वसनीयता और रसमयता नही।

मैं समझता हूँ कि यह कथन विद्यापति का वियोग सयोग की अपेक्षा दुबल है, उचित नही है। इनम सयोग वियोग समतुल्य है, हाँ अन्य कवियो मे वियोग अधिक पाया जाता है और सयोग कम। विद्यापति ने स्वय भी दोना प्रकार के जीवन का प्रचुर उपभोग किया था। डॉ० जयकान्त मणि कहते हैं—'सूर मे भावो की विविधता सभवत विद्यापति से अधिक है पर वियोग जजर, हताश क्षीण, शिथिल, मरणासन्न, स्तब्ध विहरिणी का वह रूप सूर मे कहा है जो विद्यापति मे है। विद्यापति ने जो करुण, कातर, सिसकिया भरा अश्रुगीला, क्षण क्षण क्षीण होता तारुण्य उपस्थित किया है सूर मे उसकी छाया भी नही आई है।' लेखकीय भावुकता की गुजाइश के बावजूद भी इस कथन मे सत्यता है।

साराश यह है कि विद्यापति के काव्य मे शृगार रस के उभय पक्षो की पूण अन्विति हुई है। शृगार के दोनो पक्ष अपने पूण वैभव के साथ अभिव्यक्त हुए हैं। उनमे भाव प्रवणता और कौशल का श्रेष्ठ समन्वय है। परम्परा और शास्त्रीय विधान को कवि ने अपने मौलिक रगो से सजाया है और पाठको के लिए शृगार का अमर स्रोत प्रवाहित किया है।

शृगारेतर रसों की योजना—विद्यापति मूलत शृ गार के कवि हैं किन्तु वीर, हास्य, रौद्र, करुण, वीभत्स, अदभुत आदि रसो की भी व्यजना प्रसगत इनके काव्य मे हुई है इन रसो मे हास्य और वीर रस प्रमुख हैं और अन्य रस गौण।

वीर—अवहटठ भाषा मे रचित कीर्तिलता और कीर्तिपताका मे वीर रस की व्यजना करने वाले ओजस्वी स्थलो की कमी नही है। उदाहरणाथ दो प्रसग उद्धरित हैं प्रथम मे युद्ध का तथा द्वितीय मे विजयोल्लास का चित्र अकित है—

(क) दुहुदिसि पोखर उँठ माझ सग्गाम भट्ट हो।
खग्गे खग्गे सघलिअ, फुलुग उपफल्लइ अग्नि को।
अस्सवार असिधार तुरअ राउँत सम टुटटई।
बलक नज्ज निधात काअक वचहु समो फुट्टई।
अरि कुजर पजर सल्ल रह, रुहिर धारे गए गगण भर।
गए कित्ति सिंह को कव्य रसें वीर सिंह सग्राम कर।

(ख) दुग्ग दुग्गम दमसि भजेओ। गढ गढ़ गूढीय गजेओ।
पातिसाहु ससीम सीमा—समर दरसेओ रे।
\+ \+ \+
तरल तर तरू आर रगे विज्जुदाम छटा तरगे।
घोर घन सघात वारिस, काल दरसेओ रे,
\+ \+ \+
देव सिंह नरेन्द्र नन्दन सत्रु मरवइ कुल निकन्दन।
सिंघ सम सिव सिंह राजा सकल गुणक निधान गनिओ रे।

इन पदों के प्रत्येक शब्द ओज तथा वीर दप से ओत् प्रोत हैं। उत्साह की धारा इन पदो से प्रवाहित है। खड्गो के सघष से अग्नि की धारा। अरि कुजर पजर मे तलवार का घुसना, रुधिर से गगन मण्डल का भर जाना, सेना रूपी घटा मे तलवार रूपी बिजली का चमकना वीर रस का समग्र वातावरण उपस्थित करता है। इसी प्रकार शिव सिंह का शेर की भाँति झपट कर किले को जीत लेना, युद्ध का यथातथ्य चित्रण—पृथ्वी का अरिमुडो से पट जाना, राजा का यश धवल चन्द्रिका की भाँति प्रकाशित होना शौर्य और उल्लास का भव्य वातावरण उपस्थित करता है। वीर रस के पूर्ण परिपाक के लिए आवश्यक सामग्री इन पदो मे उपलब्ध है।

हास्य—शिव पार्वती का प्रसग हास्य का अच्छा उदाहरण है—

भकर-भकर जे भाँगि भकोसथि, घटर पटरु कर गाल।
चानन सो अनुराग न थिक इन, भसम चढ़ावत भाल।

अथवा

एहि विधि व्याहन आयो एहन बाउर जोगी।
टपर टपर कए बसहा आएल खटर खटर रुण्ड माल।

भकर भकर सिव भाँग भकोसथि, डमरू लेल कर लाय।

शात—हरिजन विसरबि मो ममिता, हम नर अधम परम पतिता।
तुअ सम अधम उधार न दोसर, हम सन् जग नहि पतिता।

अद्भुत —जय जय शकर जय त्रिपुरारि, जय अध पुरुष जयति अध नारि।

करुण—तातल सैकत वारि विदु सम सुत वित रमनि समाज
तोहें विसारि मन ताहे समरपिनु, अब मझु होवे कौन काज!
माधव हम परिनाम निरासा।

रौद्र वीभत्स—इन रसो के परिपाक के साथ ही विरोधी रसो को एक ही पद मे सफलता पूवक निवहिल करना विद्यापति जैसे महान को ही लेखनी का कमाल हो सकता है—दुर्गा बदना मे देखिए—

बासर रैनि सवासन सोभित, चरन चद्रमणि चूडा।
कतओक दैत्य मारि मुख मेलसि, कत सो उगिल केल कूडा।
सामर वरन नयन अनुरजित, जलद जोग फुल कोका।
कट कट विकट ओठ पुट पाँडरि, लिधुर फेन उठ फोका।

विद्यापति के रस चित्रण म वात्सल्य रस का अभाव है। भक्त के रूप मे गगा और दुर्गा स्तुति म 'माँ' शब्द के प्रयोग से वात्सल्य का पुट तो अवश्य मिल जाता है किन्तु उनमे शात तथा अन्य रसो की ही प्रधानता है। बगाल प्रचलित विद्यापति के पदो म भक्ति रस का भी उद्रेक है किन्तु मिथिलावासियो को इस पर विश्वास नहीं। साराश यह है कि विद्यापति मूलत शृगार रस के कवि हैं अन्य रसो का प्रयोग उन्होने प्रसगवश किया है किन्तु उनके काव्य की आत्मा शृगार ही है।

कला पक्ष—भाव काव्य पुरुष और कविता कामिनी की आत्मा है। भाषा इसे शब्द योजना का रूप प्रदान कर अर्थ से उसका प्राणाभिषेक करती है, छद विधान उसके सुघर शरीर की रचना करता है, अलकार उसमे भन-सरसिज को विकसित कर सौरभ बिखेरने के लिए प्रेरणा देता है और आभरणों से उसकी काया को अलकृत कर नाना भाति से उसके रूपश्री की अभिवृद्धि करता है। यही है काव्य का अतरग और बहिरग,

भाव तथा कला पक्ष—इनका श्रेष्ठ सम न्वय ही कला और कलाकार की कसौटी है।

कवि विद्यापति काव्य कला के अदभुत पारखी थे। उनके काव्य की पृष्ठभूमि मे अनेक प्राचीन भाषाओ की सुदीघ काव्य परम्परा का अपार वभव था एव कुलीन विद्वत परिवार एव परिवेश की प्रचुर साहित्य-सामग्री। अनेक पीढियो की सम्प न और विलासप्रवण राज शक्ति सबध ने उनकी अत द ष्टि को अनुभव की कसौटी पर कसकर और लोक-जीवन के फिल्टर मे छानकर निखारा था। हस की भाँति कवि ने नीर-क्षीर विवेक कर जन-मानस के मानसरोवर स मोती के दाने चुनकर प्रेम और सौंदय की जयमाल बनाई और उसे रसिक शिरोमणि राधा कृष्ण के गले मे डालकर उनके अपूव सौंदय का मिश्र शृ गार किया और उन्हें प्रेम की अद्भुत डोर मे बाँध दिया। प्रेम और शृ गार का यह जयमाल बाध ऐसा चिरजीवी है कि 600 वष व्यतीत हो गए कि तु उसके पुष्प मलिन नहीं हुए। बल्कि उनका रग और चटक होता जा रहा है। विद्यापति की कालजयी काव्य कला की श्रेष्ठता का इससे सु दर और ग्राह्य प्रमाण और क्या हो सकता है।

भाषा—विद्यापति पदावली की भाषा सबधी मतैक्य का अभाव रहा है। जितना विवाद इनकी भाषा को लेकर हुआ है उतना शायद किसी और कवि की भाषा पर नहीं। बगला, मथिली और हि दी वाल इ हें अपनी-अपनी ओर खीचने का प्रयास करते रहे हैं। बाबू नगे द्रनाथ गुप्त जो प्राच्य विद्या के महार्णव कहे जाते हैं मैथिली को हि दी की एक शाखा माना है। उनका कथन है कि मैथिली का शरीर हिन्दी का और उसकी पोशाक बगला का है जिस प्रकार कोई हि दुस्तानी अंग्रेजी पोशाक पहनकर अंग्रेज नहीं बन जाता उसी प्रकार मथिली भी हि दी को छोडकर बग भाषा की नही बन सकती है। बगला के ससग से उसमे अतिरिक्त मिठास अवश्य आ गई है।

श्री रामवक्ष बेनीपुरी का मत है कि—'कुछ मैथिल महाशय इन पदों की भाषा को तोड-मरोडकर आजकल की मथिली बोली स मिलाने का अनुचित प्रयास करते हैं। ऐसा करना कवि की आत्मा को कष्ट पहुँचाना

होगा। इनकी भाषा की दुर्दशा खूब हुई है—बंगालियों ने उसे ठेठ बंगला का रूप दे दिया है, मोरंग वालों ने मोरंग का रंग चढ़ाया है, बाबू ब्रजनंदन सहाय ने उस पर भोजपुरी की कलई की है और आजकल के मैथिल उस पर आधुनिक मैथिली का रंग चढ़ा रहे हैं। भगवान इनकी कोमलकांत पदावली की रक्षा करे।'

भाषा विवाद संबंधी गहराई मे जाने से इस विवाद के तीन कारण निकलते हैं—

1 विद्यापति के समय तक भाषाओं और बोलियो के स्वरूप में पर्याप्त समानता थी अत थोड़े प्रयास और कलई से एक भाषा को दूसरी भाषा सिद्ध किया जा सकता था।
2 विद्यापति के प्रभावशाली व्यक्तित्व और कवित्व के कारण दूसरी भाषाओ के लोग भी उन्हें अपना कहने मे गर्व का अनुभव करते थे और उसके लिए नियोजित प्रयास करते थे।
3 विद्यापति का जन्म दरभंगा (द्वार बंग) में हुआ था जिसके कारण बंगला का मिश्र प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। मेरी दृष्टि मे विद्यापति की भाषा हिन्दी है क्योंकि मैथिली का शब्द भंडार हिन्दी का है और उसमें रूप और धातु साम्य का भी अभाव नहीं है।

विद्यापति ने 'देसिल बयना अवहट्ठ भाषा का प्रयोग किया है। डॉ० चटर्जी इसे शौरसेनी अपभ्रंश तथा शिवनन्दन ठाकुर मागध अपभ्रंश से प्रभावित मानते हैं। ब्रजबुलि प्रभाव से भी इन्कार नही किया जा सकता। मैथिली और बंगला दोनो का ही जन्म मागधी प्राकृत से माना जाता है। किन्तु मगध की भाषा पर अर्द्धमागधी प्राकृत का प्रभाव बौद्धकाल से माना जाता है जिससे अवधी का जन्म हुआ है। कालांतर मे मैथिली अवधी के अधिक निकट हो गई और हिन्दी की सगी बन गई।

कवि शब्द का शिल्पी होता है वह केवल अनुकरणकर्त्ता नही होता। युग प्रभाव मे वह अन्य भाषाओं के शब्दो को भी ग्रहण करता है। संस्कृत प्राकृत, अवहट्ठ आदि के शब्दो का प्रयोग तो कवि ने किया है मुस्लिम सम्पर्क से आने वाले शब्दों को भी स्थान दिया है। तुलसी की भाँति

विद्यापति का तत्कालीन मिथिला प्रचलित समस्त भाषाओं और शैलियों पर अधिकार था। सस्कृत के तो वे महान पडित थे, प्राकृत और अपभ्रश उनकी चेरी थी। अवहट्ठ रचनायें प्रमाण हैं और मैथिली में पदावली की रचना तो अप्रतिम है। विद्यापति भाषा की दृष्टि से क्रातिकारी कवि थे। अपने भावो को लोक जीवन मे सवव्यापी बनाने के लिए उन्होने वह क्रातिकारी कदम उठाया जिसका अनुसरण बाद मे तुलसी ने किया। काव्य की भाषा को लोकोपयोगी बनाने का श्रेय महाकवि विद्यापति को है। वे वस्तुत दरबार मे रहते हुए भी लोक जीवन से सम्बद्ध थे और सच्चे अर्थों मे लोक भाषा के जनक और लोकप्रिय लोककवि थे। उनका साहसिक कदम 'लीक छोड तीनो चले सायर सिंह सपूत' का उद्घोष है।

विद्यापति की भाषा के सबध मे प्रचलित हैं—

बालचन्द विज्जावइ भाषा, दुइ नहिं लग्गई दुज्जन हासा।
ओ परमेशर हर सिर सोहइ, इ णिच्चिय नाअर मन मोहई।

विद्यापति पदावली की भाषा की प्रमुख विशेषता है उसका अपूव माधुय एव अदभुत कोमलता। इसमे विद्यापति ने जयदेव का अनुसरण किया किन्तु लोक भाषा के प्रयोग के कारण वे उनसे भी आगे निकल गए हैं। क्योंकि लोक भाषा मे सयुक्ताक्षरो और समास पदो का अभाव होता है उसमे लोक जीवन की सहज सुगन्ध और मिठास होता है— मोरा रे अगनवा चानन केर गछिया' या 'अब न बजाव विपिन बँसिया' आदि पदो मे भाषा के अपूर्व मिठास का आस्वादन किया जा सकता है। काव्य भाषा की दृष्टि से विद्यापति की भाषा मे इन गुणो की विशेषता है—

(क) सप्रेषणता—कवि जो कुछ भी कहना चाहता है उसे अधिकार पूवक अपनी भाषा शक्ति से व्यक्त कर देता है। भावो की सफल एव सहज अभिव्यजना उनकी विशेषता है। प्रस्तुत पद मे विरहिणी नायिका के हृदय का भाव साकार हो उठा है—

काक भाख निज भाखह रे, पहुँ आवत मोरा।
खीर-खाँड भोजन देव रे, भरि कनक कटोरा।

(ख) सगीतात्मकता एव ध्वन्यात्मकता—लय और नाद का अद्भुत समन्वय विद्यापति के गीतो मे मिलता है। उनके सभी गीत रागबद्ध हैं

और उनका विधान सगीत शास्त्र के अनुकूल है। लय, सगीत, नाद से सबधित कुछ पक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—पाठक स्वय निर्णय कर लेंगे—

1 सुनु रसिया अब न बजाउ विपिन बँसिया।
बार बार चरनाविंद गहि, सदा रहब बन दसिया।
रा०वृ० बेनीपुरी, पदावली 287

2 नन्दक नन्द कदम्बक तरु तर धिरे धिरे मुरलि बजाव।
समय सकेत निदेसनि बइसल बेरि बेरि बोल पठाव।
वही, 401

3 बाजत द्रिग द्रिग धीद्रिम द्रिमिया।
नटति कलावति भाति स्याम रग, कर करताल प्रबन्धक ध्वनियाँ
डम डम डफ डिमिक डिमि मादल, रुन झुन मजिर बोल
किंकिन रन रनि बलआ कनि कनि निधुवन रास तुमुल उतरोल।
बीन रबाब मुरज स्वर मडल, सरिगम पधनिसा बहुविधि भाव।
घटिता-घटिता धुनि मृदग गरजति, चचल स्वर मडल करू राव।
वही, 84

(ग) चित्रमयता—भाव और रूप दोनो का चित्र पाठक के मानस-पटल पर खीच देने मे कवि अत्यन्त सिद्धहस्त है। शब्दो के सहारे कवि की कल्पना साकार होकर पाठक के सम्मुख झूमने लगती है—

जोरि भुज जुग मोरि बेढल, ततहि बदन सुछन्द।
दाम चम्पक काम पूजल, जइसे सारद चन्द।
उरहि अचल झाप चचल, आध पयोधर हेरू।
पोन परामव सरद घन जनि, बेकत कएल सुमेरू।

नायिका स्नान कर तालाब से बाहर निकल रही है कृष्ण अचानक सामने पड जाते हैं। इस अवसर पर नायिका के मन के भाव और अगों के छिपाने की तत्काल चेष्टायें साकार हो उठी हैं।

(घ) शब्दों का सफल प्रयोग—विद्यापति शब्दो के मर्म से परिचित थे। शब्द शक्तियो का उन्हें पूर्ण ज्ञान था और सबसे अधिक कमाल हासिल था उन्हें उनके वांछित प्रयोग मे। शैली न तो कविता की सर्वोत्तम शब्दों

का श्रेष्ठतम क्रम कहा है। यह बात विद्यापति के शब्द प्रयोग पर पूर्णतया चरितार्थ होती है। देखिये—

1 कामिनि करए सनाने हेरतहि हृदय हने पच बाने।

2 तितल वसन तन लागू मुनिहु क मानम मनसिज जागू।

3 कतन वेदन मोहि देसि मदना, हर नहि बला मोहि युवति जना।

रेखांकित शब्दो पर ध्यान दीजिए 'कामिनी' जिसमे काम का निवास हो, जिसे देखकर काम भावना जागे, पचवान कामदेव के पाँच बाण जिससे वह प्रहार करता है, 'तितल' वसन के साथ 'म मथ' शब्द का प्रयोग नायिका का गीला वस्त्र झलकता सौंदर्य मन को मथकर रख देता है तथा 'हर' हरण करने वाला 'युवति' मिलन कराने वाला आदि। इन शब्दो मे वांछित अथ मानो चिपक सा गया है। अभिप्रेत अथ को प्रकट करने मे कवि को अदभुत सफलता मिली है। यदि कामिनी, पचवाने, तितल, म मथ, हर और युवति के स्थान पर क्रमश स्त्री, कामबाण, गीली, मनमिज, शिव और सु दरी का प्रयोग किया जाए तो पद प्राणहीन हो जाएगा और सारा का य सौंदय नष्ट। निस्सन्देह विद्यापति शब्द के शिल्पी हैं, सफल प्रयोक्ता हैं। वह जो चाहते हैं भाषा वही कहती है और पाठक वही सुनता और समझता है।

(ङ) शब्द और अथ गुण—भावानुकूल भाषा का प्रयोग गुण का निधारण करता है। प्रसाद माधुय और ओज भाषा के प्रधान गुण हैं। इनका सफल प्रयोग कवि ने आवश्यकतानुसार किया है। शब्द की तीनो शक्तियो अभिधा, लक्षणा और व्यजना का भी प्रयोग कवि ने किया है। प्रसाद गुण तो कूट और अति कलात्मक प्रहेलिकाओ आदि को छोडकर पदावली मे सवत्र बिखरा पडा है। विद्यापति की शैली इतनी सहज और सवेद्य है कि इनके नाम की कोई क्लिष्ट या दुरूह रचना देखकर शका होने लगती है कि यह उनकी रचना वस्तुत है भी या नही। ओज के लिए देवी-वदना के पद तथा शिवसिंह का युद्ध आदि प्रसग अवहटठ रचनाओ को देखा जा सकता है और माधुय के लिए तो जो बात जयदेव के लिए 'कोमल कान्त पदावली' वाली कही जाती है, वह अभिनव जयदव के लिए भी सत्य है। शब्द शक्तियों मे लक्षणा और व्यजना के एक एक उदाहरण हैं—

(क) कतन वेदन मोहि देसि मदना,
हर नहि बला मोहि जुवति जना।
(ख) कर धरू कर मोहि पारे कन्हैया,
देव मैं अपरूब हारे कन्हैया।
सखि सब तेजि चलि गेलि,
ना जाने कौन पथ भेली कन्हैया।
हम न जाएब तुअ पासे,
जाएब औघट घाटे कन्हैया।

प्रथम उदाहरण मे नायिका लक्षणा के माध्यम से अपनी स्थिति प्रकट कर कामदेव के भ्रम की ओर इगित करती है और द्वितीय पद मे अभिधेयार्थ तो राधा की परिस्थिति और पार होने की प्राथना है किन्तु व्यग्यार्थ है कि हाथ पकडने का अधिकार पति को ही है, राधा पति रूप मे कृष्ण को ग्रहण करना चाहती है और औघट घाट एकान्त स्थल मे जाकर विहार करने का सकेत देती है।

(च) लोकोक्तियों का सफल प्रयोग—लोकोक्तियाँ लोक जीवन की कालजयी अभिव्यक्तियाँ होती हैं जिनमे ज्ञान और अनुभव का सार भरा होता है। विद्यापति की भाषा मे लोकोक्तियो की सोधी सोधी सुगध आती है। असाढ की प्रथम वर्षा सी भूमि की भावन सुगन्ध लोकोक्तियों के कारण विद्यापति के पदो मे निकलती है। ये लोकोक्तियाँ भाषा और भाव के रूप को तो निखारती ही हैं साथ ही वे लोक जीवन की व्यापक अनुभूति पर लोकप्रियता की मुहर लगा देती हैं। ऐसी लोकोक्तियो की सख्या तो हजारो हैं यहाँ वे केवल कुछ नमूने के तौर पर भी दी जा रही हैं—

अवहट्ठ भाषा मे प्रयुक्त—(1) अवसओ उद्यम लक्षिवस, अवसओ साहस सिद्धि—लक्ष्मी उद्यम मे वास करती हैं और सिद्धि साहस मे। (2) चोर घुमाइअ नाअक हाथे—चोर को नाथ के बल घुमाना चाहिए। (3) छोटओ तुरुकका भमको मार—तुर्कों का छोटा बच्चा भी धुडकी मारता है। (4) महुअर बुज्झई कुसुम रस—भ्रमर फूलो के रस को जानता है। (5) सज्जन पर उपकार मन दुज्जन नाम मइल्ल—सज्जन के मन मे उपकार और दुजन मे मैल होता है।

मैथिली लोकोक्तियाँ—अपन वेदन तिहि निवेदिय जे पर वेदन जान, असमय आस न पूरय काम, आग जरिअ पुनि आगहि काजे, आरति गाहक महग बेसाह, घीउ उधार माँग मति भोर। जइसन परहोक तइसन बीज, जेहन विरह हो तेहन सिनेह, तत करिए जत फावए चोर, पर घने मागि बेआज, पानि तैल नहि निविड पिरीत, दूध का माखी दूती भेल।

स्पष्ट है कि विद्यापति भाषा के परम ममज्ञ थे और उस पर उनका अधिकार था। वे भाषा के सफल प्रयोक्ता थे। सहज ही वे भाषा से अभिप्रेत अथ निकलवा लेते थे और भाव चित्रो को पाठक के मन पर उतारकर उन्हे रस विभोर कर देते थे। वे भाषा के प्रयोग मे उदारवादी थे उनके लिए शब्दो की कोई जाति नही थी, उनका कोई सम्प्रदाय नही था उनका तो एक ही धर्म था भावो की सफल अभिव्यक्ति, भाव और रूप चित्रो की आकषक प्रस्तुति।

छन्द विधान—विद्यापति युगीन मैथिली कविताओ मे छन्द शास्त्र के सिद्धान्त प्राकृत और अपभ्रश छन्द प्रणाली पर आधारित हैं। डॉ० एच० डी० वेलकर ने 'मात्रा वृत्त' और 'ताल वृत्त' मे इन्हे विभाजित किया है। लोचन की दृष्टि मे विद्यापति आदि द्वारा रचित मैथिली गीत उस समय मिथिला मे प्रचलित देशी शैली के राग-रागिनियो के गीत हैं। इस प्रकार छन्द और देशी गीतो का इसमे सुन्दर गठबन्धन है।

लोचन के अनुसार प्रमुख राग-रागिनियो की सख्या 25 और गीत छदो की सख्या 96 है। लोचन ने अपनी राग-तरगिनी मे विद्यापति और उनके अनुयाइयो को खूब उद्धृत किया है। आधुनिक अलकारशास्त्रियो के अनुसार छन्दो के दो विभाग हैं—मात्रिक तथा वर्ण वृत्तक छन्द। मात्रिक मे चौपाई, दोहा, सोरठा, बरवा, उल्लासा, छप्पय, जयकरी, कुडलियाँ, गीतिका, हरिगीतिका, विजया, तोमर, पद्धरी, बसन्त, सवैया, घनाक्षरी, रूपमाला, लावनी, सरसी तथा आल्हा आदि आते हैं और वर्ण वत्तव मे शिखरिणी, मालिनी, बसन्ततिलका, भुजग प्रयात, द्रुतविलम्बित, शार्दूल, विक्रीडित, मन्दाक्रान्ता, तोटक, वशस्थ आदि। विद्यापति का छन्द प्रयोग इनसे छ सौ वर्ष पूर्व का है।

विद्यापति ने भी लोचन द्वारा उल्लिखित गीत छन्दो का प्रयोग किया

है जो विभिन्न पाण्डुलेखों में प्रमाणित है —

(क) रामभद्रपुर पाण्डुलेख—मालव, सहव, गुजरी, बसन्त, आहिर, अहिरानी, धौराग, धनछी, मरासी कोलाव, मामरी, कमर, ललित, विभास, आसोग्य, मलारी, मलार, नदिन, सारगी।

(ख) नेपाल पांडुलेख—मालव, धनछी, असावरी, मामवी, कदार, अहिरानी, कोदार, सारगी, गुजरी, बरली, ललित ललिता, नाट, विभाग, वसन्त।

(ग) रमानाथ झा पांडुलेख—भूपाली, कानरा, कोलार, मालव, सहव, रामकरी।

विद्यापति के पदों का छन्दशास्त्रीय अध्ययन 'राग तरंगिणीकार लोचन ने किया है। उन्होंने कुछ छन्दों को परिभाषित करने का प्रयास किया है किन्तु उनकी परिभाषायें बड़ी लोचदार हैं। उनके अनुसार रावणीय वाराणीय छन्द म 24 से 30 मात्रायें प्रथमार्द्ध मे 27 से 33 मात्रायें उत्तरार्द्ध मे होनी चाहिए। माधवीय वराणीय छन्द के प्रथमार्द्ध मे 20 स 23 तथा द्वितीयार्द्ध में प्रति अर्द्ध भाग म 16 मात्रायें होनी चाहिए।

(क) आन्त दखलि धनि जाइतेहि रे मोहि उपजल रग।

(27 मात्रायें, यहाँ 'दे' 'ओ' दीर्घ हैं)

(ख) पथ मोलसि धनि दामिनी सनि व्रजराज जानी।

(24 मात्रायें)

कवि लोचन की परिभाषायें पूर्णतया खरी नही उतरती। कारण भी स्पष्ट है कि वह युग मात्राओं का उतना नही था जितना राग रागिनियो का। एक से लेकर चार मात्राओ की कमी बेशी लय तथा आरोह-अवरोह मे छिप जाती थी या गायक उन्हें स्वय स्वर मे बाँध लेता था।

डॉ० ग्रियर्सन ने भी विद्यापति पदावली म प्रयुक्त पदो का शास्त्रीय अध्ययन किया था। उनके अनुसार विद्यापति ने प्राकत, पगल दर्शन, छन्दोदीपिका आदि ग्रंथो के छन्द नियमो का पालन नही किया है। उनके अनुसार विद्यापति ने सामान्य रूप से तीन प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया है—

(क) प्रथमार्द्ध पद में 15 मात्राओ का प्रयोग—घाट मुखगम ऊपर

पानि, दुहु कुल अप जस अगिरल आनि। यहाँ भुअग मे अ की दो मात्रायें, अगिरल मे 'अ' की एव मात्रा और ऊपर का 'उ' दीघ हैं।

(ख) प्रत्येक मे 16 मात्रायें—हृदय तोहर जानि नही भेला, परक रतन आनि मन देला।

(ग) 28 मात्राओ वाले पद—जिनमे 16 और 12 पर यति है—

अम्बर विघटु अकामिक कामिनि, कर कुच झाँप सुछन्दा।

(16+12)

असावरी मे भी 28 मात्रायें हैं जिनमे 12 और 16 पर यति है।—

चिकुर गरए जल धारा, मुख शशि डरे जनि रोअए अँधारा।

(12+16)

विद्यापति के छन्द विधान में मात्राओ की गणना में—अ, आ, इ, उ, ए, ओ, ऐ और औ इन स्वरो मे प्रथम छ दीघ और ह्रस्व दानो तरह प्रयुक्त होते हैं और ऐ औ अइ अउ के रूप मे उच्चरित होते हैं। तात्पय यह है कि विद्यापति छन्द विधान के अनुसार चलने वाले नही, छन्दो को उनके अनुसार चलना पडता है। इनका छन्द विधान भी सगीत प्रधान है इनमे स्वरो का आरोह-अवरोह मात्राओ की अपेक्षा प्रमुख हैं। वस्तुत इन सभी छ दो मे लय, माधुय और स्वर-साधना की तपस्या है।

अलकार विधान—विद्यापति वाणी के सरस विधायक हैं, अलकार वादी कवि नही, अपवाद स्वरूप दस पाँच पदो को छोडकर जिनमें दरबारी आवश्यकता के लिए पाडित्य का प्रदशन करना पडा है विद्यापति के काव्य मे अलकारो का प्रयोग सहज एव सवेद्य है सप्रयास नही। अलकारो के प्रयोग से कविता कामिनी की गति और भाव प्रवणता मे कहीं बाधा नहीं आयी है, क्योकि अलकारो का प्रयोग चमत्कार प्रदशन हेतु नही बल्कि भावोत्कष किया गया है। वे आरोपित नही कविता के हृदय से उपजे हुए हैं।

विद्यापति ने रूप चित्रण मे सहज ही उत्प्रेक्षा, रूपक उपमा आदि का प्रयोग किया है किन्तु कही भी अतिशयता नही, सीमोल्लघन नही। इन प्रसगो मे उनकी कारयित्री प्रतिभा प्रदशनी नही लगाती उनका तो अभीष्ट भावोत्कष या भाव चित्रण ही रहता है। वे भाव प्रदशन के लिए हृदय को

चीरकर दिखाने में पक्ष म नही थे, वे अभिव्यक्ति के कौशल को ही आवश्यक मानते थे। इस कला म विद्यापति इतने निपुण थे कि रससिद्ध कवि की भाँति एक ही साथ अनेक अलकारों का प्रयोग काव्योत्कर्ष के लिए उनके पदों मे हो जाता था—देखिए महाभाव का अनूठा सगम—

कि अरि नवयौवन अभिरामा।
जत देखल तत कहए न पारल छहो अनुपम एक ठामा।
हरिन इन्दु अरविन्द करिनि हेम पिक बूझल अनुमानी।
नयन वदन परिमल गति तनु रुचि अ ओ अति सुललित बानी।
कुच जुग परसि चिकुर फुजि पसरल ता अरुझायल हारा।
जनु सुमेरु ऊपर मिलि उगल, चांद बिहुन सब तारा।
लोल कपोल ललित मनि कुडल, अधर बिम्ब अध जाई।
भौंह भ्रमर नासा पुट सुन्दर, से देखि कीर लजाई।
भनइ विद्यापति से वर नागरि, आन न पावए कोई।
कस दलन नारायन सुन्दर, तसु रंगिनि पए होई।

इस पद मे उपमा, उत्प्रेक्षा, यथासख्य, व्यतिरेक, अपन्हुति आदि अनेक अलकारो का प्रयोग एक ही पद मे हुआ है किन्तु पर लेशमात्र भी अलकार बोझिल नही प्रतीत होता है। बेनीपुरी जी के शब्दो म 'भावोत्कर्ष के झिलमिल चादर से अलकार झाँकते से प्रतीत होते हैं।' पदावली ऐसे अनेक पदो की शोभा भार से लदी हुई है।

अप्रस्तुत विधान—*अलकारो का प्रयोग काव्य मे* अप्रस्तुत विधान के माध्यम से होता है। काव्य मे जो अभिप्रेत होता है जिस भाव या वस्तु का वर्णन कवि का लक्ष्य होता है, उसे प्रस्तुत विधान कहते हैं और वस्तु को ग्राह्य और सुबोध बनाने के लिए जिस विधान का कवि प्रयोग करता है, उसे अप्रस्तुत विधान कहते हैं। यह अप्रस्तुत विधान दो प्रकार का होता है—वास्तविक और कल्पना प्रसूत। प्रथम मे वास्तविक जगत मे विद्यमान उपमानो से कवि अप्रस्तुत विधान करता और दूसरे मे अपनी कल्पना स उत्पाद्य अलकरणों से काव्यात्मा को अलकृत करता है। विद्यापति इस कला मे अत्यन्त प्रवीण थे। उन्हें अलकारो का व्यामोह नही था किन्तु उनकी प्रतिभा प्रसूत शैली म कुछ ऐसी सहज शक्ति थी कि एक एक पद

मे अनेक अलकार स्वय प्रकट होकर उसकी रसमयता को बढा देते हैं। साथ ही उनमे जीवन जगत के व्यापक एव सूक्ष्म अनुभव तथा भावविधायिनी कल्पना का ऐसा वरदान था जिससे उनकी अप्रस्तुत योजना की मौलिकता, प्रभविष्णुता तथा भावोत्कर्ष की क्षमता सहज ही अद्वितीय हो जाती है।

अप्रस्तुत की योजना सादृश्य तथा साधर्म्य मूलक होती है। महाकवियो की चित्रवृत्ति साधर्म्य मूलक अप्रस्तुत योजना मे रमती है क्योकि वह अपेक्षाकृत सजीव, हृदयग्राही और उत्कर्षकारी होती है। विद्यापति ने भी अधिकतर साधर्म्य मूलक अप्रस्तुतो का ही प्रयोग किया है—उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि इनके प्रिय अलकार हैं। 'उपमा कालीदासस्य' कथन से सभी लोग परिचित हैं किन्तु लोक भाषाओं के क्षेत्र मे विद्यापति उपमा की दृष्टि से द्वितीय कालिदास हैं। मौलिक नवीन एव ताजे अप्रस्तुतो के लिए वे सचमुच बेजोड हैं—यथा—

ततहि धाओल दुहु लोचन रे, जतहि गेल वरनारि।
आसा लुबुधल न तेजए रे, कृपनक पाछ भिखारि।

कवि की प्रवृत्ति शब्दालकारो मे कम रमी है अर्थालकार ही उसे अति प्रिय हैं—कुछ उदाहरण—

उपमा—(क) चिकुर निकरतम सम पुनु, आनन पुनिम ससी।
नअन पकज के पति आओब, एक ठाम रहु बसी।

अथवा—(ख) आचर विघटु अकामिक कामिनि,
करे कुच झाँपि सुछन्दा
कनक सम्भु सम अनुपम सुन्दर
दुई पकज दस चन्दा।

विद्यापति के काव्य मे उपमा का वैभव सवत्र है। उन्होंने उपमान तो परम्परित ही लिए हैं किन्तु उनपर कवि की मौलिकता का निर्मोक सदैव अभिमडित रहता है। देखिए 'क' मे नायिका के दीघ एव सघन काले केश घोर अधकार के समान और मुख चन्द्रमा के समान यहाँ तक तो कोई नवीनता नही है किन्तु जब कवि 'नअन पकज' की उपस्थिति का उल्लेख कर देता है तो उसपर कवि की मुहर लग जाती है। 'ख' मे स्तनो के लिए

'कनक सम्भु की उपमा' साधारण है और शिव भक्ति का संकेत करता है किन्तु अस्त-व्यस्त आंचलो के कारण उन्हे हाथो से ढक लेने पर 'दुइ पकज दस चन्दा' मे अवश्य नवीनता है और विरोध का सौंदय भी निहित है। कवि की उपमा की प्रशसा मे डॉ० दिनेश सेन कहते हैं—उपमा के लिए कालिदास विश्व साहित्य मे सवश्रेष्ठ माने जाते हैं किन्तु उत्तर भारत की लोक भापाओ मे विद्यापति को वही स्थान दिया जाए तो अत्युक्ति नही होगी।

उत्प्रेक्षा—विद्यापति रीतिकालीन कवियो की तरह अप्रस्तुत की ढेर लगाकर प्रस्तुत को ढँक नहीं देते। इनके उत्प्रेक्षा सम्बन्धी प्रयोग देखने योग्य हैं—

(क) दीघ केस कलाप कुटिल कोमल घन सामर,
दप्प मत्त मदप्प घनु गति वद्धिय चामर।

(ख) ससन परस खसु अम्बर रे देखल धनि देह,
नव जल धर तर सचर रे, जनि बिजुरी रेह।

प्रथम मे कामिनी के काले कुचित केश-कलाप सावन भादों मे उमडती कादम्बिनी की तरह काले सावले मानो दर्पो मत्त कामदेव के चमर हो। द्वितीय मे श्वासा के स्पर्श से खिसके हुए वस्त्र के बीच से झाँकता हुआ यौवन मानो बिजली की रेखा हो। इस रेखामात्र मे स्थिर एव गत्यात्मक सौंदय का सम्पूण चित्र है।

रूपक—रूपक विद्यापति को अत्यन्त प्रिय है। रूढ़ि प्रयोग के साथ कवि ने कुछ अभिनव प्रयोग भी किए हैं—देखिए—

(क) रितुपति हट बे नहि परमादी,
मनमथ मदय उचित मुलवादी।
द्विज पिक लेखक, मसि मकरन्दा,
काँप भमरपद साखी चन्दा।

(ख) बदन चाँद तोर नयन चकोर मोर,
रूप अमिअ रस पीवे।
अघर मधुर फुल पिया मधुकर तुल,
बिन मधु कत खन जीवे।

रूपक और उपमा को संश्लिष्ट करके कवि ने नायिका का सौंदर्य नायक की चेष्टायें, प्रेम और वासना का मधुर संगम, नायक की व्यग्रता नायिका को अनुकूल होने का संकेत आदि अनेक भावों की व्यंजना यहाँ एक ही साथ करा दिया है।

रूपकातिशयोक्ति—

साजनि अकथ कहि न जाए।
धवल अरुन शशि कमंडल, भीतर रहनुकाए।
कदलि उपर केसरि देखल केसर मेरु चढ़ला।
ताहि उपर निसाकर देखल, कीर ताउपर बइसला।
कीर उपर कुरंगिनि देखल, चकित भमय जानि।
कीर कुरंगिनि उपर देखल, भमर उपर फणि।
एक असम्भव आओर देखल, जल विना अरविंदा।
देखि सरोरूह उपर देखलि, जइसन दुतिअ चंदा।

नायिका के नखशिख वर्णन की योजना कवि ने केवल उपमानों से ही की है। नखशिख वर्णन के और भी पद हैं जिनमें रूपकातिशयोक्ति काव्य लिंग तथा उपमा आदि से पुष्ट किया गया है, जैसे—

मेरु उपर दुई कमल फुलाइल नाल विना रुचि पाई।
मनिमय हार धार बह सुरसरि, ते नहिं कमल सुखाई।

इसके अतिरिक्त अनन्वय, विरोधाभास, यथासंख्य, व्यतिरेक, एकावली, असंगति, पर्यायोक्ति, विशेष तदगुण, अपन्हुति, परिकर, परिकरांकुर मीलित, समासोक्ति, दृष्टान्त, अप्रस्तुत, प्रशंसा, सन्देह, अनुप्रास, पुनरुक्ति, प्रकाश, यमक, श्लेष आदि के भी अनेक उदाहरण पदावली में हैं—सबका उदाहरण प्रस्तुत करना सम्भव नहीं—कुछ उदाहरण देखिए—

एकावली—

सरसिज विनु सर, सर विनु सरसिज, कि सरसिज विन सूरे।
जीवन विनु तन, तन विनु जोवन, कि जोवन पिय दूरे।

असगति—

सुर तरु तर जब छाया छोडल, हिमकर वरिसय आग।
दिनकर दिनफले सीतल बारल, हम जियब कथ लाग।

पर्यायोक्ति—

हृदयक वेदन वान समान, आनक दुख आन नहिं जान।

तद्गुण—

अनखुन माधव माधव रटइत, सुन्दरि भेल मधाई।
ओ निज भाव सुभावहि बिसरल, अपने गुन लुबधाई।

परिकर—

तुहु रस नागर आगर ढीठ, हम न बुझिय रस तीन की मीठ।

अनुप्रास—

रितुपति राति रसिक रसराज, रसमय रास रमस रस माँझ।
रसमति रमनि रतन धनि राहि, रास रसिक सह रस अवगात।

यमक—

सारग नयन बयनपुनि सारग, सारग तसु समधाने।
सारग उपर उगल दस सारग, केलि करय मधुपाने।

अलकार प्रदशन कवि का स्वभाव नही है किन्तु आवश्यकता पडने पर पाडित्य के खजाने से भी कुछ मणि राजियाँ कवि ने लुटा दी हैं जिसमे चमत्कारप्रिय विद्वानो तथा पाठको के लिए दिमागी कसरत की पर्याप्त सामग्री है। इसमे रीतिकालीन एव कतिपय उर्दू कवियो की ऊहात्मक वृत्ति भी मिल जाती है—कुछ नमूने देखिए—

(क) (कूट)—

द्विज आहर आहर सुत नन्दन सुत आहर सुत रामा।
बनज बन्धु सुत सुत दए सुन्दरि, चललि सकेतक ठामा।
रा०वृ० बेनीपुरी, प०स० 262

(ख) (प्रहेलिका)—

कुसमित कानन कुजेवासी, नयनक काजर घोर मसि।
नख सौं लिखल नलिन दल पात, लिखि पठाओल आखर सात।

पहिलहि लिखलनि पहिल बसन्त, दोसरे लिखलनि तेसरक अंत।
लिख नहि सकली अनुज बसन्त, पहि लिहि पद अछि जीवक अंत।
भनहि विद्यापति आखर लेख, बुधजन हो से कहए विशेष।

वही, 261

(ग) (ऊहा)—
अपने साँसे जाइत उड़ि आए।

(नगेन्द्रनाथ गुप्त, पदावली 762)

विद्यापति की इस प्रकार की चमत्कारिक रचनायें अनेकार्थक शब्द, अंक, कुछ रूढ़ियो, कवि प्रसिद्धियो या समयो पर आधारित हैं। विषय सर्वत्र शृंगार ही है। शब्दालंकार का प्रयोग कवि ने विशेषकर ऐसे ही पदों में किया है।

विद्यापति की अलंकार योजना मे परम्परित एवं मौलिक अलंकार विधान का मिश्र स्वरूप है। इनकी अलंकार योजना कहीं कहीं तो सर्वथा मौलिक है किन्तु जहाँ उन्होंने रूढ़ उपमानो का प्रयोग किया है वहाँ भी अपनी मौलिकता का निर्मोक चढ़ा दिया है यथा—'मनि कादो लपटाय रे तेकर तकर गुन जाय रे' मे माघ के कथन से श्रुति कटुत्व को दूर कर अपने कथन मे कितना मिठास भर दिया है। 'धूलि' के स्थान पर कादो और उसके साथ 'लपटाय' शब्द का प्रयोग करके अभिव्यक्ति को माधुर्य एवं अनुभूति से अलंकृत कर दिया है। वस्तुत अलंकार विद्यापति के हाथ मे कठपुतली की तरह नाचते थे। शिवनन्दन ठाकुर का कथन है कि गहना पहनकर कुरूप नारियाँ भी सुन्दरी मालूम पड़ती हैं। सुन्दरी नारियो के गहने तो सोने मे सुगन्ध का कार्य करते हैं। विद्यापति की श्रुति मधुर अलंकारो से सुसज्जित होकर किस पद प्रेमी पाठक का मन नही हर लेती हैं। बाबा नागार्जुन के शब्दो मे विद्यापति का यश समूचे संसार मे फैला हुआ है। उनके गीतो को विश्व की रसिक मंडली ने सम्मान प्रदान किया है। पिछले वर्षों मे अमेरिका के एक प्रकाशक ने विद्यापति के गीतो का अंग्रेजी रूपान्तर प्रकाशित किया है।

मेरा विश्वास है कि विद्यापति ने अपनी कविता कामिनी को बाह्य अलंकारों से सजाकर 'परनारी' नहीं बनाया है किंतु उसके आंतरिक गुणों

का उत्कष कर उसे 'घरनारी' के रूप मे ही प्रस्तुत किया है। भाषा, छन्द, अप्रस्तुत विधान, अभिव्यजना, शैली आदि सभी दृष्टियो से विद्यापति के काव्य का कला पक्ष अभिनव है। राधा के सम्बन्ध मे की गई उक्ति—'बडि कौशल तुअ राधे किनल कन्हाई कोरहि आधे' विद्यापति की काव्य कला पर भी लागू होती है। सचमुच कवि ने पाठको के रसिक मन को अपनी काव्य कला से खरीद लिया है।

विद्यापति के काव्य में प्रकृति-चित्रण

प्रकृति—कवि और काव्य—अनुभूतिमय अन्तजगत और दृश्यमान बहिर्जगत का कवि हृदय के साथ रागात्मक सम्बन्ध होता है। भावोन्मेष सवश्रेष्ठ क्षणो मे यही सम्बन्ध जब व्यक्त होता है तो काव्य की शतधारायें फूट पड़ती हैं। इनके फूटने मे प्रकृत का बहुत बड़ा हाथ होता है क्योंकि प्रकृति और मनुष्य का रागात्मक सम्बन्ध अनादि है। उषा की अरुणिमी, सध्या की लाली, पावस की रिमझिम, बसत का गदराया यौवन, शरद की चांदनी, झरनो का कलकल, उत्तग शिखरो का रजत मुकुट और सागर का लहराता वक्ष किसके हृदय मे भावोर्मियो का शृ गार नही करते ?

आदिकवि बाल्मीकि के महाकाव्य का प्रणयन प्रकृति की गोद मे हुआ। महाकवि कालिदास और भवभूति ने प्रकृति मे अपने काव्य का अक्षय शृ गार किया, विद्यापति और चण्डीदास ने गीतो का प्रकृति के नाना उपादानो मे सवारा। जायसी ने प्रकृति के साथ मानव जीवन का तादात्म्य स्थापित किया। तुलसी ने नीति और उपदेश का माध्यम बनाया, अन्योक्तिकारो न इसके उपादानों का खुलकर प्रयोग किया। रीति कालीन कवियो ने प्राकृतिक उपादानो से नायक-नायिका की भावनाओ को उद्दीप्त किया। छायावादी कवियो ने इसकी सवेदना का अनुभव किया और इसमे रहस्य के नाना रूप देखे। वस्तुत प्रकृति ने अपना उन्मुक्त कोष लुटाया है और सहृदय कवियो ने उसे जी भर कर लूटा है और अपनी कविता का शृगार किया है। प्रकृति की ये रत्न रश्मियाँ कवि के फटे झोल मे समा नहीं पायी हैं—प्रसाद की यह उक्ति—'फटा हुआ है नीलवसन, क्या

यौवन की मतवाली, देख अकिचन जगत लूटता तेरी छवि भोली भाली।' कवि के मानस जगत मे सुन्दर तो सुन्दर होता ही है, असुन्दर भी उसकी चेतना के स्पश से सुन्दर हो जाता है—

कवि का जीवन एक जगत है जग के भीतर जग के बाहर
जग का पुण्य जहाँ सुन्दर है और पाप भी नही असुन्दर।

—प्रसाद

प्रकृति के इस परिवेश का उपयोग कवि साधन और साध्य दोनों ही रूपो मे करता है। साधन रूप मे प्रकृति का उपयोग उद्दीपन के लिए अलकरण, पृष्ठभूमि, मानवीय भावनाओ का आरोप, उद्दीपन, प्रतीक, बिम्ब, उपदेश तथा दूतादि के रूप मे किया जाता है। साध्य रूप मे प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण होता है जिसे प्रकृति का आलम्बन स्वरूप कहते हैं। *गीतिकाव्य मे प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रण की गुजाइस कम होती है* क्योकि इसमे विषय का विस्तार न होकर भावानुभूति की तीव्रता और अभिव्यक्ति की सघनता और प्रखरता रहती है। इसलिए इसमे प्रकृति के उद्दीपन या अलकरण स्वरूप की ही सभावना रहती है। यही कारण है कि विद्यापति के गीतिपदो मे भी शुद्ध प्राकृतिक या आलम्बन स्वरूप प्रकृति चित्रण नहीं के बराबर है। बसन्त आदि के कुछ चित्र इसके अपवाद हैं। प्रकृति का अलकरण या उद्दीपन रूप ही इन गीति पदो मे उपलब्ध है। प्रकृति के विभिन्न एव व्यापक उपादानो से इन्होंने सयोग और वियोग के चित्रो का शृगार किया है, भावो का उत्कष किया है और अनमोल क्षणो को सजाया है। विद्यापति सहृदय कवि थ, मिथिला मे प्राकृतिक सम्पदा की भरमार थी अत कवि ने उनका भरपूर प्रयोग अपनी आवश्यकता के अनुसार किया है। महाकाव्य की तरह प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण नही है, उसका उद्दीपन स्वरूप ही गीति विधा के अनुकूल है, इसलिए इसी दृष्टि से विद्यापति के काव्य मे प्रकृति चित्रण पर विचार करना चाहिए।

विद्यापति के काव्य में प्रकृति चित्रण—हिमालय के पुनीत चरणो मे बठी मिथिला की शस्य श्यामला भूमि प्रकृति की रम्य रगस्थली है। उसने उसकी रगस्थली को असख्य सरिताओं से सजाया है। शरद के शबनमी खेती मे रूपहली चांदनी का वितान, बसन्त में मजरियो से लदी अमराइयाँ,

कोयल की अचूक तान, गेंदा, केतकी, मालती तथा पाटल के प्रसूनों का सुरभिसिक्त वातावरण, ग्रीष्म ऋतु की करारी लू, दरारो से भरे धान के खेत फिर चौमासे की रिमझिम और उसकी सहेली पुरवाई—'काजरे रगलि रात', जलमयी धरित्री, पपीहा, मोर, दादुर तथा झींगुर ध्वनि से आवृत परिवेश मिथिला के प्राकृतिक वैभव के कुछ नमूने हैं। मिथिला के इसी सौन्दर्य कानन के कोकिल हैं कवि विद्यापति।

मिथिला में विद्यापति के पूर्ववर्ती कवि ज्योतिरीश्वर ठाकुर का 'वर्ण-रत्नाकर' में प्रकृति के कुछ अत्यन्त सुन्दर वर्णन उपलब्ध होते हैं—प्रभात, ग्रीष्म, वर्षा के स्वतन्त्र चित्र देखने योग्य हैं—(क) 'वायसन कोलाहल कर। नक्षत्र विरोहित मेल, चाँद म्लान भेलाह, पूर्वदीश अरुणित भेल, घटवानि जलाशये आरहल, पथिक जने मार्गानुसधान कएल।' अर्थात काग बोलने लगे, सितारे डूब गये, चाँद मलिन हो गया, प्राची मे लालिमा छा गई, कुलवधुएं सलज्ज हो गइ, पनिहारिन जलाशय की ओर चल पडी और पथिक रास्ता पूछने लगे। प्रभात का कितना प्रभावपूर्ण एव अर्थ सकुलचित्र है। (ख) दरिद्रीक हृदय अइसन सतप्ति पृथ्वी मलि अछ उन्मूल विपछ अइसनि जलाशए भरि गएल अछ—पथिकनि पथ सचार त्यजिहलु दिनरा दीघवा कत्रिक सकोच-पृथ्वीक ककशता, रौद्रक तीक्ष्णता, पवनक वाछा, शीतकउत्कठा एवम्बिध ग्रीष्म समय मध्याह्न छेपु।' अर्थात दरिद्र के हृदय की तरह सतप्त पृथ्वी, उन्मूलित वैरी की तरह जलाशय हो गये हैं, कुत्ता भी छायाश्रय चाहता है, दिन की दीघता, रात की लघुता, पृथ्वी की ककशता, सूय किरणो की तीव्रता, पवन की इच्छगीत की उत्कठा ग्रीष्म काल के परिचायक हैं।

इस परम्परा के होते हुए भी विद्यापति को गीतिकार होने के नाते प्रकृति के स्वतत्र चित्रण का अवसर नही मिला है किन्तु कवि-हृदय के नाते उन्हें जहाँ कही भी मौका मिला है वे प्रकृति के सुन्दर चित्र उपस्थित करने म चूके नही हैं। ऋतु वणन मे बसन्त और वर्षा के चित्र तो इतने सुन्दर और यथातथ्य हैं कि वे विरह और अभिसार प्रसग मे होते हुए भी ऋतुओं का स्वतन्त्र खाका खींच देते हैं। कीर्तिलता मे कवि कहता है—रअनि बिरमिय हुमउ पच्छूस, तरणि तिमिर सहरिअ, हँसिय अरविन्द

कानन। (कीतिलता, पृ० 46) रात बीती प्रभात हुआ, सूर्य ने अधकार का विनाश कर दिया और वन प्रातर मे कमल फूल उठे। मिथिला का एक सरस चित्र देखिये—

पल्लविअ कुसुमित फलिअ उपवन, चूअचम्पक सोहिअ।
मअरद पाण विमुग्ध महुअर, सद्दमानस मोहिअ।
बकवार साकम बाँधे पोपणि नीक नीव निकेतना।
अति बहुत भाँति विवद्द बद्दहि मुलेओ वडटठेओ चेतना।

(कीतिलता, प० 26)

अर्थात—आम और चम्पक के उपवन सुशोभित हैं फूल फलो से डालियाँ लदी हुई हैं। भौरे मकरद पान कर गुनगुना रहे हैं, मधुर गुजन मन को मुग्ध कर रहा है। जगह-जगह तालाब हैं उनमे सुदर घाट है, बगुला की पंक्तियाँ उनमे विहार कर रही हैं। अनेक भव्य भवन हैं, सुंदर गलियाँ हैं, सडकें हैं जिन्हें देखकर बुद्धिमान भी भ्रमित हो जाते हैं।

पदावली मे तो इस प्रकार के वर्णनों की भरमार है। वर्षा और बसत के चित्र तो बहुत हैं शरद, शिशिर और हेमत अपेक्षाकृत बहुत कम हैं। ग्रीष्म का तो एक ही चित्र पदावली मे मिलता है किंतु यह चित्र अत्यत सुदर है देखिए—

ग्रीष्म—सूखल सरसिज भेल भाल,
तरु तरनि तरु न रहल हाल।
देख दरनि दरसाव पताल,
अबहुँ धरा धर धरसिन धार।
जलधर जलघन गेलि असेखि,
करए कृपा वडि पर दुख देखि।
पथिक पियासल आव अनेक,
देखि दुख मानए तोहर विवेक। (मित्र मजू० प० 14)

सर सूख गये हैं, कमल मुरझा गये हैं, भीषण गर्मी के कारण तरुवर बेहाल हैं, उनकी आर्द्रता समाप्त हो गयी है। खेतो मे इतनी गहरी दरारें पड गई हैं कि पाताल दिखाई दे रहा है। जल से भरे हुए बादल आते हैं किंतु बरसते नही। प्यासे पथिक पानी की खोज मे आते हैं किंतु निराश

लौट जाते हैं। इन सबका दुख, देखकर, बादलो के अविवेक की बात मन मे आती है। मानवीय स्पर्श के साथ वर्णन की दृष्टि से यह पद कवि की अनुवीक्षण शक्ति का अनूठा उदाहरण है।

वर्षा—वर्षा के चित्र तो अभिसार और विरह के प्रसग अनेक पदो मे मिलते हैं। ये पद देखने मे स्वतन्त्र प्रतीत होते हैं किन्तु उनमे विरहिणी की पीडा और अभिसारिका का सच्चा प्रेम साकार हो उठता है। देखिए—

गगन अब घन मह दारुन सघन दामिनी झलकई।
कुलिस पातन सबद झन झन, पवन खरतर बल गई।
सजनी आज दुरदिन मेल।
कत हमर नितान्त अगुसरि। सकेत कुजहि गेल।
तरल जलधर बरखि झर झर गरज घन घनघोर।
साम नागर एकल कइसन, पथ हेरए मोर।

(बेनीपुरी वि० प० 112)

आकाश पर सघन मेघो का जमघट, चपला की चमक, वज्र निपात से झन झन का शब्द और प्रखर वायु, सबने मिलकर रात को कितना भयानक बना दिया है। मिथिला की बरसाती रात की भयानकता भी यहाँ साकार हो रही है। नायिका सखी से कहती है कि आज दुर्दिन है। मेरा कत सकेत स्थल पर पहुँच चुका है, वह अकेले भीगत हुए मेरी प्रतीक्षा कर रहा है, मैं कैसे रुक सकती हूँ।

विरह प्रसग के भी कुछ पद देखे जा सकते हैं—

(क) हम धनि तापनि मन्दिरे एकाकिनी दोसर जन नहि सग।
वरिसा परिवेश पिया गेल दूरदेस रिपु गेल मत्त अनग।

(ख) सखि, रे हमर दुखक नहि ओर।
इभर भादर माह भादर, सून मन्दिर मोर।
झपि घन गरजति सतत भुवन, भरि बरसन्तिया।
कत पाहुन कामदारुन, सघन खर सर हन्तिया।
कुलिसकत सतपात मुदित, मयूर नाचत मातिया।
मत्त दादुर डाक डाहुक, फाटि जायत छातिया।

तिमिर दिगभर घोर यामिनि, अथिर बिजुरीक पाँतिया ।
विद्यापति कह कइसे गयाओब, हरिबिना दिन रातिया ।

पहले प्रसग मे नायिका मन्दिर मे अकेली है, प्रिय प्रवास मे है। वर्षा का परिवेश है और अलग अरि हो गया है। दूसरे पद मे भरे भादो का चित्र है। नायिका अपनी सखी से कहती है कि उसके दुखो का कही अन्त नही है—भद्दर भादो की रात, सूना महल, घनघोर गजन, चचल चपला, तेज हवा, दादुर, मोर, पपीहा की पीडक वाणी। सर्वत्र मिलन का पर्व है केवल वही अकेली है। नायिका के दुख का अन्त कहाँ। शब्द चयन परिवेश चित्रण, ध्वनि, नाद और विरह की अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह पद गौरव का अधिकारी है।

बसन्त—ऋतुराज बसन्त मनोज का अभिन्न सखा, सहचर और सहायक है। जिस प्रकार आम की डालो पर मजरियाँ, लतिकाओ पर पुष्प झूलने लगते हैं, धरा का गदराया यौवन अँगडाई लेने लगता है, उसी प्रकार कवि की जिह्वा पर कवितायें नृत्य करने लगती हैं और उनके पायल की मधुर ध्वनि 'मदन की दुदुभी' बनकर विश्व विजय की वाछा करने लगती है। वस्तुत बसन्त काव्य मे सबसे बडा उद्दीपनकारी ऋतु माना जाता है।

विद्यापति ने बसन्त की छवि सुषमा का चित्रण सयोग और वियोग दोनो मे ही किया है और ऋतुराज का योवनोन्मत्त चित्र खीचा है। बसत पूवराग मे नायिका को उत्कठित करता है, अभिसार पथ पर उसे प्रेरित करता है, मान मजन के लिए उसे विवश करता है और रास म कृष्ण और गोपियों को एकीभूत कर देता है किन्तु यही बसन्त जब विरहिणियों पर पचशायक चलाता है तो उनका हृदय चकनाचूर हो जाता है, प्राण कठगत हो जाता है और निव शिव करते ही रात दिन व्यतीत होता है। पदावली मे ये सभी रूप मिलते हैं किन्तु बसत के जन्मोत्सव का चित्र तथा राज्याभिषेक के अवसर पर 'चुमाओन' करने का चित्र अत्यन्त अनूठे हैं। साहित्य मे इस प्रकार के सुन्दर चित्र दुर्लभ हैं— प्रात जगावत गुलाब चटकारी दे' आदि रीतिकालीन अभिव्यक्तियाँ इनकी जूठन प्रतीत होती हैं। देखिये—

माघ मास श्री पचमी गजाइलि, नवम मास पचम हरुआई।
अति घन पीडा दुख बडपाओल, बनसपति भेल धाई है।

+ + +

कनक केसुअ सुति पत्र लिखिएहलु, रासि नछत कए लाला।
कोकिल गनित गुनित भल जानए, रित बसत नाम थोला।
(वि० पु० पद० 174)

माघ मास की श्रीपचमी पूर्णगर्भा हुई। नौ महीने पाँच दिन पर स्वस्थ बालक बसत का जन्म हुआ। बालक को वायु से बचाया गया, मधु चटाया गया, कमर मे सूत बाँधा गया, कदम्ब के फूल का तकिया बना, भ्रमरी ने पालना गीत गाया, जन्मपत्री लिखी गई और कोयल ने नाम रखा बसन्त। दक्षिण पवन ने किसलय और पुष्पराग से उसका उबटन किया, गले में मजरी का हार पड़ा और मेघ ने उसकी आँखो मे काजल लगाया। ऐसा सूक्ष्म और सस्कार प्रधान वणन कहाँ मिलेगा ?

बालक बसन्त तरुण हो गया, सारे ससार पर उसका आधिपत्य हो गया और उसने अपने अभिनव सौन्दय सुषमा मे सम्पूर्ण विश्व को अभिभूत कर उन्मत्त कर दिया। इस पद मे जन्म से लेकर युवावस्था तक के सस्कारो का मोहक चित्र कवि ने खींचा है और प्रकृति के उपादानो से उसे अनूठे ढग से सजाया है। सम्पन्न गृहस्थ के घर पुत्र-जन्म के अवसर पर का समस्त हर्षोल्लास, आनन्द बधाई, उत्सव, अनुष्ठान आदि इस पद मे प्रकृति परिवेश के साथ साकार हो उठे हैं। प्रकृति के महान अग्रेजी कवि वर्डसवर्थ की पक्तियाँ तथा 'लूसी' आदि कविताओं की तुलना कोई करके देखे और बताये कि प्राकृतिक परिवेश और मानवीय सवेदना किसम अधिक बलवती और मोहक है। देखिये राज्याभिषेक के अवसर बसत के 'चुमाओन' का चित्र—

अभिनव पल्लव बइसक देल, धवल कमल फुल पुरहर भेल।
करू मकरद मदाकिन पान, अरु असोज दीप बहुआन।
माई हे, आज दिवस पुनमत, करिअ चुमाओन राज बसन्त।
सगुल सुधानर दधिभल भेल, भमि भमि भमरि हुकारइ देल।

टेसू कुसुम सिन्दूर सम भास, केतिक धूलि विथरहु पटवास।
भनइ विद्यापति कवि कंठ हार, रस बुझ सिव सिंह सिव-अवतार।
(बेनीपुरी पदा० 179)

प्राकृतिक छवियों के साथ संस्कार प्रधान मानवीय व्यापारों में इतना मनोहर सामंजस्य विद्यापति जैसे दुर्लभ प्रतिभा सम्पन्न कवि द्वारा ही संभव था। भारतीय जीवन में सांस्कृतिक संस्कारों का प्राकृतिक उपादानों के सहारे इतना सुन्दर एवं पूर्ण चित्र दुर्लभ है। इस प्रसंग में शीत-बसन्त का वाक्य युद्ध तो देखते ही बनता है—

माई हे सीत बसन्त विवाद, कओन विचारब जय-अवसाद।
दुहु दिसि मधथ दिवाकर भेल, दुज वर कोकिल साखी देल।
नव पल्लव जय पत्रक भाँति, मधुकर माला आखर पाँति।
वादी तहं प्रतिवादी भीत सिसिर बिन्दु हो अन्तर सीत।
कुंद कुसुम अनुपम बिकसंत, सतत जीत बेकताओ बसन्त।
(बेनीपुरी पदा० 180)

इनके अतिरिक्त बसन्त के ये पद भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

(क) 'नव वृन्दाबन, नव नव तरु गन, नव नव विकसित फूल।
नवल बसन्त, नवल मलयानिल, मातल नव अलि कूल।'

(ख) नाचहु रे तरुनी तजहु लाज, आएल बसन्त रितु बनिक राज।
हस्तिनी चित्रिनी, पदुमिनी नारि, गोरी सामरी बूढ़ि बारि।

(ग) 'मधुरितु मधुकर पाँति, मधुर कुसुम मधुमाति।
मधुर वृन्दावन माँझ, मधुर मधुर रस राज।'

(घ) रितुपति राति रसिक रसराज,
रसमय रास रभस रस माँझ।
रसमति रमनि रतन धनि राहि,
रास रसिक सह रस अवगाहि।

(ङ) मलय पवन वह, बसंत विजय कह,
भमर करइ रोर, परिमल नहि ओर।
रितुपति रंग हेला, हृदय रभस मेला,
अनंग मंगल भेलि, कामिनि करथु केलि।

इन पदों में क्रमशः वृन्दावन का नवल रूप, बसन्त का नर-नारी पर प्रभाव, मधु ऋतु का माधुर्य, रास प्रसंग और बसन्त विजय मुखरित है। बेनीपुरी जी का कथन है कि "इनका बसन्त और पावस का वर्णन पढ़कर मंत्र मुग्ध हो जाना पड़ता है। इनके बसन्त और पावस में मिथिला की खास छाप है। बसन्त में मिथिला की रम्य श्यामला भूमि अलंकृत और दर्शनीय हो जाती है। पावस में हिमालय के निकट होने के कारण, यहाँ बिजलियाँ जोर से कड़कती हैं, प्रायः कुलिश पात होता है। इन्होंने इनका बड़ा ही अपूर्व वर्णन किया है।" (भूमिका, पृ० 48)

अन्य ऋतुओं का वर्णन—विद्यापति ने अन्य ऋतुओं शरद, शिशिर, हेमन्त आदि का भी वर्णन किया है किन्तु इनकी संख्या कम है। इस प्रकार के कुछ वर्णन बारहमासा में आये हैं—वर्षा के अन्त और शरद के आगमन पर संधिवेला का चित्र—

गगन बलाहक छाड़ल रे, वारिसकाल अतीत।
करिअ विनति सौं ए आएब, जाँ हृ बिनु तिहुअन तीत।
आवहु सुमति सधातिने रे, बाट निहारब जाउ।
कुदिनामर्बदिन नहि रहे रे, सुदिवस मन हरसाउ।
साँभर चन्दा उगला द रे, चाँदे पुनि गेलाह अकास।
एतवहि पिया के आए बारे, पलटव विरहिन साँस।

(मित्र मजू०प० 213)

विरहिणी कहती है आकाश अब मेघ मुक्त हो रहा है। वर्षा समाप्त हो रही है, शरद का आगमन हो रहा है। वह पति के आगमन हेतु विनय करती है, प्रतीक्षा के लिये सखियों को बुलाती है और कहती है कि उसका चन्दा आयेगा तो आकाश का चन्दा भी उसके लिये सुखकर होगा। स्पष्ट है कि इस पद में ऋतु वर्णन पर नायिका का भाव हावी है।

गोरक्ष विजय में भी एक शरद ऋतु का सुन्दर वर्णन मिलता है—

पिवति तमेहु शशि तैसा, विकसति पदम हसति कुमुदानि।।
लघु रूप राजति तारा, गुरुरपि सीदति पयोवाहाः।

निर्मल चाँदनी ने अंधकार को दूर कर दिया है, कमल खिलते हैं, कुमुद विहँसते हैं। छोटे छोटे तारे जगमगा रहे हैं, बड़े होने पर भी मेघ

काँपते और छीजते हैं। पूष-माघ की अत्यधिक सर्दी का प्रभाव विभिन्न श्रेणी के लोगों पर कैसा पडता है एक व्यग्य मिश्रित उदाहरण देखिये—

जाडल बाम्हन तेजए सनान, जाडल कामिनि तेजए मान।
जाडल राड घोपडी मार, बड पराभव पवन चाही।

(मि०मजू०प० 14)

उद्दीपन स्वरूप—विद्यापति के काव्य में वर्णित अधिकाश प्रकृति-छवि नायक-नायिकाओ के मनोभावो को उद्दीप्त करने के लिए ही हैं। कुछ विशुद्ध उद्दीपनो के उदाहरण देखिये—'पूप खीन दिन दीरघ राति 'तथा' माघ मास घन पडए तुसार, झिलमिल केचुआ उनत घन हार 'मे शिशिर की रात्रि सयोग और वियोग मे किस प्रकार सयोगिनी और वियोगिनी को प्रभावित करती हैं। जाडे के दिनो का अत्यन्त स्वाभाविक प्रभाव इनमे चित्रित है।

विद्यापति ने बारहमासा पद्धति पर एक ही पद मे बारहो मासो के विरहिणी के अनुभाव और मनोभाव का चित्र प्रस्तुत कर दिया है—अश्विन का एक चित्र—

आसिन मास आसि घर चीत, नाहू निकरुण व भेलाह हीत।
सरवर खेले चकवा हास, विरहिन वैरि भेल आसिन मास।

प्रकृति की एक ही उपादान का सयोग और वियोग मे अनुकूल प्रति-कूल प्रभाव देखिये—

नवल रसाल मुकुल मधुमातल, नव कोकिल कुल गाय।
नव युवती गन चित्र उमअतई, नवरस कानन धाय। अथवा
मोर बन-बन सोर सुनइत, बढ़त मनमथ पीर

\+ + +

पच सर छुटत रे कइसे, जीअए विरहिन नारि।

इन पदो मे नायिका का विरह भाव हाहाकार कर रहा है—काम के प्रहार से प्राण बचाना कठिन है। श्री रघुवश के शब्दो मे—'विद्यापति ने सौन्दय के साथ यौवन की स्फुरणशील स्थिति का सकेत प्रकृति के माध्यम से दिया है। सौन्दर्योपासक प्रकृतिवादी प्रकृति के दृश्यात्मक रूप मे यौवन की व्यजना के साथ आकर्षित होता है, उसी के समानान्तर विद्यापति

मानवीय सौन्दय के उल्लासमय यौवन से आकर्षित होकर प्रकृति रूप-योजना के माध्यम से उसे व्यक्त करते हैं।' ये अभिव्यक्तियाँ सयोग मे केलि और क्रीडा का अक्षय स्वप्नलोक है और वियोग मे प्रेमजनित अश्रुओ का अनन्त पारावार।

अलकार स्वरूप—विद्यापति सौन्दय के कवि हैं। भाव और रूप के सौन्दय को चित्रित करने के लिये अलकार के रूप मे प्रकृति के उपादानो का प्रयोग उन्होने खुलकर किया है। वैसे तो सम्पूर्ण पदावली मे प्रकृति का अलकरण रूप व्याप्त है किन्तु नख-शिख वर्णन मे यह रूप अधिक उभर कर आया है—

माधव कि कहब सुन्दरि रूपे।
कतेक जतन विहि आन सँमारल देखत नयन मरूपे।
पल्लव राज चरन जुग सोभित, गति गजराजक भाने।
कनक कदलि पर सिंह सभारल, तापर मेरु समाने।

इत्यादि (बे०पु०प० 12)

राधा के सम्पूण शरीर की रचना, कवि ने प्रकृति के उपादानो को ही एक पर एक जुटाकर प्रस्तुत किया है। सचमुच इन उपादानों को एकसाथ एकत्र कर राधा के रूप निर्माण मे विधि को कितना प्रयत्न करना पडा होगा।

भावुक बगभाषी जनता के कठ स्वर मे शताब्दियो तक गाये जाने के कारण विद्यापति के गीतो मे बगीय प्रभाव आ गया है किन्तु ध्यानपूवक देखा जाय तो मिथिला की मनोरम प्रकृति बार-बार इनके झरोखो से झाँक कर कहती है कि मैं मिथिला की हूँ, न ब्रज की, न बगाल की। इन प्रकृति चित्रणो में फलों फूलों और पक्षियो के नाम आये हैं, जो स्थानीय होते हुए भी परम्परित हैं और इनमे परम्परा का ही स्वर प्रबल है।

वृक्ष—अशोक, सहकार और कदम्ब भारतीय शृगार काव्य के सुपरिचित उपादान हैं। सहकार और कदम्ब तो मिथिला प्रकृति-सौन्दय के प्रमुख उपादान हैं। आम के सघन बगीचों को यदि मिथिला की पहचान कही जाय तो अनुचित न होगी। अशोक को भी विद्यापति ने विस्मृत नहीं किया है—

'कोकिल बोले साहर डार', या 'नवल रसाल मुकुल मधु मातल, नव कोकिल कुल गाय', 'साहर सौर मेदिमा', साहर सौरभ गगन भरे-नमरि भमर दुहुवाद करे', 'कोमल माजरि कोकिल वास,' तथा 'माहर मजर भमर गुजर, कोकिल पचम गाव', इस प्रकार के ये वृक्ष और पक्षी विद्यापति के पदो मे आकर विरही जन के हृदय के भाव आज तक व्यक्त करते आ रहे हैं। उनका रस शिव-घट की भाँति निरतर टपकता रहता है और घट कभी खाली नही होता। देखिये कामदेवता धन, धम और कुल मर्यादा कसे चुरा लेते है—धन कुल, धरम, मनोभव चोर, वेओन बुभाव मुगध पिया मोर।' कदम्ब तो राधा नायक कृष्ण का प्रिय वृक्ष है, उसी पर चढकर वे बाँसुरी बजाते हैं, चीर हरण करते हैं, राधा की प्रतीक्षा करते हैं—

(क) साँझक बेरीं जमुनक तीरीं,
कदम्बेरि बन तरु तरीं।
अकमि कानश कि कहब काली,
सोभहि जूझल सखि कुसुम सरीं।

(ख) नन्दक न दन कदम्बक तरु तर धिरे धिरे मुरली बजाव।

(ग) एक सर ठाढ़ि कदम तर रे, पथ हेरत मुरारि।

अशोक का भी प्रयोग कहीं-कहीं मिलता है—'कुन्द वल्ली तरु धएल निसान, पाटल तण अशोक बलवान, अरुन असोग दीप बहु आन।'

फूल—विद्यापति ने नायिकाओ के सौन्दर्य तथा उनकी अग छवि को उपमाओ को जुटाने के लिये परम्परागत रूढ़ियों के अनुसार ही मालती, केतकी, कमल, कुन्द, केसू, बकुल, कुमुद आदि फूलो का प्रयोग किया है। मालती का प्रयोग नवीना तरुणी के लिये, केतकी का सुकुमारता के लिये किया गया है। कमल तो सभी अगो का उपमान है, भ्रमर तो कमल और मालती के बीच ही चक्कर लगाता फिरता है और प्रेमाधिक्य के कारण बन्दी भी हो जाता है। कुन्द की उपमा नायिका से दी गई है। केसू के लाल फूलों से नखक्षत की ओर कुमुद तथा चन्द्र की जोड़ी तो प्रेम-सम्बन्ध का मान्य प्रतीक है। इनके अतिरिक्त चपक, माधवी, शिरीष, नाग केसरि, बेली और पाडरि का उल्लेख भी कतिपय पदों में हुआ है। माधवी नायिका

का उपमान है, शिरीष प्रणय सेज प्रसग मे कोमलता के लिये वर्णित है। पाँडरि सम्भवत पाटलि का मैथिली रूप है। विद्यापति ने पीले पाँडरि का उल्लेख किया है। बसन्त वणन मे पाटल, तूण और लवगलता का भी उल्लेख है। एक दो पदों मे शिव प्रसग मे धतूरा का भी प्रयोग मिलता है। केतकी और चम्पक के फूलों से केश विन्यास की चर्चा की गई है।

फलो मे बदरि, नवरग, सिरिफल, नारिकेल, कोरिकी, बेली तथा छोलगि से उरोजो के विकास का इतिहास लिखा गया है। अन्य किसी फल पर शायद कवि की दृष्टि नही पडी है—देखिये—

पहिल बदरि कुच पुनि नवरग,
दिन-दिन बाढल पीडए अनग।
से पुनि भए गेल बीजक पोर,
अब कुच बाढल सिरिफल जोर।

पक्षी—पक्षियो मे कोयल, चक्रवाक, मोर, पपीहा और चातक का उपयोग प्रेम गीतो मे किया गया है। वायस का उल्लेख भी प्रिय के सदेश लाने के प्रसग में हुआ है और उसे सोने के कटोरे मे दूध भात देने और चोंच को सोने से मढाने का वायदा भी नायिका द्वारा किया गया है। कोयल के बिना वसन्त का, मोर, पपीहा के बिना वर्षा का चित्र सदैव अधूरा रहता है। कौवा भी विचारी विरह विदग्धाओं को आशा प्रदान करता है। चक्रवाक का प्रयोग कुचो के लिये विशेषकर सद्य स्नाता प्रसग मे आया है। इसके अतिरिक्त गरुण, शुक, खजन, डाहुकि (पूर्वी बगाल की चिडिया) का भी प्रयोग कवि ने किया है। इनके अतिरिक्त अन्य जीवो—मीन, मृग, केहरि, करि, बाजि आदि के भी प्रयोगो की भरमार है।

प्रभात-सध्या रात्रि का वर्णन—सयोग वियोग उभय प्रसगों मे प्रभात, सध्या, चाँदनी एव अधेरी रात का भी वणन मिलता है। अभिसार प्रसग में चाँदनी रात का वर्णन शुक्लाभिसारिका के साथ, घनघोर अधेरी रात का कृष्णाभिसारिका के साथ तथा भिनुसार का प्रयोग विरहिनियों के लिये बडा मार्मिक हुआ है। गौरवर्ण नायिका के लिये चन्द्र ज्योत्सना कैसा पलास्टिग' परिधान आवरण का काम करती है। भिनुसार हो जाने पर भी

कृष्ण नायिका को जाने नही देते या प्रतीक्षा करते रात बीत जाती है भिनुसार हो जाता है। इस प्रकार 'काजर रजलि रात' और 'निरमलि राति' नायिका के भावों की अकथ कहानी कहते हैं। प्रभात और सध्या के वर्णन भी पदावली तथा अन्य रचनाओं मे हैं जिनके उदाहरण पहले दिये जा चुके हैं।

साराश है कि कोई भी कवि अपने प्राकृतिक परिवेश से अप्रभावित नही रह सकता। विद्यापति जैसे सवेदनशील कवि के लिये तो यह असभव था। मिथिला जैसी प्राकृतिक वैभव के बीच रहने वाला कवि मिथिला के सौन्दय से अनुप्राणित और अनुप्रेरित है। विद्यापति के काव्य में मानवीय और प्राकृतिक सौंदर्य एक दूसरे के पूरक बन गये हैं। विद्यापति का प्रकृति चित्रण उद्दीपन प्रधान है। राधा-कृष्ण के प्रेम जल मे भीग कर मिथिला की धरित्री ब्रजमयी हो गई है और उसके प्राकृतिक परिवेश की सुषमा राधा कृष्ण के सौन्दय और प्रेम के साथ मिलकर स्वर्ण मे सुगन्धि बन गई है। विद्यापति की प्रतिभा ने इसमे चार चाद लगा दिया है। उनके ममस्पर्शी चित्रो ने पाठक के मानस-पटल पर प्रकृति की तूलिका से सयोग और वियोग के 'केशव कहिन जाय का कहिये' वाला चित्र खीच दिया है। परस्परा मे पूरी तरह आबद्ध विद्यापति का प्रकृति चित्रण उनकी काव्य-कला के सहयोग से मौलिक और नितांत अनूठी बन पडी है।

पूर्ववर्ती एवं परवर्ती साहित्य के संदर्भ में विद्यापति का काव्य

महाकवि रसग्राही मधुप की भांति अपने पूर्ववर्ती ज्ञान-कोश एवं काव्य वैभव के बीहड़ अरण्य से भाव-मधु का चयन करता है और परवर्ती युग के लिए काव्य की मधुधारा प्रवाहित करता है। किंतु इस प्रभाव ग्रहण में कवि की मौलिकता और निखरती है और काव्य वस्तु को नया जीवन, नये संदर्भ और अभिनव रूप प्राप्त होता है। दाय और देय की यह मानवीय धारा निरंतर प्रवाहित होती रहती है। विद्यापति ने भी अपनी पूर्व साहित्यिक परम्परा से वस्तु और शैली को ग्रहण किया है लेकिन उनकी मौलिकता कहीं भी मलिन नहीं हुई है। विद्यापति पर श्रेण्य-साहित्य, संस्कृत साहित्य, प्राकृत, अपभ्रंश और स्थानीय साहित्य तथा अन्य सम्पर्क सूत्रों का प्रभाव देखा जा सकता है।

विद्यापति के काव्य पर पूर्ववर्ती साहित्य का प्रभाव---सामवेद से शास्त्रीय संगीत, राग रागिनियाँ, स्वरताल, गीत वेला प्रभाव और सहकारी बाधा का स्वरूप, ई०पू० प्रथम शताब्दि रचित भरत मुनि कृत नाट्य शास्त्र से गीत, नृत्य, नाटक, नाद, श्रुति, स्वर, मूर्च्छना और ग्राम आदि का समावेश, बाहर से आने वाली जातियों---गधर्व, किन्नर, विद्याधर आदि से गीति काव्य का लोक-जीवन रूप तथा चौथी-पाँचवी शताब्दी में स्रोत साहित्य से जिसमें विशेष रूप से 'चंडी कुचपचासिका' में उल्लिखित मालव, धनछी, कान्हड़, भैरव आदि राग रागिनियों के समावेश का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हिंदी साहित्य पर प्रभाव पड़ा है। अत

विद्यापति जो वस्तुत हिंदी के आदिकवि और सस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे, इन प्रभावो से कैसे बचे होगे। इनके अतिरिक्त ब्रह्मवैवत पुराण तथा श्रीमद्‌भागवत का भी प्रभाव विद्यापति पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। भागवत् मे वर्णित राधा-कृष्ण के तादात्म्य का चित्र विद्यापति के काव्य में उसी प्रकार मिलता है—

अनखुन माधव माधव सुमरइत, सु दरि भेल मधाई,
जो निअ भाव सुभावहि विसरल, आपन गुन लुबधाई।

ब्रह्मवैवत पुराण के प्रसग का साम्य इस प्रकार है—दूराद्वावति पद्‌माय मधुलोभा मधु व्रत ' का रूप विद्यापति मे—

मालति मधु मधुकर करि पान,
सपरूप जओ हो गुणक निधान।
अबुझ न बुझए भलहु बोल मन्द,
भेक न पिअब कुसुम मकरद।

गोपाल तापनी उपनिषद का एक प्रसग कीर्तिपताका मे आता है कि राम ने कृष्ण का रूप इसलिए धारण किया कि जिस प्रेम का उपभोग वे रामावतार मे नही कर सके उसका समुचित उपभोग कर सकें।

सस्कृत साहित्य मे माघ, कालिदास, अमरूक, श्री हर्ष, गोवर्धनाचार्य, जगन्नाथ तथा जयदेव आदि से विद्यापति विशेष रूप से प्रभावित हैं। माघ ने जो उपमा, पदलालित्य और अर्थ गौरव के लिए प्रसिद्ध हैं, सद्य स्नाता का वर्णन किया है। विद्यापति की सद्य स्नाता भी हिंदी मे बेजोड है। दोनो की एक झाँकी देखकर पाठक स्वय ही दोनो के सौंदर्य का सापेक्षित महत्व का अनुमान लगा सकता है। देखिये—

माघ—वासांसि न्यवसत यानि योषितस्त।
शुभ्राभ्र द्युति मिरहानि नभुदेव।
अत्याक्षु स्नपन गलज्जानि यानि।
स्थूलाश्रु स्त्रुतिभिर रोदि तै न्गुचेव।

अर्थात स्त्रियो ने नवीन वस्त्र धारण किये। वे वस्त्र प्रसन्न हो हँसने लगे किंतु जिन गीले वस्त्रो का परित्याग किया वे शोक से व्याकुल होकर अश्रु बहाने लगे। इसी प्रसग मे विद्यापति की रचना देखिये—

विद्यापति—ओ नुकि करत चाहि किअ देहा,
अवहि छोडब मोहि ते जब नेहा।
ऐसनि रसनहि पाओब आरा,
इथे लागि रोई गरए जल धारा।

महाकवि माघ तो केवल वस्त्रों का ह्रास और अश्रु सकारण दिखा कर रह गए किंतु विद्यापति के गीले वस्त्रों में अधिक सरसता और सजीवता है वे अंगों में चिपककर छिपने का प्रयास करते हैं और वियोग की आशंका से रोते हुए प्रतीत होते हैं। निस्सन्देह विद्यापति का यह पद अधिक प्रभावपूर्ण और मर्मस्पर्शी है।

कालिदास के शृंगार तिलक में एक श्लोक इस प्रकार आता है—
या मिन्येषा बहुल जल दैवद्ध भी मान्धकारा।
निद्रायातो मम पति रसौ क्लेशित कर्म दुःखं।
बाला चाहं मनसिज भयात् प्राप्त गाढ प्रकंपा।
ग्रामश्चोरे रयमुपहत पार्थनिद्रा जहीहि॥

अपने घर में सोये हुए पथिक से नायिका कहती है—हे पथिक निद्रा त्यागो। यह भयंकर अंधकारपूर्ण रात है। भाग्य दोष से दुखी होकर मेरे पति सो गए हैं। मैं बाला हूँ कामदेव के भय से थर थर काँप रही हूँ, इस गाँव में चोरों का डर भी है। यही वर्णन विद्यापति में इस प्रकार है—

हम जुवती पति गेलाह बिदेस,
लगनहि बसए पड़ोसिया कलेस।
सासु दोसर किछुओ नहि जानि,
आखि रतौंधी सुनये न कान।
जागह पथिक जाउ जनु भोर,
राति अन्हार गाम बड़ चोर।
भरमहु भोरन देस कोतवार,
बाहूक केओ नहि करम विचार।
अधिपन कर अपराधहु साति,
पुरुष महत सब हमरे जाति।

विद्यापति ने पति को विदेश भेज, सासु को अंधी बता, कोतवाल

पहरा नही देता, राजा दण्ड नही देता और गाँव के चौधरी उसी की जाति के हैं, बताकर एक अनुकूल वातावरण की सष्टि कर दी है। ऐसा अनुकूल वातावरण और अधिकारियो की लापरवाही का चित्र कालिदास के पद म नही उभर पाया है।

कालिदास के ही रघुवश मे इदुमति के स्वग गमन प्रसग मे कवि कहता है—'वह कोयल को मदु स्वर, राजहसिनी को चाल और मगियों को चितवन सौंपकर चली गई।' मेघदूत मे यही प्रसग इस रूप मे है—

श्यामा स्वग चकित हिरणी प्रेक्षणे दृष्टिपात।
वकत्रच्छाया शशिन शिखिनाम् वहर्यारेण् केशव।

इसी भाव को विद्यापति इस रूप म व्यक्त करते हैं—

सरदक ससधर मुख रुचि सोपलन्हि, हरिन के लोचन लीला।
केस पास चामरू के सोपलन्हि पाए मनोमव पीडा।
दसन बीज दाडिम के सोपलन्हि, पिक के सोपलन्हि बानी।
देह दसा दामिन के सोपलन्हि, इसम एलहु जानी।

श्रीहष के नषधचरित मे दमयती के नेत्रो के लिए जो पचवानो की उक्ति है वही उक्ति विद्यापति ने अपनी नायिका के लिए भी की है—

तीनि बानि तिन भुवन मदन जिति, अवधि रहल दुई बाने।
विधि बडदारून बधए रसिक जन, सापलन्ह तोहर नयाने।

अमरूक कवि की प्रसिद्ध श्रृगार रचना 'अमरूक शतक' के दो प्रसग विद्यापति पर प्रभाव की दृष्टि स दृष्टव्य हैं—

भ्रूभगे रचितेऽपि दृष्टि रधिकम् सोत्कठम मुद्वीक्षते,
रूद्धायामपि वाचि सस्मितमिद दग्धानन जायते।
कार्कश्य गमितेऽपि चेतसि तन रामाच मालम्बते।
दष्टे निवहणम भविष्यति कथ मानस्य तस्मिज्जन।

नायिका कहती है कि तनी हुई भौंहें भी उसक सामन आन पर उत्कठा स देखन लगती हैं, मुख पर मुस्कान छा जाती है, मन का कठोर करन पर भी रोमाच हो आता है अत ऐस नायक क साथ मान कसे निभ सकता है। इसी तथ्य का वणन विद्यापति क शब्दों मे दखिय—

दुरहि् रहिय करिय मन आन,
नअन पियासल हुँटल न मान ।
हास सुधारस तव मुख हेरि,
बाँध लेआ बाँध निबि कत बेरि ।
कि सखि करब घरब की गोय,
करब मान जो आइत होय ।
घसमस करय रहओ हिय जाँति,
सगर सरीर घरब कत भाँति ।
गोपहिन पारिअ हृदय उलास,
मुनलओ वदन बेकत होअ आस ।

नायिका कितनी विवश है। हटकने पर भी प्यासे नेत्र उधर ही चले जाते हैं, देखकर नीबी बधन शिथिल हो जाता है, मन का भाव छिपाये नही छिपता। छाती पर पत्थर रखने पर भी हृदय काँपने लगता है, आँख मूदने पर भी हँसी आ जाती है। ऐसी प्रेमो मत्त स्थिति मे भला मान कैसे सम्भव है। दोनो नायिकाओ की अनुभूति, भाव प्रवणता और प्रेमोन्माद मे कितना अतर है।

अभिसार के लिए जाती हुई एक नायिका का चित्र 'अमरू शतक' मे इस प्रकार है— क्व प्रस्थितासि कर भोरू घने निशीथे।
प्राणाधिको वसति यत्र जन प्रियो मे।
एकाकिनी बन कथ न बिभेषि बाले,
नन्वस्ति पुखित सरो मदन सहाय ।

प्रश्नोत्तर शैली मे यह प्रसग बडा रोचक है। सखी पूछती हैं—हे करूभोर, रात के निविड अधकार मे तू कहाँ जा रही है ? उत्तर है—जहाँ प्राणो से भी प्यारा मेरा प्रियतम है। सखी पुन प्रश्न करती है—तुम अकेली होकर भी डरती नही हो ? उत्तर मिलता है—धनुष पर बाण चढाये कामदेव मेरे सहायक हैं। इसी प्रसग की प्रस्तुति विद्यापति की पदावली मे देखिये—

निसि निसि अरे भय भीम भुअगम जलधर विजुरि उजोर ।
तरुन तिमिर निसि तइओ चलसि जासि बड सखि साहस तोर ।

सुन्दरि कौन पुरुष घन जे तोर हरल मन जसु लोभे चलि अभिसार।
आतर दुतर नदी से कइसे जयवइ तरि आरतिन करिए झाँप।
तोरा अछि पचसर, ते तोरा नाही डर, मोर हृदय वड काँप।

सखी कहती है रात मे निशाचर और सप घूमते हैं, निविड अधकार है, बिजली चमक रही है, ऐसी भयानक रात मे अभिसार के लिए जा रही हो, तुम्हारा साहस सराहनीय है। कौन वह श्रेष्ठ पुरुष है जिसने तुम्हारा मन हर लिया है। बीच म दुस्तर नदियाँ हैं, कैसे पार करोगी ? प्रेम मत छिपाओ कामदेव तुम्हारा सहायक है, इसलिए तुम्हें कोई भय नही। मेरा हृदय तो काँप रहा है। इन दोनो पदो मे *अमरू की शैली* सुन्दर है किंतु विद्यापति की तरह भयानक वातावरण का सृजन वे नही कर पाये हैं और विद्यापति तो स्वय इस अनुभव मे साझीदार लगते हैं और नायिका को अभिसार के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

प्रिय की प्रतीक्षा करती हुई 'गाथा सप्तशती' की नायिका कहती है—

अज्ज गओति अज्जगओति गणरीए
पढमब्बिव अपियह हे कुडठो रेहाहि चित्रिलि ओ।

(गा० स० श 3/8)

ऐसी ही प्रतीक्षा की घडिया गिनते गिनते देखिये विद्यापति की नायिका के नाखून घिस गए हैं, दीवाल भर गई है—

कतदिन माधव रहव मथुरा पुर, कवे घुचव विहि वाम।
दिवस लिखि लिखि नखर खोवावल, विघुरल गोकुल ग्राम। या
कालिक अवधि करिअ दिआगेल, लिखइते कालि भीत भरि गेल।

श्रृगार के सवश्रेष्ठ कवि गावधनाचाय की रचना 'आया सप्तशती' मे नायिका नायक से कहती है, मैंने मान नही त्यागा है, मुझे सखियाँ अकेली छोडकर चली गई हैं, यदि तुम मेरे साथ बलात्कार करोगे तो मैं मर जाऊँगी—

अनुग्रहीता नुनया मामुपेक्ष्य सख्यो गता बनै का हम।
प्रसम करोसि मयिचत्व दुपरि वपुरच मोदयामि।

इसी प्रसग को विद्यापति ने इस प्रकार वर्णित किया है—

ए हरि बले जदि परसब मोय,
तिरि बध पातक लागल तोय।
तुहु रस आगर नागर ढीठ,
हमन बुझिय रस तीत की मीठ।

नायिका कहती है—हे हरि यदि तुम बलपूवक मेरा स्पश करोगे तो तुम्हें त्रिया बध का पाप लगेगा। तुम रस के आगर नागर हो और ढीठ हो। मैं भोली नायिका रस का स्वाद नही जानती—वह मीठा होता है अथवा कड़वा। इस नायिका मे रस का स्वाद जानने की अभिलाषा स्वाभाविक है और उसे पाने का सकेत भी। इन दोनो अभिव्यक्तियो की तुलना करते हुए प० शिवन दन ठाकुर न कहा है—'आर्या सप्तशती' की नायिका आत्महत्या की धमकी देकर बलात्कार करने से रोकती है किंतु विद्यापति की नायिका अनुमति के बिना अग स्पर्श से भी रोकती है। प्रथम प्रसग मे भय का वातावरण और अस्वाभाविकता का दोष है जबकि दूसरे प्रसग म सरसता है और नायक को आमत्रण भी इसलिए मेरी समझ मे यहाँ विद्यापति गोवधनाचाय से कई कदम आगे बढ गये हैं।'

(महाकवि विद्यापति, प० 125)

सस्कृत साहित्य मे जयदेव का प्रभाव विद्यापति पर सर्वाधिक है। इसम तीन जयदेव का उल्लेख मिलता है—गीत गोविंदकार, प्रस न राघव नाटककार तथा च द्रलोककार। विद्यापति को प्रभावित करने वाले गीत गोविंदकार जयदेव हैं। ये राजा लक्ष्मण सेन के दरबार मे विद्यमान थे। इनकी एक मात्र उपलब्ध रचना 'गीत गोवि द' है। सस्कृत साहित्य मे इसकी कोमल कात पदावली अप्रतिम है। इस काव्य के सम्ब ध मे स्वय जयदेव की गर्वोक्ति है—

माध्वीक चि ता न भवति भवत शर्करे ककशासि,
द्राक्षे द्रक्ष्यन्ति के त्वाम मृत मतपसि क्षीर-नीर रसस्ते।
माक द क द का ता धर धरणि तल गच्छ यच्छ ति भाव।
यावत श्रृगार सार शुभमिव जयदेवस्य वैदग्ध्य वाच।

इसी प्रकार की विनयोक्ति अपने काव्य के सम्ब ध मे विद्यापति ने की है—

बाल चन्द विज्जावई भाषा,
दुहू नहि लग्गई दुज्जन हासा।
ओ परमेसर सिर सोहइ,
ई णिच्चइ नाअर मन मोहइ।

इस गीत गोविंद का विद्यापति के काव्य पर इतना गहरा और व्यापक प्रभाव है और दोनो के काव्य गुणो म इतनी निकटता और साम्य है कि विद्यापति को अभिनव जयदेव के नाम से विभूषित किया गया। गीत गोविंद और विद्यापति की तुल्य पक्तियो मे मन को मुग्ध कर लेने की अद्भुत क्षमता है—

जयदेव गीत गोविन्द—

(क) नाम समेतम कृत सकेतम् वरदयते मदु वेणुम।
(ख) ललित लवग लता परिशीलन, कोमल मलय समीरे
मधुकर निकर करबित कोकिल, कूजित कुज--कुटीरे।
(ग) चन्दन चर्चित नील कलेवर पीत वसन बनमाली।

विद्यापति पदावली—

(क) नदक नदन कदम्बक तरू तर धिरे धिरे मुरली बजाव।
समय सकेत निदेसनि बइसलि, बेरि बोल पठाव।
(ख) कुज भवन ते निकसलरे रोकल बनवारी।
एकहि नगर वसि कान्हारे, जन कर बटमारी।
(ग) नव वृन्दावन, नव नव तरु गन, नव नव विकसित फूल।

कही कही तो विद्यापति जयदेव से भी आगे बढ गये हैं। जयदेव का विरही नायक कामदेव के प्रति उलाहना देता है—

हृदिविसल ताहारो नाम भुजगम नायक।
कुवलय दल श्रेणी कठेन सा गरल द्युति।
मलयज रजो भेद भस्मप्रिया रहिते मयि।
प्रहरन हरभ्रान्तयाऽनग क्रुधा किमि धावसि।

यही भाव विद्यापति म देखिये—

कतन वेदन मोहि देस मदना,
हर नहि बला मोहि जुवति जना।

विभुत भूषन नहि चननक रेन्दू,
बघ छल नहि नेतक बसन् ।
नहि मोरा जटा भार चिकुरक बेनी,
सुरसरि नहि मोरा कुसुमक श्रेनी ।
नहि मोरा काल कूट मृग मद चारू,
फनपति नहि मोरा मुक्ता हारू ।

प्रस्तुत प्रसग मे विद्यापति का शब्द प्रयोग अधिक सटीक, सार्थक और चमत्कारिक है। जयदेव ने 'अनग' शब्द और विद्यापति ने 'मदन' का प्रयोग किया है। मदन सुख देने वाला होता अत विद्यापति मे विरोध का चमत्कार आ गया है। जयदेव की नायिका कहती है हे अनग तुम हर के भ्रम मे मुझ पर क्रोध कर क्यों प्रहार करते हो जबकि विद्यापति की नायिका कहती है मैं हर नहीं बाला हू, मुझे इतनी पीडा क्यो देते हो। पहले मे काम का अविवेक इगित होता है और दूसरे मे कवि की अभिव्यक्ति रसिकता प्रधान है।

कही-कही तो विद्यापति ने जयदेव की उक्तियो को ज्यो का त्यो रख दिया है—

—रजनि जनित गुरु जागर-राग कसायित मलसनि वेशनम् ।
—जयदेव

—लोचन अरुन बुझल बडे भेद, रमनि उजागर गरुअ निवेद ।
—विद्यापति

—हरि हरियाह माधव याहि माधव मा वद कैतव वादम्
ता मनुसर सरसीरूह लोचन यातव हरित विपादम् । —जयदेव
—ततह जाइहरि करह न लाथ, रअनि गमओहल जनि के साथ ।
—विद्यापति

स्पष्ट है कि विद्यापति ने पूववर्त्ती सस्कृत-कवियो के काव्य का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है और योग्य पुत्र की भाँति पूर्वजो की सम्पत्ति और कीर्ति की अभिवृद्धि है। 'गीत गोविंद' का तो कवि चिर ऋणी है। कवि की सहृदयता मधु मक्षिका के सदृश पूव युग—वाटिका के भाव-पुष्पो से रस सचित कर अपनी अभिनव कला एव मौलिकता से उसे अभिनव कलेवर

और नूतन सौष्ठव प्रदान किया है। ग्रहीत पूर्ववर्त्ती प्रसगो पर विद्यापति की अपनी छाप है, पदावली की मुहर है। विद्यापति की लेखनी के स्पर्श से काव्य की आत्मा और शरीर की शोभा अधिक निखर उठी है।

सस्कृत साहित्य के अतिरिक्त विद्यापति के काव्य पर मथिली तथा अपभ्र श साहित्य का भी प्रभाव कम नही। मथिली साहित्य मे ज्योतिरीश्वर ठाकुर के 'वणरत्नाकर', 'धूत समागम', श्रीधर मिश्र सकलित 'सुदुक्ति कर्णामृत' का व्यापक प्रभाव है। सौन्य चित्रण मे अकुरित यौवना, विरह तथा नख शिख वर्णन मे इनका प्रभाव देखा जा सकता है—

—चल सरोज सुन्दर नयने, मानुनु कम्पय शशि वदने।

—ज्योतिरीश्वर

—सुन्दरि चलि लहु पहुँ घरना, जइतहि लाग परम डरना।

—विद्यापति

वण रत्नाकर के सखी वणना प्रसग मे—'एके अपूव विश्वकर्माक्षे निमअउलियाकि मुख शोभा देखि पदमे जल प्रवेश कएल, अधिक शोभा देखि हरिन वसा गएल जघ जुगल शोभा देखि कन्ली विपरीत गति कएल, बाहु युगलक शोभा दख पदमनाल पकनिमग्न भएल।' यही विद्या पति पदावली मे—

कबरी भए चामर गिरि कन्दर, मुख भय चाँद अकासे।
हरिन नयन भय, स्वर भये कोकिल, गति भये गज बनवासे।
भुजभये कनक मणाल पक रहु कर भये किसलय कापे।
विद्यापति कह कत कत अइसन, कहब मदन परतापे।

'सदुक्ति कर्णामत' मे सग्रहीत पदो मे भी अन्भुत साम्य देखने को मिलता है—

—यूना पुर सपदिकिच दुवेत लज्जा। —हनुमन्त

—सुनइत रसकथा थापए चीत, जसे कुरगिन सुनए सगीत।

—विद्यापति

अकुरित यौवना—पदाम्याम् युक्तास्तर लगतय सथिता लोचना म्याम्।

श्रेणी बिम्बत्यजति तनुता रोवते मध्य भागा। —कविराज शेखर

—सैसव यौवन दरसन भेल,
दुहुपथ हेरइतं मनसिज गेल।
मदन किताब पहिल परचार,
भिन जन देयल भिन्न अधिकार। —विद्यापति

विरह—हारो ना रोपिता कठे, भया विश्लेभीरुणा,
उदानी मायवो मध्ये, सरित सागर भूधरा।
—दामोदर मिश्र

—चिर चन्दन उर हारन देल, से अब नद गिरि आतर भेल।
—विद्यापति

विद्यापति के साहित्य पर अपभ्रंश साहित्य का भी पर्याप्त प्रभाव है। राहुल जी लिखते है—

देशी भाषाओ का काव्य अत्यन्त सम्पन्न तथा वैभवपूण है। सरहपा, वीणापा, कन्हपा, लुइपा आदि सिद्धानो का प्रभाव इन पर स्पष्ट है। नालन्दा इनका मुख्य केन्द्र था। इसके प्रभाव मे तुकात पदो की रचना कामरूप, बग, मगध एव हिमालय की तराई मे अधिक मात्रा मे हुई। (हिन्दी काव्य धारा—राहुल साकृत्यायन) इस साहित्य मे भैरवी, पटमजरी, कामोद, गावडा, देवकी, गुर्जरी, मलारी, बराडा, घनछी आदि रागो का प्रयोग हुआ है जिनमे से कुछ का प्रयोग पदावली मे भी मिलता है।

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी विद्यापति के गीतो पर कनाट गीतो और नतको का प्रभाव मानते हैं। ये प्रभाव नान्यदेव के साथ मिथिला मे आये। उनका मत है कि विद्यापति पर भागवत का प्रभाव उतना नही है जितना दक्षिण के कर्नाट गीत परम्परा का। प्रमाण स्वरूप कहते है कि विद्यापति का रास वणन भागवत परम्परा म नही है क्योकि उसमे शरदकालीन रास का वणन न होकर बसन्तकालीन रास का वणन है।

—मध्य कालीन धर्म साधना

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि विद्यापति ने अपने पूववर्त्ती साहित्य-सस्कृत, मैथिली, पुरानी हिन्दी आदि सबसे चतुर गुण ग्राहक की भाँति भावधारा का सचय अपने काव्य मे किया है किन्तु उसे अपनी विलक्षण

प्रतिभा एव अप्रतिभ मौलिकता के कूलो मे बाँध कर उसे प्रवाह और प्रवाह की अभिनव शक्ति प्रदान की है। इस प्रवाह मे गति है, सरसता है, भावोर्मियो का सहज नर्तन है और जीवन को स्फूर्त करने की अदभुत क्षमता है।

विद्यापति के काव्य का परवर्त्ती साहित्य पर प्रभाव—अपने पूववर्ती साहित्य से विद्यापति ने जो काव्य सम्पदा वस्तु, भाव, भाषा और शैली के रूप मे ग्रहण किया उसका तात्कालीन लोक हृदय के साथ रागात्मक सम्ब‍ध स्थापित कर एक अभिनव अपरिमित काव्य कोप की स्थापना की और उस अक्षय कोप को अत्य‍त उदारता के साथ बगाल, बिहार, असम, ओडीसा, नेपाल तथा मध्य देश को वितरित कर दिया। डॉ० जयकात मिश्र का मत है कि विद्यापति का प्रभाव पूर्वी भारत पर तो पडा है, कि‍तु मध्य भारत पर नही। पर यह उनका भ्रम है क्योकि मध्य दश मे बगाली वैष्णवो और गोस्वामियो के विद्यापति की बहुमूल्य थाती मध्यदेश मे आई। जौनपुर सम्ब‍धी घटनायें तथा जौनपुर के वणन भी इसके प्रमाण हैं। विद्यापति का प्रभाव देश‍यापी था हाँ इतना अवश्य है कि इतिहास को अभी विद्यापति के साथ ‍याय करना बाकी है।

प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० फर्कुहर का कथन है कि—"राधा की उपासना भागवत के आधार पर वृ‍दावन मे 1100 ई० के आसपास प्रारम्भ हो गई होगी और वहाँ से बगाल तथा अ‍य स्थानो पर पहुँची। विद्यापति से राधा कृष्ण साहित्य की परम्परा ग्रहीत हुई और उसका पूर्ण विकास हुआ। इसी परम्परा के आधार पर हि‍दी के मध्यकाल भक्तिकाल मे स्वण युग साहित्य का सजन हुआ। रीतिकाल मे पहुँच कर उसम लौकिक शृगार प्रधान हो गया और उसका स्वरूप तनिक विकृत हो गया। समस्त शृ गार साहित्य के मेरु दण्ड वात्स्यायन कृत 'काम सूत्र' की मर्यादा काल प्रवाह के साथ समाप्त हो गई और इसने इ‍द्रिय-सुख, आसक्ति और अमर्यादित शृ गार का स्वरूप ग्रहण कर लिया।

मध्य काल के भक्त कवियो ने विद्यापति से भाव और शैली तत्व को ग्रहण किया। कबीर की वाणी मे गोवि‍द, माधव, गिरिधर, बनवारी, मुरारि, मधुसूदन आदि नामों का उल्लेख इसी प्रभाव के अन्तर्गत है।

काव्य मे माधुर्य भावना, विरह की तीव्र अनुभूति, मिलन की उत्कठा ापति की अभिसारिकाओ के ही समान है। जायसी तथा अन्य सूफी यो मे यह मधुर भाव अत्यन्त आध्यात्मिक हो उठा है किन्तु उनपर कता की छाप है और लोक-जीवन ही उनकी अभिव्यक्ति का साधन रामकाव्य पर इस परम्परा का गीति शली के अतिरिक्त कोई स्पष्ट व दृष्टिगोचर नही होता किन्तु तुलसी ने इस परम्परा के प्रभाव को ा पुराण निगमागम' के साथ यह कह कर स्वीकार किया है—'जो त कवि परम सयाने, भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने।' तुलसी की कुछ तया मे भी साम्य देखा जा सकता है—

(क) डम डम डफ डिमिक डिमि मादल,
रुनुभुनु मजिर बोल।
किंकिन रनरनि बलआ कनकिन,
निधुवन रास तुमुल उतरोल। —विद्यापति

(ख) कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि,
कहत लखन सन राम हृदय गुनि।
मानहु मदन दुदुभी दीनी,
मनसा विश्व विजय कहँ कीन्ही। —तुलसी

इन अवतरणो में ध्वनि साम्य तो है ही भाव साम्य की भी झलक न जाती है। इसके अतिरिक्त विद्यापति के भक्ति पदो—'माधव हम नाम निरासा', 'तातल सैकत वारिबिन्दु सम' आदि पढ़ कर विनय-त्रका की याद आने लगती है।

कृष्ण साहित्य और उनके कवियो पर भी विद्यापति का व्यापक प्रभाव ष्टिगोचर होता है। राधा-कृष्ण चरित की गान पद्धति में जयदेव और द्यापति ने जो धारा बहाई उसी का अवलम्बन हिन्दी के कृष्ण धारा के वियों ने किया। सूरदासकृत सूरसागर म कृष्ण जन्म से मथुरा गमन की ग ही विस्तार सहित वर्णित है। यह वर्णन लोक जीवन म प्रचलित लिक गीति-परम्परा का ही विकसित रूप है। इन घरेलू गीतो म शृगार र करुण रस का सुन्दर चित्रण मिलता है किंतु परकीया प्रेम के गीतों म या कृष्ण तथा अन्य गोपियों के नामो और सम्बन्धो का आधार है। सूर र विद्यापति के गीतों म साम्य के कुछ उदाहरण—

(क) अनखन माधव, माधव सुमरइत सुन्दरि भेंन मधाई।
ओ निज भाव-सुभावहि बिसरलि, आपन गुन लुबधाई।
—विद्यापति

(ख) जब राधे तब ही मुख माधो, माधो रटत रहै।
जब माधो होइ जात, सकल तनु राधा बिरह दहै। —सूरदास

राधा-कृष्ण के रूप चित्रण मे भी नख शिख का स्वरूप एक ही प्रकार का है—

(क) माधव कि कहब सुन्दरि रूपे।
कतेक जतन विहि आने समारल, देखल नयन सरूपे।
पल्लव राज चरन-जुग सोभित, गति गजराजक माने।
कनक कदलि पर सिंह समारल, तापर मेरु समाने।
—विद्यापति आदि

(ख) अदभुत एक अनुपम बाग।
युगल कमल पर गजवर क्रीडति, तापर सिंह करत अनुराग।
हरि पर सरवर सर पर गिरवर, गिरि पर फूले कंज पराग।
—सूर आदि

इन दोनो चित्रो की तुलना से प्रतीत होता है कि दोनो म पर्याप्त साम्य है—विद्यापति का पद कला और भाव दोनो दृष्टियो से श्रेष्ठ है जब कि सूर की भाषा अधिक परिमार्जित और मधुर है। इमी प्रसग म एक और साम्य देखा जा सकता है—

(क) नाभि विवर सँय लोम लतावलि, भुजग निसास पियासा।
नासा खगपति चचु भरम भय कुचगिरि सधि निवासा।
—विद्यापति

(ख) नाभि परस लो रस रोमावलि, कुच जुग बीच चली।
मनहु विवर तें उरगरिग्यो तकि, गिरि की सधि थली।
—सूरदास

(ग) अवनत आनन कय हम रहिलहु, बारल लोचन चोर।
—विद्यापति

(घ) हरि मुख निरखत नैन भुलाने।
वे मधुकर रुचि पकज लोभी, ताहीते न उडाने। —सूरदास

उभय कवियो की अभिव्यजनायें अनूठी हैं। साम्य होते हुए भी उनकी अपनी मौलिकता है। सौ दय चित्रण अनुपम है।

विरह वेदना व्यक्त करती हुई सूर की राधा आशा मे जीवन को अरुझा कर रखती है किन्तु विद्यापति की राधा 'जियवो न जाए' कहकर अत्यन्त मार्मिक हो उठती है। 'निव शिव के प्रयोग से भाव मे और मार्मिकता आ जाती है क्योकि कामदेव से रक्षा करने के लिये निव से अधिक उपयुक्त और कौन हो सकता है।

विद्यापति और सूर की राधा दोनो नवल हैं, कृष्ण भी नवल है, वे वृन्दावन मे विहार करते हैं—

(क) विहरई नवलकिशोर—
कालिन्दी पुलिन कुजबन, शोभन नव नव प्रेम विभोर।
—विद्यापति,

(ख) नवल गोपाल नवेली राधा, नये प्रेम रस पागे।
नव तरुवर विहार दोउ क्रीडत, आपु-आपु अनुरागे।
—सूरदास

विद्यापति नयन चकोर को काजर के पाँस से बाँधकर रखते हैं तो सूरदास उसे अजन के गुन से। इतना ही नही देखिये विद्यापति और सूर दोनो की राधा के सौन्दर्य से लज्जित होकर रूढिगत काव्य उपमान किस प्रकार छिप जाते हैं—

(क) कबरी भय चामर गिरि कन्दर, मुख भय चाँद अकासे।
हरिन नयन भय सर भय कोकिल, गति भय गज बनवासे।
—विद्यापति

(ख) भुजा देखि अहिराज लजा यो, विवर पैठे धाय।
कटि निरखत केहरि डर मान्यो, बन बन रहे दुराय।
—सूरदास

इस प्रकार के साम्यधर्मी अनेक पद दोनो की कृतियो मे ढूढे जा सकते हैं। इस शोध मे स्वतत्र शोध की अपेक्षा है। केवल सूरदास ही नही भक्ति आन्दोलन से प्रभावित रागानुगाभक्ति के सभी भक्त कवि विद्यापति से प्रभावित हैं। कृष्ण विरह की अनन्य गायिका मीरा भी इस प्रभाव से बची नही हैं। डॉ० जयकान्त का कहना है कि— 'मीरा के विरह मे जहाँ जहाँ जो उत्तेजना भरी स्वर झकार है। वह विद्यापति का सगीत है। मिलनोत्कठा मे जो तृष्णा की छटपटाहट और भावुकता है, हम समझते हैं कि उस प्रेरणा की स्रोत भी विद्यापति की राधा है।' अत कबीर से लेकर मीरा तक काव्य परपरा और विशेष कर कृष्ण काव्य परपरा पर गीति-सम्राट विद्यापति के प्रभाव को अस्वीकार नही किया जा सकता है।

काव्य के क्षेत्र मे विद्यापति और रीतिकालीन कवि एक ही धरातल पर खडे प्रतीत होते हैं। राधा गोविन्द का स्मरण तो बहाना मात्र रह गया था, उनका मुख्य लक्ष्य तो नायक नायिका का स्वरूप, नखशिख, हाव भाव एव श्रृगारिक चेष्टाओ का रसमय और चमत्कारिक वर्णन हो गया था।

रीतिकालीन कवियों पर विद्यापति का प्रभाव केशव से ही माना जाना चाहिए। सद्य स्नाता का चित्र—'कामिनि करए सनाने' की झलक केशव के इन पक्तियो मे देखा जा सकता है— सज्जल अम्बर छोडत बने,

छूटत हैं जल के कन घने।' विद्यापति की कनकलता केशव मे सोने की लता है। विद्यापति की विरहिणी बिनु स्नेह जरइ जनुदीपे' है तो केशव की—दीपशिखा सी देह है। विद्यापति मे 'पपिहा पिउ पिउ' रट कर विरहिणी को दुख पहुँचाता है तो केशव मे चातक ज्यों पिउ पिउ' से विरहिणी का दुख बढता है।

महाकवि देव ने तो 'सकल सार शृगार' की घोषणा कर विद्यापति के काव्योद्देश्य को ही अपना लिया है। विद्यापति की दूती की भाँति ही देव की दूती – कृष्ण से पूछ रही है—

(क) *जनिक एहन छनि काम-कला सनि सेविय करू बिभिचार।*
— विद्यापति

(ख) रसिक कन्हाई बलि पूछन हौं आई,
तुम्हें ऐसी प्यारी पाय, कैसे प्यारी राखी जात है। —देव

बिहारी के तो अनेक दोहो पर विद्यापति की छाप है। यथा—

(क) श्रवनक पथ दुहुलोचन लेल। —विद्यापति
(ख) काननचारी नैन। बिहारी तथा वय सधि का चित्र
(ग) छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यो जोबन अग।
दीपति देह दुहुन मिलि, दिपति ताफ्ता रग। —बिहारी

विद्यापति के मेरु उपजल कनकलता को रीतिकालीन कवि शेख और आलम ने कैसा उतार लिया है—'कनक छरी सी कामिनी' मे। इस प्रकार हम केशव से लेकर ग्वाल कवि तक विद्यापति के प्रभाव को देख सकते हैं। आइने अकबरी मे भी विद्यापति के नाचारियो का उल्लख है। इस प्रभाव को हम कालक्रम और परिवर्तित परिवेश के सदभ मे भी देखना होगा। विद्यापति, केशव और ग्वाल तीनो ही शृगारी कवि थे। विद्यापति के शृगार मे हिदू दरबार का प्रभाव है, केशव मे मुस्लिम दरबार का वैभव शाली शृगार और ग्वाल के शृगार म अठारहवी शताब्दी का यथाथ चित्रण। विद्यापति मे शृगारिक नग्नता परम्परा पालन के रूप म है, केशव मे वह विलास वैभव मे डूबा हुआ है जबकि ग्वाल के काल मे यह नग्न शृगार जीवन मे प्रवेश कर गया है। कहना नही होगा कि विद्यापति के भक्ति भाव को परिस्थितियो के अनुकूल भक्त कवियो के भावास्फुरण म स्थान मिला और शृगारी पक्ष को रीतिकालीन कवियों ने गले से लगाया।

आधुनिक काल के कवियो के भी गीत विद्यापति से समानता रखते हैं। भारतेन्दु युग मे आकर विद्यापति की गीति शैली पुन प्राणवती हो गई। मैथिलीशरण गुप्त के साकेत का एक पद विद्यापति से बिल्कुल साम्य

रखता है। विद्यापति का पद है—'कतन वेदन मोहि देसि मदना, हो हर नहि युवति जना'। गुप्तजी का पद है—'मुझे फूल मत मारो, मैं अबला बाला वियोगिनी कुछ तो दया विचारो।' प्रसाद की कामायनी मे 'श्रद्धा के अधखुले सौन्दर्य को विद्यापति के 'ससनि परस खस अम्बर रे, देखल धनि देह' मे देखा जा सकता है। विद्यापति के 'चाँद सार ले मुख छटना करि' मे 'चचला स्नान कर आवे चाँदनी पव मे जैसी' की झलक मिलती है। महादेवी के विरह मे विद्यापति की भावना का बीज है। दिनकर तो विद्यापति के क्षेत्र के ही थे, उन्होने अपने अतीत से प्रश्न भी किया है—'विद्यापति की लोक-परम्परा से प्रभावित हैं, यह बात बच्चन जी ने स्वय लेखक को लिखे गये एक पत्र मे बताया है। आधुनिक सिनेमा के साहित्यिक तथा लोकधुन गीतो मे भी विद्यापति का प्रभाव है। सिने जगत के कलाकार श्री तिवारी तथा सिनहा आदि इसके साक्षी हैं। अत सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य पर विद्यापति के पभाव को नकारा नही जा सकता। किन्तु यह प्रभाव उनकी मौलिकता मे बाधक नही साधक है और प्रेरक तथा मार्गदर्शक भी।

विद्यापति के काव्य का प्रभाव हिन्दी क्षेत्रो के अतिरिक्त मिथिला बगाल, असम और उडीसा आदि के भक्ति तथा नीति काव्य पर है। अपने जीवन काल मे ही विद्यापति को दुर्लभ ख्याति प्राप्त हो चुकी थी वे कीर्ति सिंह के लिए खलन कवि, समकालीनो के लिए सरस, सुकवि कठहार, अभिनव जयदेव आदि के नाम मे लोकप्रिय थे। लोचन कवि ने राज तरगिणी मे विद्यापति का श्रेष्ठ गीतिकार के रूप म प्रतिष्ठित किया है। इनकी लोकप्रियता के ही कारण अनेक कवियो ने अपने नामो के साथ 'पति' का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। गोविन्द दास ने तो विद्यापति की शिष्यता भी स्वीकार की थी।

स्थानीय सम्पर्क, मिथिला की ख्याति तथा चैतन्य महाप्रभु की वाणी पर सवार होकर विद्यापति के गीत बगाल के घर घर म प्रतिष्ठित हो गये। फिर तो बगाल के कवियो मे विद्यापति के अनुकरण की होड सी लग गई। लोग विद्यापति के नाम से गीत लिखने लगे। इस प्रयास म भाषा मे थोडा परिवर्तन हुआ इस परिवर्तित भाषा स्वरूप को ब्रजबुलि का नाम दिया गया। डा० सुकुमार सेन के अपनी कृति हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर मे इन कवियो का पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया है। विद्यापति के गीतो से बकिमचन्द्र तथा कवीन्द्र रवीन्द्र भी प्रभावित थे। बगाल म विद्यापति का प्रभाव दो रूपो मे मान्य है—ब्रजबुलि के श्रेष्ठ प्राचीन कवि के रूप मे तथा वैष्णव गीतिकार के रूप मे। चैतन्य महाप्रभु भी उनका वैष्णव गीत कार के रूप मे आदर करते थे।

उडीसा म यह प्रभाव सोलहवी शती के प्रारम्भ मे देखने को मिलता है। गोबिन्द दास ठाकुर की दो रचनायें—पूजा प्रदीप इस काव्य प्रदीप इस प्रभाव की साक्षी हैं। रामानन्द राय की एक व्रजबुलि रचना है जिसे उन्होने उडीसा के राजा रुद्र देव (1504-1532) ई० को समर्पित किया है। उनकी भेंट भी चैतन्य महाप्रभु से गोदावरी तट पर 1511 ई० मे विद्यानगर मे हुई थी।

आसाम मे भी विद्यापति की ख्याति गीतकार के रूप म थी। शकरदेव के प्रयासो स यहाँ व्रजबुलि का प्रसार हुआ। असमिया के इतिहास मे व्रजबुलि का महत्वपूण स्थान है। नेपाल को तो विद्यापति ने खूब प्रभावित किया था। विद्यापति के साहित्य को सरक्षित रखने का भी श्रेय नेपाल को है। मैथिली अपने प्रभाव के कारण उत्सवो मे नाटकों की भाषा बन गई और कालान्तर मे राज भाषा बन गई और नेपाल के मल्ल नरेशो ने मैथिली के कलाकारो को अपने दरबार मे स्थान दे सम्मानित किया।

विद्यापति का प्रभाव तुलसी से भी अधिक व्यापक है क्योकि उनके पाठक केवल हिन्दी क्षेत्र के ही नही अपितु असम, उडीसा, बगाल और नेपाल के लोग भी हैं। विद्यापति ने भक्तो को सरस गान, रसिको को प्रणय की भावभगिमा, विरही जनो क हृदय को आशा, युवको को सौन्दय और प्रेम की मादक मासलता और वृद्धो को आत्म ग्लानि परक स्तुतिया प्रदान की। उनके काव्य मे नर नारी सबको अपनी वाछा का फल प्राप्त हुआ। ग्रियसन के शब्दो मे ही इस प्रकरण को विराम देना उचित होगा—'हिन्दू धम का सूय अस्त हो सकता है, समय के प्रवाह के साथ कृष्ण मे व्यक्त विश्वास और श्रद्धा भी समाप्त हो सकती है, कृष्ण प्रेम की स्तुतिया जो भव सागर पार के लिए बेडा है, उस पर से हमारा विश्वास हट सकता है किन्तु वह समय कभी नही आयेगा जब विद्यापति के गीतो का प्रभाव मानव जीवन से हट जाय और उनके प्रति रसिक हृदयो की स्वाभाविक ललक कम हो जाय।' ग्रियसन—विद्यापति एण्ड हिज कान्टेम्परेरीज, पृ० 31)

□□□